प्रपञ्चसारतन्त्रे

शङ्कराचार्य : तान्त्रिक साधना



डॉ॰ रामचन्द्र पुरी

प्रपञ्चसारतन्त्रे

शंकराचार्य : तान्त्रिक साधना

डॉ० रामचन्द्र पुरी

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
141

प्रपञ्चसारतन्त्रे

शंकराचार्य : तान्त्रिकसाधना

(प्रथम खण्ड)

डॉ० रामचन्द्र पुरी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391, 41530902

प्रथम संस्करण 2009 ई.
मूल्य : 1000.00 (1-2 खण्ड)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117, गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

•

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

•

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

•

ISBN : 81-7084-408-9

मुद्रक
ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

अपने गुरुद्वय

परमपूज्य स्वामीश्री स्वयंज्योतितीर्थजी महाराज

एवं

परमपूज्य स्वामीश्री विष्णुतीर्थजी महाराज

पराशक्ति भगवती कुलकुण्डलिनी

जीवनसंगिनी मीरा

पुत्री सान्ध्यदीप

दौहित्र ऋभु

और इस रचना के प्रकाशक

श्री जमुनादास गुप्त एवं श्री प्रवीण कुमार गुप्त

के

हम आभारी हैं

•

रामचन्द्र पुरी

प्रस्तावना

आवाहन पीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर
डॉ० स्वामी श्रीशिवेन्द्रपुरी जी महाराज

प्रपंचसारतन्त्र श्रीशंकराचार्य का अप्रतिम तान्त्रिक ग्रन्थ है। इसमें भौतिक तथा आध्यात्मिक विश्व के उद्‌भव, विकास तथा विस्तार की चर्चा की गयी है। आचार्य के अनुसार सारा विश्व वर्णमयी भगवती पराशक्ति के 'हकार' से उद्‌भूत होता है और अन्ततः उसी में लीन हो जाता है। भगवती पराशक्ति का स्वरूप अक्षरात्मक ही है—

अकचटतपयाद्यैः सप्तभि वर्णवर्गैर्विरचितमुखबाहापादमध्याख्यहृत्का।
सकलजगदधीशा शाश्वता विश्वयोनिर्वितरतु परिशुद्धिं चेतसः शारदा वः।।

तात्पर्य यह कि 'अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग तथा यवर्ग नामक सात वर्गों की मातृकाओं से जिसके मुख, बाहु, पाद, मध्यभाग और हृदय की रचना हुई, जगत् की अधीश्वरी और समस्त विश्व को जन्म देने वाली वह शाश्वती शक्ति शारदा हमारी-आपकी चेतना को विशुद्ध बनाये।

भोगमोक्षप्रदायनी भगवती शारदा का शरीर अवर्ग आदि सात वर्गों में विभक्त ५१ मातृकाओं से निर्मित है । अवर्ग की अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः—ये १६ मातृकाएं भगवती के मुखमंडल के क्रमशः ब्रह्मरंध्र मुख, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, दक्ष कर्ण, वाम कर्ण, दक्षिण नासापुट, वाम नासापुट, दक्षिण कपोल, वाम कपोल, ऊर्ध्व ओष्ठ, अधर ओष्ठ, ऊर्ध्व दन्तपंक्ति, अधः दन्तपंक्ति, तालु और जिह्वा—ये १६ अंग हैं ।

कवर्ग की क्रमशः क, ख, ग, घ, ङ—ये पांच मातृकाएं क्रमशः उनकी दक्षिण बाहु के बाहुमूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल और अंगुलियों के अग्रभाग हैं । चवर्ग की च, छ, ज, झ और ञ—ये पांच मातृकाएं भगवती के वाम बाहु के क्रमशः बाहुमूल, कर्पूर, मणिबन्ध-अंगुलिमूल और अंगुल्यग्रभाग हैं। टवर्ग की क्रमशः ट, ठ, ड, ढ और ण—इन पांचों मातृकाओं से भगवती पराम्बा के दक्षिण पाद की जंघा, जानु, (घुटना) गुल्फ (टखना) अंगुलिमूल तथा अंगुल्यग्र का निर्माण हुआ है। इसी तरह त वर्ग की क्रमशः त, थ, द, ध तथा इन पांच मातृकाओं से वाम पाद के उक्त अंगों का निर्माण हुआ है। प वर्ग की क्रमशः प, फ, ब, भ

और म ये पांच मातृकाएं भगवती के दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, पृष्ठ, नाभि तथा जठर नामक पांच मध्य अंग हैं । य वर्ग की क्रमशः य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ तथा क्ष—ये १० मातृकाएं भगवती के हृदय प्रदेश के क्रमशः हृदय, दक्षिण स्कन्ध, ककुद् (गर्दन), वामस्कन्ध, हृदय से दक्षिणकर पर्यन्त भाग, हृदयादि वामकर पर्यन्त भाग, हृदय से लेकर दक्षिण पाद पर्यन्त भाग, हृदयादि वामपाद पर्यन्त भाग, नाभि से लेकर हृदय पर्यन्त भाग और हृदयादि भ्रूमध्य भाग है ।

आचार्य शंकर के ग्रन्थ 'प्रपंचसारतन्त्र' का मूल प्रतिपाद्य मूलप्रकृति वाचक अक्षर भुवनेशी बीज 'ह' या 'ह्रीं' से उद्‌भूत मातृकासमूह, नक्षत्र-राश्यादिसमूह, इन सब से आबद्ध भूतेन्द्रियगुणसंघात, सूर्य, चन्द्र, अग्नि इन सबसे ओतप्रोत मन्त्र-यन्त्रादि के साथ समस्त आन्तरिक तथा ब्राह्य जगत्प्रपंच अर्थात् मूलप्रकृति रूपी पराशक्ति के विकार-विस्तार का निरूपण है—

इत्थं मूलप्रकृत्यक्षरविकृतिलिपिव्रातजातग्रहर्क्ष-
क्षेत्राद्याबद्धभूतेन्द्रियगुणरविचन्द्राग्निसंप्रोतरूपैः ।
मन्त्रैस्तद्‌देवताभिर्मुनिभिरपि जपध्यानहोमार्चनाभि-
स्तन्त्रेऽस्मिन् पंचभेदैरपि कमलज ते दर्शितोऽयं प्रपंचः ।।

(प्रपंचसारतन्त्र ३६/६२)

यह [redacted] मानव शरीर के मूलाधार में परावाक् कुण्डलिनी के रूप में प्रसुप्त रहती है। यह परावाक् जब स्वयं को अभिव्यक्त करने की इच्छा करती है, तब यह स्वयं को त्रिगुणित, चतुर्गुणित, पंचगुणित, षट्-सप्त-अष्टगुणित, दश गुणित, द्वादश गुणित तथा पञ्चाशत् गुणित करके आत्मविस्तार कर वाच्य-वाचकरूप विश्व-वपुष् रूप में अभिव्यक्त होती हैं।

पराशक्ति कुण्डलिनी का विकार-विस्तार अपरिमित है। जब यह त्रिगुणित होती है, तब शक्ति अर्थात् 'ईकार' काम (कामराज बीज क्लीं) अग्नि अर्थात् र (एवं वाग्भव बीज ऐं) तथा नाद अर्थात् ह (एवं नाद प्रधान अन्य बीजों), अ उ म् (ओम्) तथा ह् र् ईं (ह्रीं) के रूप में अभिव्यक्त होती है। यही परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी , जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तुरीय अवस्था, मनस्, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है। यही कुण्डलिनी जब पंचगुणित होती है, तब यह ओंकार के अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद नामक पंचांगों, हृल्लेखा के हकार, रकार, ईकार, बिन्दु तथा नाद संज्ञक पांच अंगों, भूत, इन्द्रिय तथा वायु पंचकों एवं 'नमः शिवाय' आदि पंचाक्षर मन्त्रों के

रूप में व्यक्त होती है। षड्गुणित होने पर यह त्वचा आदि छः धातुओं, विज्ञानमयादि षट् कोशों, छह रसों, बुभुक्षा-पिपासा आदि छह उर्मियों तथा षड्गुणित यन्त्र आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है। सप्त गुणित होकर यह हृल्लेखा हकार, रेफ, इकार, बिन्दु, नाद, शक्ति तथा शान्त रूप अपने सातों अंग-भेदों से स्वरों सहित सूर्य, कवर्ग सहित मंगल, चवर्ग सहित शुक्र, टवर्ग सहित बुध, तवर्ग सहित बृहस्पति, पवर्ग सहित शनि तथा यवर्ग सहित चन्द्र को जन्म देती है। सप्तभेदिनी होकर ही हृल्लेखा भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः तथा सत्य नामक सप्त लोकों; मेरु, निषध, हेमकूट, हिमवान्, नील, श्वेत तथा शृंगी नामक सात पर्वतों; जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीपों; अतल, वितल, सुतल, गभस्तिमत्, महातल, नितल तथा पाताल नामक सात पातालों; लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, क्षीर, तथा शुद्ध जल वाले सात सागरों; भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि तथा वसिष्ठ नामक सात मुनियों; षड्ज, ऋषभ, गान्धार, धैवत, मध्यम, पंचम तथा निषध नामक सात स्वरों; त्वचा, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, तथा रेतस् नामक सात धातुओं सहित सृष्टि के सात वर्गों वाले जो भी हैं, उन सबके रूप में अभिव्यक्त होती है।

जब यह हृल्लेखा अपने को अष्टगुणित करती है, तब यह भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार नामक आठ प्रकृतियों; अनन्त, वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल तथा गुलिका नामक आठ सर्पों; धर, ध्रुव, सोम, अप्, अग्नि, वायु, प्रत्युष तथा प्रभास नामक आठ वसुओं; पूर्वादि आठ दिशाओं; ब्राह्मी आदि अष्ट मातरों तथा शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेव तथा पशुपति नामक आठ मूर्तियों आदि अष्टवर्गकों को जन्म देती है।

दस गुणित होकर हृल्लेखा इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, लकुहा, अलम्बुषा तथा शंखिनी नामक दस नाडियों; हृदय, लिंग, तालु, मुख, उदर, नेत्र, कण्ठ, भ्रूमध्य, शंख (कनपटी) तथा गुदा नामक शरीर के दस मर्मस्थानों; पूर्वादि दस दिशाओं, प्राणापानादि दस वायुओं तथा दसवर्गीय अन्यों को जन्म देती है। द्वादशगुणित होकर यही हृल्लेखा मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन नामक बारह राशियों; विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र तथा ऊरुक्रम नामक बारह सूर्यों; 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' आदि द्वादशाक्षर मंत्रों तथा अकारादि बारह स्वरों (यहां नपुंसक वर्ण ऋ, ॠ, ऌ तथा ॡ का

उल्लेख नहीं है) केशवादि बारहमूर्तियों तथा शक्ति के द्वादशगुणित नामक यन्त्र के रूप में अभिव्यक्त होती है। जब यह हृल्लेखा कुण्डलिनी पञ्चाशत् गुणित होती है, तब मूलाधार में अपने अधिष्ठानरूप पुरुष तत्त्व से दिव्यभाव प्राप्त कर नाद (हकार) के साथ सुषुम्ना के मार्ग से कण्ठादि स्थानों का स्पर्श करती हुई अ से क्ष तक के ५० वर्णों के रूप में अभिव्यक्त होती है।

समस्त जगत् की सृष्टि अक्षर अर्थात् पराशक्तिरूप शब्दब्रह्म से हुई हैं। यह शब्दब्रह्म सामान्य शब्द या रव मात्र नहीं, अपितु शब्द से प्रतीत होने वाली अर्थस्वरूपा बिन्द्वात्मिका 'परावाक्' ही है। व्यक्तियों के मूलाधार में स्थित यह परावाक् अर्थों की अभिव्यंजना के लिये पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के रूप में उत्तरोत्तर स्थूल होती हुई स्थूल-सूक्ष्मादि समस्त अर्थों को अभिव्यंजित करती है। [redacted] वैदिक, तांत्रिक, पौराणिक मंत्र, समस्त वाङ्मय तथा आख्यान इसी परावाक् कुण्डलिनी के ही वैखरी रूप हैं।

भगवती पराशक्ति का उपर्युक्त आत्मविस्तार ही 'प्रपंच' है। इसी का सार शंकर के इस ग्रन्थ में है। जहां तक 'तन्त्र' का प्रश्न है, तो समस्त विश्व ही भगवती का आत्म-तनन या तन्त्र है। विस्तारार्थक 'तनु' धातु में पालनार्थक 'त्रैङ' धातु के योग से तन्त्र शब्द का निर्माण होता है। पराशक्ति जब अपने एकत्व को अनेकत्व में परिणत या आत्मविस्तार करती है, तब उसे अपने मूल 'स्वरूप' और परिणमनरूपी आत्मविस्तार दोनों के रक्षण या पालन की जरूरत पड़ती है। इसीलिये 'तन्त्र' में आत्म-तनन भी है और आत्मरक्षण भी। भगवती का यह परिणमन या आत्मविस्तार और आत्मरक्षण सब कुछ केवल उसकी इच्छामात्र से होता है। इसी का नाम संसार है। यही वेदान्त की 'माया' है। यही तांत्रिकों की 'प्रकृति' और यही बौद्धों की 'संविति' है।

'तन्त्र' शब्द के कई अर्थ हैं, जैसे—प्रकृति, सिद्धान्तविशेष, तन्तुवाय (बुनकर), सामग्री, वेद की एक शाखा, कुटुम्ब के कृत्य और औषधि आदि। ये सभी अर्थ एक-दूसरे से जुड़े हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। तन्त्र अपने मुख्य अर्थ 'प्रकृति' के परिप्रेक्ष्य में इस विश्व-पट का सबसे बड़ा 'तन्तुवाय' या बुनकर है। वेदान्तियों ने प्रकृति को 'लूता' कहा है; लूता अर्थात् मकड़ी। संसाररूपी अपने ताने-बाने को अपने ही अन्दर से उगलना और फिर अपने में ही समेट लेना, प्रकृति की बहुत प्रिय क्रीड़ा है। एक से अनेक होना ही पराशक्ति का आत्म-तनन या 'तन्त्र' है।

उसने तनन (आत्म-विस्तार) तो कर लिया, अब जरूरत थी उस विस्तार अर्थात् अपने बनाये उस घरौंदे के एक-एक तिनके के रक्षण की। [redacted] 'यह सब कुछ मैं ही हूं' इस प्रकार के अवबोध के बिना इसके त्राण या रक्षण की भावना का उदय असम्भव है। जिस आत्मविस्तार की रक्षा की जानी है, उसके स्वरूप को जानना आवश्यक है। जब उसे जानेंगे ही नहीं, तो किसकी रक्षा करेंगे। इसलिये इस विस्तार 'आत्मतनन' अर्थात् 'तन्त्र' को जानना-पहचानना आवश्यक हो जाता है। आत्म-तनन या आत्म-विस्तार को समझने के लिये इसके 'तन्त्र' अर्थात् ताने-बाने को समझना बहुत जरूरी है।

अपना विस्तार और उसका रक्षण प्रकृति का स्वभाव है। तन्त्र भी यही करता है। इसलिये तन्त्र स्वाभाविक है, प्राकृतिक शाश्वत और सनातन है। प्रकृति के स्वरूप को हम तत्त्वतः जानते नहीं, और जानने वालों का कहा अमूमन मानते नहीं। लेकिन, इससे प्रकृति को क्या फर्क पड़ता है ? हम प्रकृति का उपयोग करते हैं, प्रकृति हमारे प्रत्येक व्यवहार में है, क्योंकि वह हमारे स्वभाव में हैं। इसी तरह तन्त्र हमारे भीतर है, हम स्वयं तन्त्र हैं। हम इसको जानते नहीं, मानते नहीं, इससे 'तन्त्र' को क्या फर्क पड़ता है? कोई अन्य मार्ग नहीं—**'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'** हमारा यह तनु या शरीर भी एक तन्त्र है।

शंकर की प्रस्थानत्रयी और अन्य फुटकल रचनाओं का विद्वद्वर्ग में जितना प्रचार-प्रसार हुआ उतना प्रपंचसारतन्त्र का नहीं। इसका कारण शायद प्रपंचसारतन्त्र की दुरूहता ही है। प्रपंचसारतन्त्र निःसन्देह एक दुरूह तान्त्रिक ग्रन्थ है। इस पर आचार्य शंकर के प्रमुख शिष्य [redacted] की [redacted], उत्तमबोधाचार्य की [redacted] तथा [redacted]' नामक केवल तीन टीकाएं संस्कृत में उपलब्ध हैं।

हिन्दी में सर्वप्रथम डॉ० रामचन्द्र पुरी ने प्रपंचसारतन्त्र के छत्तीस पटलों में से केवल चौदह पटलों में निरूपित विषय-सामग्री को अपनी पुस्तक 'शंकराचार्यः तान्त्रिक शाक्तसाधना एवं सिद्धान्त' में प्रकाशित किया था। अब डॉ० पुरी के 'शंकराचार्य : तान्त्रिक साधना' नामक ग्रन्थ में प्रपंचसारतन्त्र के छत्तीस पटलों में निरूपित प्रायः समस्त विषयों का प्रकाशन मेरे लिये एक सुखद अनुभूति है। इसके लिये हम डॉ० पुरी को स्नेहसिक्त आशीष देते हैं।

•

सम्प्रदायो हि नान्योऽस्ति लोके श्रीशंकराद् बहिः

परम पूज्य श्री १०८ महन्त गंगापुरी जी महाराज
संगमेश्वर महादेव, अरुणाय, कुरुक्षेत्र

आदिकाल में भगवती उमा और भगवान् भूतभावन शंकर ने लोककल्याण के लिये चतुःषष्टि तन्त्रों का प्रवर्तन किया। पुनः भगवती के विशेष आग्रह पर शंकर ने भगवती के स्वकीय तन्त्र [redacted] का प्रवर्तन किया। तब से लेकर अधुनातन तक दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ गुरुओं द्वारा प्रतिपादित तान्त्रिक परम्परा अथर्वादि वेदों से लेकर अविच्छिन्न बनी हुई है। सम्प्रदायविदूं आचार्यों के अनुसार भगवत्पाद शंकर भगवान् शंकर के ही अवतार थे।

आद्य शंकराचार्य की परम्परा के आचार्य स्वामी श्रीविद्यारण्य यति ने अपने श्रीविद्यानिरूपक तान्त्रिक ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' में आचार्य शंकर को सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्य के रूप में स्मरण करते हुए कहा है कि 'लोक में प्रचलित कोई भी तान्त्रिक सम्प्रदाय शंकराचार्य से प्रवर्तित सम्प्रदाय से बाहर नहीं है'— **'सम्प्रदायो हि नाऽन्योऽस्ति लोके श्रीशंकराद् बहिः।'** आचार्य शंकर के परम गुरु श्रीगौडपादाचार्य, गुरु गोविन्दाचार्य तथा स्वयं शंकर महान् तान्त्रिक आचार्य थे। इनके अतिरिक्त पद्मपादाचार्य आदि[redacted]ष्य भी निग्रहानुग्रह समर्थ तान्त्रिक थे।

शंकरावतार शंकर को भोग-मोक्षप्रद तान्त्रिक सिद्धियां जन्मजात थीं। सात वर्ष की आयु में ही समस्त शास्त्रों के ज्ञान, क्षीणकाय मां के स्नानादि के लिये गृह के पास ही पूर्णा नदी के प्राकट्य, संन्यास-ग्रहण करने की अनुज्ञा की प्राप्ति के लिये माया-मकर प्रसंग, नर्मदा के तीर पर समाधिस्थ अपने गुरु श्रीगोविन्द भगवत्पादाचार्य की रक्षा के लिये नर्मदा की उद्दाम लहरियों को कमण्डलु में भरना, कामकला के व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये परकाया-प्रवेश आदि की परम्परित जनश्रुतियां केवल शंकर की महिमा-मण्डन के लिये नहीं, बल्कि तथ्य हैं।

आचार्य शंकर की दो तान्त्रिक रचनाएं उपलब्ध हैं। पहली 'सौन्दर्यलहरी' और दूसरी 'प्रपंचसारतन्त्र'। सौन्दर्यलहरी में उन्होंने भगवती पराशक्ति की कादि-हादि साधनाओं के गोप्य रहस्यों के उद्घाटन के साथ ही पराशक्ति के

अध्यात्मोन्मुख अप्रतिम सौन्दर्य की झलक दिखाई है। प्रपंचसारतन्त्र में आचार्य शंकर ने तन्त्रशास्त्र प्रवर्तित लौकिक-वैदिक देवों के वैदिक, पौराणिक एवं लोक में प्रचलित मन्त्रों, उनकी साधना-विधियों तथा साधना से प्राप्य धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय का निरूपण किया है।

आचार्य शंकर ने प्रपंचसारतन्त्र में भगवती पराशक्ति से ब्रह्मादि-स्तम्भपर्यन्त समस्त विश्व के उद्‌भव, विकास तथा लय के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके शाक्ताद्वैतवाद का समर्थन किया है। अद्वैत परमतत्त्व के प्रतिपादन के लिये जहां आचार्य शंकर ने एक ओर ईशादि एकादशोपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्‌भगवद्गीता पर अकाट्य विद्वत्तापूर्ण भाष्य की रचना की, ज्ञानियों, मुमुक्षुओं, विरक्तों, भक्तों साधकों तथा सामान्यजनों के हित के लिये विंशत्यधिक ग्रन्थों के अतिरिक्त शतशः स्फुट स्तोत्रों की भी रचनाएं कीं, वहीं श्रीसुन्दरीसाधनरत शाक्त साधकों के लिये भोगमोक्षप्रद 'सौन्दर्यलहरी' तथा 'प्रपंचसारतन्त्र' जैसी महीयसी रचनाएं भी प्रस्तुत कीं।

पूज्यपाद आचार्य शंकर एक चिन्तक के रूप में अद्वैतवादी थे। लेकिन, साधक-शंकर भगवती शक्ति के परम उपासक थे। आचार्य शंकर ने श्रीविद्या की जिस साधना-पद्धति की परम्परा को आगे बढ़ाया वीतराग संन्यासियों में वह अब भी प्रचलित है। संन्यासी लोक-संग्रही होता है। लोक-संग्रह के लिये लोक-कल्याण की उसे अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक चिन्ता रहती है। इसके लिये जिन आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक साधनाओं की आवश्यकता होती है, उनका निरूपण परमाचार्य शंकर ने अपने ग्रन्थ 'प्रपंचसारतन्त्र' में किया है। उन्होंने मणि एवं औषधि की भौतिक साधना-पद्धति के साथ ही दैविक मन्त्र-साधना का भी निरूपण अपने इस ग्रन्थ में किया है।

आचार्य शंकर परमार्थदर्शी महात्मा थे। लेकिन इसके साथ ही वे लोकसंग्रही भी थे। वे मोक्षतत्त्व के प्रतिपादक थे, लेकिन धर्म, अर्थ और काम की उपेक्षा उन्होंने नहीं की। उन्होंने अपने जीवन में इन्हें उतारा और इस पुरुषार्थ-त्रयी की ओर जनसामान्य को उन्मुख भी किया। क्योंकि धर्मादि पुरुषार्थ-त्रय अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष के ही अलंघ्य सोपान हैं।

प्रपंचसारतन्त्र का प्रचार-प्रसार विद्वद्‌वर्ग और साधकों में तो यत्किंचित् है, लेकिन, शंकर-निरूपित तन्त्र की वैदिक-सनातन पद्धति से सामान्य-साधक प्रायः अपरिचित ही हैं। इसी कारण वे तन्त्र के नाम पर भयजन्य सिहरन महसूस करते

हैं । कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें तान्त्रिक साधनाओं में लगने का साहस तो होता है, लेकिन वैदिक-सनातन तान्त्रिक साधनाओं की जानकारी न होने के कारण वे प्रायः भ्रान्त और मिथ्या साधनाओं में लग जाते हैं और अन्ततः उद्देश्य में असफल होने पर तन्त्रशास्त्र को निरर्थक मानते लगते हैं।

हमें प्रसन्नता है कि डॉ० रामचन्द्र पुरी ने आचार्य शंकर द्वारा उद्घाटित तांत्रिक शाक्त-मन्त्रों और उनकी साधना-पद्धतियों की जानकारी 'शंकराचार्य : तान्त्रिक-साधना' के माध्यम से जन-सामान्य को देने का प्रयास किया है। इसके लिये हम डॉ० पुरी की प्रशंसा के साथ ही इन्हें आशीर्वाद देते हैं।

•

अनुक्रमणिका

‘शंकराचार्य : तान्त्रिक साधना’
का
विषय-संक्षेप

भगवत्पाद शंकराचार्य रचित ‘प्रपंचसारतन्त्र’ के छत्तीस पटलों में निरूपित विषयवस्तु के अधिकांश को प्रस्तुत ग्रन्थ ‘शंकराचार्य : तान्त्रिक साधना’ के उनचास प्रकरणों में समाहित करने का प्रयास किया गया है। तदनुसार इसके **पहले प्रकरण** में पुराकाल में किसी प्रलयान्त के बाद सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ होने पर प्रकृति या प्रधान नामक किसी तत्त्व से ब्रह्मा, हरि तथा ईश्वर नामक तीन चैतन्यों की उत्पत्ति, उनका परंज्योति ‘अज’ के पास जाकर प्रश्न कि वे किससे और किसलिये उत्पन्न हुए हैं? और अज का उत्तर कि उनकी उत्पत्ति ‘अक्षर’ से हुई है और वह मूल अक्षर ‘ह’ है। इस एक मूल अक्षर के विकृतिरूप कई अन्य अक्षर तथा इन विकृतियों की विकृतिरूप कई अक्षर भी हैं। इन्हीं मूलप्रकृति, विकृति और विकृतियों की भी विकृति स्वरूप अक्षरों से स्थूल-सूक्ष्म जगत्, वैदिक-तान्त्रिक मन्त्र और इन मन्त्रों की प्रयोग-विधियां उत्पन्न हुई हैं। इस अक्षरात्मिका मूलप्रकृति ‘ह’ से भूतादिक, वैकारिक तथा तैजसरूप अहंकार तथा अहंकार से उत्तरोत्तर सूक्ष्म-स्थूलरूप पंचभूतों की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि उत्पत्ति के इसी क्रम में चतुर्विध प्राणियों की उत्पत्ति, तथा सृष्टि के लिये उद्यत सवितारूप परावाक् कुण्डलिनी के त्रिगुणित, चतुर्गुणित, षड्गुणितादि रूप से परिणमन और उससे उद्भूत बीजत्रय, लोकत्रय, वेदत्रय आदि की भी सृष्टि हुई। ग्रन्थ के इस प्रकरण में इन्हीं विषयों का निरूपण किया गया है।

दूसरे प्रकरण में वर्ण-विभूतियों का वर्णन है। इसमें मूलाक्षर ‘ह’ एवं ‘ह्रीं’ के स्वरूप, अर्णविकृतियों, विकृति-विकृतियों ह्रस्व एवं दीर्घस्वर वर्णों, स्त्रीपुं एवं नपुंसकवर्णों, वर्ण और कलाओं, सौम्य और सौर कलाओं, प्रणव के अकार से उत्पन्न दस ब्राह्मी, उकारोत्पन्न दस वैष्णवी, मकारोत्पन्न दस रौद्री, चार बिन्दुज, सोलह नादज कलाओं, ओंकार की प्रथम मात्रा अकार से कवर्ग और चवर्ग, उकार से टवर्ग एवं तवर्ग, मकार से पवर्ग एवं यवर्ग के पांच-पांच अक्षरों, बिन्दु से षवर्ग क्षकारसहित पांच अक्षरों की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। इसी

प्रकरण में वैष्णव, शैव तथा शाक्त साधना में न्यासादि क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाली सोलह स्वर तथा पैतीस व्यंजन-मूर्तियों, वर्ण-शक्तियों एवं शक्तियों के नाम, उक्त पचास मातृकाओं से सम्बन्धित सत्ताइस नक्षत्रों, नौ ग्रहों तथा बारह राशियों सहित उक्त पचास वर्णों से उत्पन्न चन्दन-कुचन्दन आदि पचास वर्णौषधियों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही बताया गया है कि अजपा मन्त्र 'हंसः' के हकार और सकार का लोप होने पर अनुस्वार (ं) और विसर्ग (ः) ही शेष रह जाते हैं। इनमें अनुस्वार पुरुषात्मक और विसर्ग स्त्र्यात्मक अर्थात् दोनों क्रमशः 'पुरुष-प्रकृत्यात्मक' हैं, और इस विसर्ग से ही सभी वर्णों की उत्पत्ति हुई है। इसके अतिरिक्त इस द्वितीय प्रकरण में ही यह बताया गया है कि उक्त पचास वर्णो में से दस-दस वर्णों का समूह किस प्रकार पंचभूतात्मक और मन्त्रात्मक हैं और मारण-मोहनादि साधनाओं में से किस साधना में किस समूह के वर्णों से निर्मित मन्त्रों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

तीसरे प्रकरण में मूलप्रकृति 'ह' के ' रूढसंस्थित' अर्थात् 'ई र' तथा बिन्दु युक्त होकर शक्ति प्रणव 'ह्रीं' बनने, फिर इसके हकारांग से बुभुक्षादि षड्‌ूर्मियों, रकारांग से आकाशादि भूतसंघातों तथा ईकारांग से मनस्-बुद्धि आदि छह अंगों तथा सोलह स्वरों तथा बुभुक्षादि षोडशांगों वाले पुरुष की उत्पत्ति की चर्चा के साथ ही अजपा मन्त्र 'हंसः', परमात्ममन्त्र 'सोऽहम्', हृल्लेखा 'ह्री' के 'ह् र् इ बिन्दु नाद शक्ति तथा शान्त' नामक सात अंगों से अवर्गादि सात वर्ण-वर्गों, और इन वर्णवर्गों के स्वामी सूर्यादि सप्तग्रहों की उत्पत्ति का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त उक्त अकारादि पचास वर्णों से मेष आदि बारह राशियों, राशियों से अश्विनी, भरणी आदि सत्ताइस नक्षत्रों, पचास वर्णों से चन्दनादि पचास वर्णौषधियों, सत्ताइस नक्षत्रों से सत्ताइस नक्षत्र-वृक्षों तथा विलोमक्रम के षवर्गादि नौ वर्ण-वर्गों से केतु आदि नवग्रहों तथा उनसे सम्बन्धित मरकतादि नौ रत्नों की उत्पत्ति की चर्चा की गयी है।

चौथे प्रकरण में दीक्षा में मण्डप-मण्डलादि के निर्माण की विधि का उल्लेख है। इसमें आणवी, शाक्ती तथा शांभवी दीक्षा के भेदत्रय, दीक्षा-मण्डप के निर्माण, तिरपन वास्तुदेवताओं के नाम और स्वरूप, स्थान एवं पूजन, मण्डल-रचना, बलि-द्रव्य तथा कुण्ड-रचना विधि आदि का निरूपण है।

पाँचवें प्रकरण के दीक्षा-विधि (१) में गुरु द्वारा शिष्य को मन्त्र प्रदान करने की विधि का निरूपण किया गया है। इसमें गुरु द्वारा किये-कराये जाने वाले

न्यासों का विवरण, ऋष्यादि न्यास में ऋषि, छन्दस्, देवता, बीज तथा शक्ति का तात्पर्यार्थ, अंगमन्त्र एवं नमः, स्वाहा आदि षडंगजातियों के अर्थ एवं न्यासों का वर्णन है।

छठे प्रकरण के दीक्षा-विधि (२) में पूजा-विधान के अन्तर्गत कलश-स्थापना, पूजार्ह द्रव्य, कला-विनियोग, कुम्भपूरण, प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र, अंगदेवता, लोकपाल एवं उनके आयुधों के स्वरूप एवं वर्णो का विवरण दिया गया है।

सातवें प्रकरण में दीक्षा के प्रसंग में ही अग्निस्थापना, अग्नि की सप्तजिह्वाओं के नाम तथा वर्ण, सप्तजिह्वान्यास, अग्नि की अष्टमूर्तियों के नाम एवं अष्टमूर्ति न्यास, अग्नि की आवरण पूजा, ध्यान, अग्नि के गर्भाधानादि संस्कार, गणपति पूजन एवं गणपति-मन्त्र, हवन, महाव्याहृति हवन, ब्रह्मार्पण-विधि, नक्षत्रादिकों की बलिविधि, अष्टांग तथा पंचांग प्रणाम, पूजा में प्रणाम के नियम, गुरु तथा ब्राह्मणों को देय दक्षिणा तथा मन्त्रदान-विधि आदि का निरूपण किया गया है।

आठवें प्रकरण में वर्णाधिदेवता मातृकाशक्ति वर्णतनु शारदा के स्वरूप, पराशक्ति वर्णेश्वरी की साधना, मातृका सरस्वती के ऋष्यादिन्यास, षडंगन्यास, सृष्टिन्यास, वर्णेश्वरी का ध्यान, वर्णकमल की रचना तथा उसमें मातृका सरस्वती की आवरण पूजा, आवरण-रचना, अक्षरों के रंग, पद्मपाद-वर्णित वर्णकमल-साधना, मणि, मन्त्र एवं औषधियों (ब्राह्मी-वचा आदि) के प्रयोग, वर्णौषधि-क्वाथ, वर्णों से सम्बन्धित ग्रह एवं रत्न, त्रिलौहमुद्रिका-प्रयोग, मातृका सरस्वती की साधना का फल, मातृकान्यास के प्रकार और देवता, कलादि नाम एवं मन्त्रोद्धार आदि का निरूपण किया गया है।

नवें प्रकरण में प्रपंचयाग के सन्दर्भ में गणनाथ की पूजन-विधि, सप्तग्रहन्यास, मण्डलन्यास, नवग्रहन्यास, मण्डलत्रयन्यास से सम्पन्न होने वाले अन्तःसाधनात्मक मोक्षप्रद प्रपंचयाग के 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' के पांच मन्त्रों के उद्घाटन के साथ ही इन पंचमन्त्रों से हवन की विधि, इन पंचमन्त्रों के ऋष्यादि एवं षडंगन्यासादिक न्यास, स्वाहा, सोऽहम्, हंसः, ह्री, ओं तथा हरिहर शब्दों की निरुक्ति एवं उनका क्रमशः हृदयादि जातियों के साथ सम्बन्ध, उक्त पंचमन्त्रों के वर्ण-विभाजन से निष्पन्न अष्टाक्षरमन्त्र का स्वरूप और साधना, अष्टाक्षर मन्त्र से हवन विधि, अष्टाक्षर मन्त्र के ज्वरादिरोगों से मुक्ति एवं वशीकरणादि विभिन्न प्रयोग, तथा मन्त्रसिद्ध वर्णौषधियों से अपस्मारादि विभिन्न

रोगों को समाप्त करने वाली सिद्ध भस्म के निर्माण की विधि आदि का वर्णन किया गया है।

दसवें प्रकरण के प्राणाग्निहोत्र-साधना में योग-साधना के समय पंचाग्निकुण्ड-भावना, उनमें आवसथज आदि पंचाग्नियों के प्रज्वलन की भावना, कल्पान्त एवं कल्पार्काग्नि का स्वरूप, उक्त पंचकुण्डों में पंचभूत एवं वर्णों की आहुति, भोजन-क्रिया द्वारा प्राणाग्निहोत्र का सम्पादन, प्राणाग्निहोत्र के मन्त्रों का स्वरूप, प्राणाग्निहोत्र से मोक्ष की प्राप्ति, वर्णमाला (अक्षमाला) का स्वरूप और इसके ग्रथन की प्रक्रिया का विवेचन किया गया है।

ग्यारहवें प्रकरण में सरस्वती की साधना के प्रसंग में कवित्व, तेजस्, सौन्दर्य, आयु तथा सम्पत्तिप्रदायक सरस्वती के दशाक्षरी मन्त्र 'वद वद वाग्वादिनि स्वाहा' के उद्घाटन के साथ ही इस मन्त्र के ऋषि, छन्दस्, देवता, बीज और शक्ति का उल्लेख करते हुए इनके न्यास के स्वरूप, साधक के मुखमण्डलादि दस अंगों में मन्त्र के दस अक्षरों के न्यास की विधि, पद्मपाद-दर्शित षडंगन्यास, दीपिका के अनुसार करन्यास के स्वरूप, क्लीब स्वररहित अंगन्यास के स्वरूप, कमलासनस्था भगवती सरस्वती का ध्यान, वर्णकमल में योगा, सत्या तथा विमलादि शक्तियों के साथ सरस्वती की आवरणपूजा, मन्त्रजप, हवनादि, कवित्वादि की उपलब्धि के लिये दशाक्षरी सरस्वती-मन्त्र के प्रयोग की विधि, वाग्देवी के एकादशाक्षरी मन्त्र 'ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः' का उद्घाटन तथा इसकी न्यासादि विधियों का निरूपण किया गया है। तदनन्तर हंसारूढा, चन्द्रकलाधारिणी भगवती सरस्वती के ध्यान, प्रज्ञादि आठ शक्तियाके सहित आवरण-पूजा-विधि तथा अन्त में आचार्य शंकर-विरचित मोक्षप्रद अनुपम सरस्वती स्तुति दी गयी है।

बारहवें प्रकरण में विद्येश्वरी त्रिपुरा के मन्त्र 'व्योम, इन्दु वह्नि, अधर तथा बिन्दु से युक्त 'ह्स्रैं' रक्त, अच्छ, क, इन्द्र शिखी युक्त सर (या र) सहित मा और अर्धचन्द्र वाले 'हसकलह्रीं' तथा द्यु , शीतकर, पावक, मनु 'औ' तथा अम् अन्तवाले (अथवा अम् के अन्तवाले वर्ण विसर्ग) से युक्त 'ह्स्रौः' या 'ह्स्रौं' का उद्घाटन किया गया है। तदनन्तर त्रिपुरा के मूलबीजों 'ऐं' 'क्लीं' और 'सौः' का निर्वचन करते हुए त्रिपुरा के बीजों के त्रिखण्ड और पंचावृत्तिन्यास, त्रिपुरामन्त्र के जप, हवन, ध्यान एवं नवयोनिचक्र की रचना-विधि, नवयोनि चक्र में त्रिपुरा की आवरण पूजा एवं वशीकरण विधि, आकर्षण, सम्पत्ति, कवित्व,

जरादिरोगों से मुक्ति तथा मोक्षप्राप्ति हेतु त्रिपुरा के वाग्भवादि त्रिकूटों की प्रयोग-विधि का निरूपण किया गया है।

तेरहवें प्रकरण में मूलप्रकृति भुवनेश्वरी के घनवर्त्म (ह्) कृष्णगति (र्) शान्ति (ई) तथा बिन्दु (अनुस्वार) से बनने वाले मन्त्र (ह्रीं) का उद्घाटन तथा मन्त्र के ऋषि, छन्दस्, देवता, बीज तथा शक्ति का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर 'जाति' शब्द का अर्थ, भुवनेश्वरी-साधना में न्यासों के रूप, संहारन्यास तथा सृष्टिन्यास के रूप, न्यास की विधियां, भुवनेश्वरी के पाशांकुश आदि आयुधों के तात्पर्यार्थ, भुवनेश्वरी का ध्यान एवं त्रिगुणित यन्त्र के निर्माण की विधि, भुवनेशी की आवरण-पूजा में त्रिगुणित यन्त्र में हृल्लेखादिकों से षडंगन्यास, गायत्री एवं ब्रह्माणी आदि अष्टमाताओं के न्यास के साथ पीठपूजा, कलश-स्थापन की विधि, ओंकार से उत्पन्न 'हंसः शुचिषद्..' आदि ऋक्-पंचक के उल्लेख के साथ भुवनेश्वरी की एक-नौ एवं पंचघटीय पूजाविधि, भुवनेश्वरी-साधना के नियम-जप-हवन एवं अभिषेक, भगवती के षड्गुणित यन्त्र के निर्माण की विधि तथा षड्गुणित यन्त्र में भुवनेश्वरी की अर्चना आदि का निरूपण है।

चौदहवें प्रकरण में दुर्गाबीज 'दुं' प्रधान भोग-मोक्षप्रद द्वादशगुणित यन्त्र के निर्माण की विधि, द्वादशगुणित यन्त्र में 'ओं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ह्रैं कवचाय हुं, ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रः अस्त्राय फट्' अंगमन्त्रों से प्रथम आवरण में अंगदेवताओं की, हृल्लेखादि पंच शक्तियों की द्वितीय में, ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों की तृतीय में, कराली आदि सोलह शक्तियों की चतुर्थ आवरण में, विद्या आदि बत्तीस शक्तियों की पंचम आवरण में, पिंगलाक्षी आदि चौसठ शक्तियों की छठे आवरण में, इन्द्रादि दस दिक्पालों की सातवें आवरण में तथा उनके वज्रादि आयुधों की आठवें आवरण में पूजन वाली अष्टावरणीय पूजा का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त भगवती भुवनेश्वरी के पाश, अंकुश एवं शक्ति बीज से पुटित घटार्गल यन्त्र के निर्माण तथा उसमें भगवती के पूजन का निरूपण है। इसी प्रकरण में कवित्व, कान्ति, लक्ष्मी तथा वशीकरणदि के लिये भुवनेश्वरी बीज की प्रयोग की विधियों का निरूपण तथा अन्त में आचार्य शंकरकृत भुवनेशी-स्तुति दी गयी है।

पन्द्रहवें प्रकरण में अनल (र), वामनेत्र (ई), चन्द्रखण्ड (अनुस्वार), विलोम क्रम से आकाश (ह) से चतुर्थ (श) वर्ण से निर्मित महालक्ष्मी के 'श्रीं' बीज का उद्घाटन, इस मन्त्र के ऋष्यादि एवं विभिन्न न्यास, रमा का ध्यान,

चतुर्व्यूहात्मक अष्टदल कमल चक्र के निर्माण की विधि, इसमें वासुदेवादि अष्टमूर्तियों, निधिद्वय, वलाकी आदि अष्टशक्तियों तथा दिक्पालों सहित भगवती श्री की अष्टावरणपूजन विधि के निरूपण के पश्चात् समृद्धि, वशीकरण, लक्ष्मी के प्रत्यक्ष दर्शन आदि के लिये विभिन्न प्रयोगों का विवरण दिया गया है। इसी प्रकरण में कमलवासिनी महालक्ष्मी के 'हृदय' (नमः), 'कमल' शब्द, तदनन्तर 'अनन्त' (आ) सहित 'अमृत' (व) अर्थात् वा, तत्पश्चात् 'सिन्यै' शब्द, फिर 'हुतवहदयिता' (स्वाहा) से निर्मित मंत्र 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' का उद्घाटन, विविधन्यास-विधान, कमलवासिनी की आवरणपूजा, मेघा, धन तथा समृद्धि प्राप्ति के लिये कमलवासिनी मन्त्र की प्रयोग-विधियों का चित्रण है। फिर इसी प्रकरण में तार (ओं), रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), श्रीः कमले कमलालये, तदनन्तर प्रसीद युग्म(प्रसीद प्रसीद), पुनः उक्त तीन बीज (ओं श्रीं ह्रीं), तदनन्तर हृद् (नमः) अन्तवाला 'महालक्ष्यै' पद से निर्मित 'ओं श्रीं ह्रीं श्रीः कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः' इन्दिरा लक्ष्मी के मंत्र का उद्घाटन, षडंग-न्यास, ध्यान, जप, आवरण पूजा आदि का उल्लेख है।

सोलहवें प्रकरण में श्रीसूक्त-साधकों की परम्परा, श्रीसूक्त की साधना के अधिकारी, श्रीसूक्त की विभिन्न ऋचाओं के ऋष्यादि, विनियोग एवं न्यास, विभिन्न अंगों में श्रीसूक्त की ऋचाओं के न्यास, श्री का ध्यान एवं आवरण पूजा, श्रीसूक्त साधना-विधि, साधना में उपयोगी पुष्पादि, लक्ष्मीप्राप्ति आदि के लिये श्रीसूक्त की ऋचाओं के विशेष प्रयोग, भगवती श्री के श्री, वरदा, विष्णुपत्नी आदि बत्तीस नामों की उपासना-विधि तथा श्रीसूक्त साधना में विधि-निषेधादि का व्रिस्तृत विवरण दिया गया है।

सत्रहवें प्रकरण में रमा (श्रीं), भुवनेशी (ह्रीं) तथा मनोज (क्लीं) बीजों से निर्मित 'त्रिपुटा मन्त्र' की साधना-विधि का निरूपण किया गया है। इसमें त्रिपुटा मन्त्र के न्यास, ध्यान, जप-हवन एवं आवरण-पूजा और त्रिपुटा की विशिष्ट आभ्यन्तर साधना का वर्णन किया गया है।

अठारहवें प्रकरण में ध्रुव (ओं), हृदय (नमः) 'भगवत्यै' पद, दान्त (ध), रण्यै (धरण्यै), धरा, णि (धरणि), शिव (ए) युक्त धर (धरे), धारा वर्ण, रे (धारे) और द्विठ अर्थात् 'स्वाहा' के योग से निर्मित धरा मन्त्र 'ओं नमः भगवत्यै धरण्यै धरणिधरे धारे स्वाहा' का उद्घाटन, धरामन्त्र के न्यास-विधान, धरा का ध्यान,

जप, हवन, आवरण-पूजा एवं धनधान्य-धरा आदि की प्राप्ति के लिये धरामन्त्र के विभिन्न प्रयोग बताये गये हैं।

उन्नीसवें प्रकरण में अपने साधकों को अतिशीघ्र फल प्रदान करने वाली भगवती त्वरिता के 'तार (ह्रीं), वर्म (हुं), ऋद्धि (ख) और ए (खे), च (चकार), शिव (ए) युक्त च का अगला वर्ण छ (छे), चरम वर्ण (क्ष), अंगना (स्त्रीं), अर्घी (ऊ) एवं लव (अनुस्वार से युक्त) द्यु अर्थात् ह (हूं), अस्त्र (फट्) अन्त वाले योनि (ए) से युक्त अन्तिम वर्ण क्ष (क्षे फट्) से निर्मित दशाक्षरी मन्त्र 'ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्रीं हूं क्षे फट्' तथा द्वादशाक्षरी' ह्रीं ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट्' मन्त्रों का उद्घाटन, न्यास, सिर-अलिकादि दस अंगों में त्वरिता मन्त्र के अक्षरों के न्यास, रक्तकमलासन पर विराजमान, श्यामलांगी, शूद्रवर्ण के कर्कोटकादि, वैश्य जाति के तक्षकादि, क्षत्रिय जाति के वासुकि आदि तथा ब्राह्मण जाति के अनन्तादि के विविध आभूषणधारिणी, सुकोमल कोंपलों के वस्त्र पहने, गुंजाफलों से रचित आभूषणों की लालिमा से अरुणवर्णा, दर्पण के समान देदीप्यमान कपोलों वाली, तरुणी किरातिनी भगवती त्वरिता के भव्य रूप का वर्णन है। तदनन्तर त्वरिता की आवरण पूजा, त्वरिता साधना में शीघ्र प्राप्त होने वाली सिद्धियों का विघ्नत्व, कामनानुसार हवन-द्रव्य, विघ्नादि के नाश के लिये त्वरिता मन्त्र के प्रयोग, शत्रु-रोगादिनाशक द्वादशरेखात्मक तथा दशरेखात्मक निग्रह तथा दशरेखात्मक अनुग्रह, नौ रेखात्मक अनुग्रह तथा श्रीकर नामक यन्त्रों की निर्माण-विधि, त्वरिता-यन्त्र लेखन के द्रव्य, तथा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इनके प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

बीसवें प्रकरण में दरिद्रता, रोग, दुःख, दुर्भाग्य, जरा तथा अकाल मृत्यु से मुक्त आनन्दमय जीवन-प्रदायिनी भगवती वज्रप्रस्तारिणी नित्या देवी के शक्ति (ह्रीं) से निरुद्ध या पुटित स्मर, दीर्घा, अधर, क , क, अग्नि, ओं, त्य, क्ष्वेळ, द, द्र, अन्त्यवर्ण एवं शिव वर्णों से निर्मित द्वादशाक्षर 'ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं' मन्त्र का उद्घाटन, मन्त्र के ऋष्यादि एवं विभिन्न न्यास, नित्या का ध्यान, नित्या के मन्त्र का जप-आहुति, आवरण-पूजा तथा नित्या की साधना के फलादि का निरूपण किया गया है।

इक्कीसवें प्रकरण में नित्यक्लिन्ना के माया (ह्रीं), नि और द्र वर्ण के बीच में 'त्यक्लिन्नमदद्र' और 'वे' (ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे) तथा अन्त में 'शिरः' अर्थात् स्वाहा पद से निर्मित 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' मन्त्र का उद्घाटन;

नित्यक्लिन्ना मन्त्र के ऋष्यादि एवं न्यास, नित्यक्लिन्ना का ध्यान, जप-हवन, आवरण-पूजा तथा विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति के लिये मन्त्र के विभिन्न प्रयोग बताये गये हैं।

बाइसवें प्रकरण में तार(ओं), माया (ह्रीं), बिन्दु (अनुस्वार) सहित अमरेश (उं) से युक्त अद्रि (द) अर्थात् (दुं), विसर्ग युक्त यही द वर्ण (दुः) नति, (नमः) जिसके अन्त में है, ऐसा 'गायै' पद (गायै नमः) से निर्मित दुर्गामन्त्र 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' का उद्घाटन, मन्त्र के विभिन्न न्यास, शंख, चक्र, धनुष तथा बाण-धारिणी, तीन नेत्रों वाली, सिंह पर विराजमान, दूर्वादल की भांति कान्तिमयी पापविनाशिका भगवती दुर्गा का ध्यान, मन्त्रजप, हवन, अष्टदलकमल यन्त्र में प्रभा, मायादि नौ शक्तियों सहित दुर्गा की आवरण पूजा, सिंहमन्त्र, दुर्गापूजन-यन्त्र तथा विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि के लिये दुर्गामन्त्र के प्रयोग आदि का निर्वचन किया गया है।

तेइसवें प्रकरण में अकस्मात् किसी भयंकर संकट में पड़े व्यक्ति को स्मरण मात्र से उस संकट से मुक्त करने वाली भगवती वनदुर्गा के 'उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम्। यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा' इस ३७ अक्षरों वाले मन्त्र का उद्घाटन, मन्त्र के विभिन्न न्यास, वनदुर्गा का ध्यान, उद्देश्य-भेद से ध्यान-भेद, जप-हवन एवं आवरण-पूजा, शत्रुसेना पर विजय, अपस्मार, लोकतिरस्कार, उच्चाटन, मारण, उन्मादादि रोगों से मुक्ति, गजाश्वादि के उन्मादन तथा वशीकरण की विधि, राष्ट्रादि के लिये रक्षा-विधान, वशीकरण के लिये पुत्तलिका प्रयोग तथा भिन्न-भिन्न द्रव्यों के हवन से भिन्न-भिन्न उपलब्धियों की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है।

चौबीसवें प्रकरण में भक्तों के हित के लिये अनेक रूपों में अवतरित होने वाली भगवती दुर्गा के शूलिनी रूप की साधना का निरूपण किया गया है। इसमें मरुत् (य) से चतुर्थ वर्ण (व), वाद्य वर्ण (ल) से युक्त छान्त वर्ण (ज) से मिलकर बने पद (ज्वल) का दो बार प्रयोग (ज्वल ज्वल), इसके बाद दहन (र) सहित हान्त पंचान्तक (ग) (ग्रह) शब्द से युक्त शूलिनि पद, तत्पश्चात् 'हूं फट्' और अन्त में द्विठान्त (स्वाहा) शब्द से बनने वाले 'ज्वल ज्वल दुष्टग्रहशूलिनि हूं फट् स्वाहा' रूप भगवती शूलधारिणी दुर्गा के मन्त्र का उद्घाटन, न्यास, कृष्णमेघवर्णा भगवती शूलिनी का ध्यान, अष्टदलकमलपीठ पर शूलिनी की आवरण पूजा तथा

दुष्टग्रह, सर्पभय आदि से मुक्ति एवं मारण, मित्रभेद, वशीकरण आदि की सिद्धि के लिये उक्त मन्त्र के विभिन्न प्रयोग वर्णित किये गये हैं।

पच्चीसवें प्रकरण में सूर्यरूपा भगवती भुवनेश्वरी की तांत्रिक उपासना विधि के निरूपण के प्रसंग में सबसे पहले 'प्रणव' फिर भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं', फिर दण्डी (अनुस्वार युक्त) 'खं' (आकाशवाची वर्ण हं), फिर इस (ह) वर्ण के पहले वाला वर्ण 'स' विसर्ग सहित (सः) मिलाने से बनने वाले पराशक्ति भुवनेश्वरी के चार अक्षरों वाले सूर्यमन्त्र 'ओं ह्रीं हंसः' का उद्धार, इस सूर्यमन्त्र के विभिन्न न्यास, आवरणपूजा, अजपामन्त्र 'हंसः' की साधना, न्यास, ध्यान, आवरणपूजा, अजपा के विशेष प्रयोग, 'सोऽहं' की साधना इसके न्यासादि, प्रयोजनतिलक मन्त्र 'ह्रां ह्रीं सः' के न्यासादि, ध्यान, आवरणपूजा एवं इसके विशिष्ट प्रयोगों का उल्लेख तथा सूर्य के अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं घृणिः सूर्य आदित्यः' की साधना का भी वर्णन किया गया है।

छब्बीसवें प्रकरण में सद्या (ओ), बिन्दु (अनुस्वार) युक्त भृगु (स) 'सों', बिन्दु रहित इसी वर्ण 'सो', विष (म्) सहित अनन्त (आ) 'मा' तदनन्तर मकार के अन्त वाले वर्ण (य) और अन्त में नति (नमः) से निर्मित चन्द्रमन्त्र 'सों सोमाय नमः' का उद्घाटन, मन्त्र के न्यासादि, समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले, निर्मल कमलासन पर विराजमान, प्रसन्न वदन, हाथों में कुमुद-पुष्प तथा वरद मुद्रा धारण किये चन्द्रमा का ध्यान, चन्द्र मन्त्र का जप तथा हवन, आठ कमलदलों वाले यन्त्र में रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, भरणी, रात्रि, आर्द्रा, ज्योत्स्ना तथा कला नामक आठ शक्तियों सहित सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु नामक आठ ग्रहों तथा दस दिक्पालों सहित चन्द्रमा की षोडशोपचार आवरणपूजा तथा अकालमृत्युसे मुक्ति, ऐश्वर्यप्राप्ति, रोगादि शान्ति के हेतु लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये अभिलषित वर-कन्या एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के निये चन्द्रमन्त्र के विभिन्न प्रयोगों का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकरण में ध्रुव (ओं), वियत् (ह्) से दशम वर्ण (भ्), सर्ग (:) युक्त अर्घि (ऊः) अर्थात् भूः, फिर भुव और विसर्ग (भुवः) तदनन्तर भृगु (स्), लान्त (व्), और सोलहवां स्वर (:) अर्थात् (स्वः), फिर अग्निपत्नी (स्वाहा) को मिलाने से निर्मित होने वाले अग्निमन्त्र 'ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा' का उद्घाटन करते हुए इसके ऋष्यादिकों के न्यास, शक्ति, स्वस्तिक, पाश, वर तथा अभय मुद्राधारी अग्नि का ध्यान, षट्कोण के बाहर एक त्रिकोण के निर्माण, षट्कोण के मध्य

पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, विस्फुलिंगिनी, रुचिरा तथा ज्वालिनी नामक नौ शक्तियों, जातवेदस्, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजस्, विश्वमुख तथा देवमुख नामक अष्टमूर्तियों और इन्द्रादि दिक्पालों के साथ अग्निदेव की आवरणपूजा आदि के उल्लेख के साथ विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति के लिये उक्त अग्निमन्त्र के विभिन्न प्रयोग बताये गये हैं। इसी प्रकरण में अग्नि के द्वितीय मन्त्र 'ओं भू र्भुवः स्वः अग्ने जातवेद इहावह सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' तथा तृतीयमन्त्र 'उत्तिष्ठ पुरुष हरि पिंगल लोहिताक्ष देहि मे दान् दापय स्वाहा' मन्त्र का उद्घाटन तथा इनके न्यासादि तथा मन्त्रों के विभिन्न प्रयोग बताये गये है।

सत्ताइसवें प्रकरण में 'तार (ओम्), दण्डी (अनुस्वार युक्त) श्री बीज (श्रीं), शक्तिबीज (ह्रीं), मारबीज (क्लीं), अवनिबीज (ग्लौं) और गणपति बीज (गं), तत्पश्चात् चतुर्थी विभक्ति में विघ्न अर्थात् 'गणपति' (गणपतये), फिर 'वरवरद', तदनन्तर 'सर्व' से युक्त 'जनं' (सर्वजनं), तब 'वशं' और 'आनय', फिर 'मे' और अन्त में द्विठ अर्थात् 'स्वाहा' शब्द से निर्मित 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' विघ्नराज गणपति के मन्त्र का उद्घाटन, गणपति मन्त्र के ऋष्यादि न्यास, षडंगन्यास, अकारादि लिपमय पादपीठ पर षट्कोण के मध्य निर्मित त्रिकोणाकार आसन पर विराजमान, देवताओं तथा असुरों द्वारा एक साथ ही पूजित हो रहे भगवान् गणपति का ध्यान, गणपति मन्त्र के जप-हवन, आवरणपूजा, गणपति का ध्यान विशेष, गणपति का चतुरावृति तर्पण, स्तम्भनकर पृथ्वी बीज, गणपति का 'ओं गं स्वाहा' चतुरक्षर मन्त्र, इस मन्त्र के न्यासादि, ध्यान, जप-हवन, आवरणपूजा, मन्त्र के विभिन्न प्रयोग, क्षिप्रगणपति मन्त्र 'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः' का उद्घाटन, इसके न्यासादि, ध्यान, जप-हवन, आवरण पूजा, गणपति के तर्पण की विशेष विधि तथा क्षिप्रगणपति मन्त्र के विशिष्ट प्रयोग आदि विषय वर्णित किये गये हैं।

अट्ठाइसवें प्रकरण में सुर, असुर, सिद्ध तथा मानवादि के मानस को मथित करने वाले कामदेव के 'ओंकार की प्रथम कला अकार से उत्पन्न कलाओं में से प्रथम कला (क्) अवनि (ल्) शान्ति (ई) और चन्द्रखण्ड (अनुस्वार) मिल कर बनने वाले मन्त्र (क्लीं) का उद्धार, मन्त्र के न्यासादि, ध्यान, जप-हवन, अष्टदल कमल की कर्णिका के बीच ऊर्ध्व तथा अधोमुखी दो अग्निपुर अर्थात् एक षट्कोण में कामयन्त्र के निर्माण की विधि तथा उसमें कामदेव की

आवरणपूजा, वशीकरण-काममन्त्र, जगत् मोहन कामार्चना-विधान, कामार्चना-यन्त्र, काम की अन्तरंग साधना, वशीकरण प्रयोग, वाग्बीजयुक्त काम यन्त्र, ऊर्ध्वरेतस्-साधना तथा काम-साधना की अन्य कई विधियों सहित कृष्णमन्त्र की साधना का निरूपण किया गया है।

उन्तीसवें प्रकरण में 'अमर एवं बिन्दुयुक्त ध' से सातवें वर्ण के साथ तीन मात्राओं वाला आद्य स्वर प्रणव मन्त्र अर्थात् 'ओं' इसके ऋष्यादि सहित समस्त न्यास, विष्णु का ध्यान, जप-हवन, अष्टदलकमल में वासुदेवादि मूर्तियों सहित पंचावरण पूजा, प्रणव साधना और योग, योग की परिभाषा, योग के अंग आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, प्राणायाम से भूतसिद्धि, योग साधना की विधि, ओंकार के दस नाम, ओंकार साधना की सात विधियां तथा उत्क्रान्ति (परकाया-प्रवेश) की विधि का निरूपण किया गया है।

तीसवें प्रकरण में वैष्णव-साधना से सम्बन्धित प्रणव (ओं), हृदय (नमः), नारा अक्षर और इनके अन्त में यणा वर्ण, तदनन्तर म वर्ण से आगे का वर्ण (य) से निर्मित अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' का उद्घाटन, इस मन्त्र के ऋष्यादि, न्यास, दशावृति न्यास, मूर्तिन्यास, पंचावरण विष्णुपूजा-विधान तथा अष्टाक्षरज मूर्तिपूजा-विधान का निरूपण किया गया है।

इकतीसवें प्रकरण में मेषादि मास-यन्त्र, वैष्णव-विधान में मेषादि राशियों के यन्त्र, चर, स्थिर एवं उभयात्मक राशियां, केशवादि मूर्तियों के स्वरूप, द्वादश स्वर-युक्त द्वादशाक्षर मन्त्र, केशवादि मूर्तियों के गायत्री मन्त्र, आवरण-पूजा, मेषादि राशियों के यन्त्र और आवरण-पूजा, मीनादि राशि-यन्त्र तथा उनमें आवरण पूजा, मेषादिराशि-विधान का फल एवं श्रीविष्णुस्तोत्र आदि का वर्णन किया गया है।

बत्तीसवें प्रकरण में द्वादश अक्षरात्मक 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र, इस मन्त्र के ऋषि-न्यासादि, ध्यान, जप-हवन, अष्टदल कमल-यन्त्र में वासुदेवादि सहित वासुदेव विष्णु की आवरणपूजा, तार, अन्त्यवर्ण 'क्ष' से तुरीय अर्थात् चतुर्थ अक्षर स, इस स का अग्रिम अक्षर ह, इसके बाद भृगु संज्ञक अक्षर स्, दहनाक्षर र, अनन्त त, वह्नि अक्षर र, वर्म संज्ञक वर्ण हुं और अस्त्र अर्थात् फट्' वर्णों से निर्मित सुदर्शनमन्त्र 'ओं सहस्रार हुं फट्' का उद्घाटन, इस मन्त्र के न्यासादि, सुदर्शन नामक हरि का ध्यान, जप-हवन, चक्रयन्त्र, चक्रहोम यन्त्र, हवन विधि, अष्टम राशि, महाचक्रहोम सर्वार्थप्रद भस्म तथा चक्रमन्त्र के विभिन्न प्रयोग वर्णित किये गये हैं।

तैतीसवें प्रकरण में त्रैलोक्यमोहन मन्त्र 'नमः पुरुषोत्तम अप्रतिरूप लक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयविदारण त्रिभुवनमनोन्मादकर सुरासुर-मनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय दीपय दीपय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय द्रावय द्रावय आकर्षय आकर्षय समस्तपरमसुभग सौभाग्यकर सर्वप्रद सर्वकाम अमुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैः भिन्नय भिन्दय पाशेन घट्टय घट्टय अंकुशेन ताडय ताडय तुरु तुरु किं तिष्ठसि तावद् यावत् समीहितं मे सिद्धं भवतु हुं फट् नमः' , इस मन्त्र के न्यासादि, ध्यान, पूजा के मन्त्र , पुरुषोत्तमपूजा मन्त्र, चक्रादि पूजन मन्त्र, लक्ष्मी मन्त्र, श्री का ध्यान, सुरसुन्दरियों का ध्यान, मन्त्र के प्रयोग का अधिकार, पुरुषोत्तम की विशिष्ट पूजा तथा मन्त्र के विभिन्न प्रयोगों का उल्लेख है।

चौतीसवें प्रकरण में सर्वार्थसिद्धिप्रद अष्टाक्षर श्रीकर मन्त्र 'उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा' का उद्‌घाटन, मन्त्र के ऋष्यादि तथा न्यास, ध्यान, जप-हवन-आवरण-पूजा, श्रीकर मन्त्र के विभिन्न प्रयोग, वराहमन्त्र 'ओं नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवः स्वः पतये भूपतित्वं मे देहि द दापय स्वाहा' के ऋष्यादि तथा न्यास एवं जानु से पादतल पर्यन्त निखरे हुए स्वर्ण की आभा, जानु से नाभि पर्यन्त हिम की भांति पारदर्शी श्वेत वराह, अथवा सजल बादलों की भांति फैली श्यामाभ भुजाओं वाले, पर्वत के समान विशाल शरीर, श्वेतदन्त पर धरा को धारण किये हुए भगवान् वराह का ध्यान तथा मूलाधारस्थ चतुरस्र पृथिवी मण्डल में स्थित स्वर्णाभ, अर्धचन्द्राकार जलमण्डलीय स्वाधिष्ठान में हिमाभ, त्रिकोणाकार आग्नेय मण्डलस्थ नाभि के मणिपूर में अग्निवर्णी, षट्कोणाकार हृदयवर्ती अनाहत में कृष्णवर्णी, वृत्ताकार आकाश मण्डलस्थ कण्ठवर्ती विशुद्धचक्र में नीलाभ और मनोमण्डल के आज्ञाचक्रस्थ सत्यलोक में सत्, चिद् और आनन्द के रूप में वराह का ध्यान, मन्त्र का जप-हवन आवरणपूजा, वराह यन्त्र के निर्माण की विधि, वराहमन्त्र के विविध-प्रयोग, एकाक्षरवराहमन्त्र 'हूं' यन्त्रलेखन सामग्री, वराह-यन्त्र की स्थापना आदि का निर्वचन किया गया है।

पैतीसवें प्रकरण में नृसिंह मन्त्र 'उग्रवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं विश्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्', मन्त्र के विभिन्न न्यास, नृसिंह के प्रसन्न तथा क्रुद्ध रूपों का ध्यान, आवरणपूजा, उक्त नृसिंहमन्त्र के विविध प्रयोग, एकाक्षर नृसिंह मन्त्र 'क्षौं' का उद्‌घाटन, इस मन्त्र के न्यासादि तथा विभिन्न प्रयोग, नृसिंह-यन्त्र के निर्माण की विधि आदि वर्णित हैं।

छत्तीसवें प्रकरण में विष्णु-पंजर यन्त्र के निर्माण की विधि, चक्रादि के निज-निज मन्त्र, त्रिष्टुप्, अनुष्टुब् तथा गायत्री मन्त्र, विश्वरूप-यन्त्र में विश्वरूप विष्णु का आवरण पूजन, चक्रादि के स्वरूपों के ध्यान और पूजन, महावराह और महानृसिंह के स्वरूप, केशवादि मूर्तियों तथा इन्द्रादि दिक्पालों की अर्चना, विष्णुपंजरमन्त्र 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' के साथ गीतामन्त्र 'स्थाने हृषीकेश...' का संयुक्तन्यास, 'विष्णुः प्राच्याम्...' आदि बीस गाथा-मन्त्र, तथा नगरादि की रक्षा का विधान वर्णित है।

सैंतीसवें प्रकरण में विलोम क्रम में अन्त्यवर्ण (क्ष) से तृतीय वर्ण (ह) एवं अर्द्धेन्दु (अनुस्वार) सहित अनुग्रह नामक वर्ण (औ) मिलकर बनने वाले भगवान् शिव के एकाक्षरी प्रासादमन्त्र मन्त्र 'हौं' का उद्घाटन, मन्त्र के ऋष्यादि, ईशानादिन्यास, पंचांगन्यास आदि विभिन्न न्यास, पार्वतीपति सदाशिव का ध्यान, जप-हवन, शूलिन् के आवरण-यन्त्र के निर्माण की विधि, यन्त्र में वामादि नौ पीठशक्तियों सहित शिव की अर्चना, सद्योजातादि पंचदेवों के स्वरूप, आवरण पूजा, पांचब्रह्म विधान, पंचब्रह्म की कलाएं, पंचमन्त्रों के ऋष्यादि, ईशानादि की कलाएं, अष्टत्रिंशत्कलान्यास, पंचाक्षर एवं षडक्षर शिवमन्त्र, इन मन्त्रों के ऋष्यादि तथा न्यास, ध्यान, जप-हवन, स्वदेह में पीठ की कल्पना, दशधा-न्यास, आवरणपूजा, शिवस्तुति, ईश का पंचावरण-विधान, ध्यान, अष्टाक्षर शिवमन्त्र, ध्यान, जप-हवन तथा आवरणपूजा आदि विषय चर्चित किये गये हैं।

अड़तीसवें प्रकरण में छत्तीस अक्षरों वाले दक्षिणामूर्तिमन्त्र—'ओं ह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने। ध्यानैकनिरतांगाय नमो रुद्राय शम्भवे ह्रीं ओं।' की साधना-विधि का उल्लेख किया गया है। इसमें दक्षिणामूर्ति मन्त्र के न्यास, ध्यान, जप-हवन, आवरणपूजा अघोरास्त्र मन्त्र 'ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह बम बम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्' की साधना-विधि, अघोरमन्त्र के विविधन्यास, प्रलयकालीन मेघों के समान कृष्णवर्णी अघोर शिव का ध्यान, जप-हवन, आवरणपूजा, अघोरमन्त्र के प्रयोग एवं अघोर-यन्त्र आदि का आलेखन किया गया है।

उन्तालिसवें प्रकरण में रोग तथा अकाल मृत्यु पर विजय प्राप्त कराने वाले मृत्युंजय मन्त्र 'ओं जूं सः' का उद्घाटन, मन्त्र के विविधन्यास, ध्यान, जप-हवन, आवरणपूजा, मृत्युंजय त्र्यक्षरी-विधान के अन्तर्गत 'ओं' प्रधान साधना, 'जूं'

प्रधान साधना, 'सः' प्रधान साधना, मृत्युंजय-यन्त्र तथा मृत्युंजय मन्त्र के विविध प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

चालिसवें प्रकरण में चिन्तन मात्र से साधकों की अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले 'अनल (र्), क (क्) ष (ष्), म (म्) रेफ् (र्), प्राण (य्), सत्यान्त (औ) वामश्रुति (ऊ) और चन्द्रखण्ड (बिन्दु)के योग से बनने वाले 'र्क्ष्म्र्यौऊं ' रूप चिन्तामणि मन्त्र, मन्त्र के विविधन्यास, उमेश शिव तथा अर्धनारीश्वर का ध्यान, मन्त्र के जप-हवनादि, आवरणपूजा तथा चिन्तामणि मन्त्र के विविध प्रयोग, सर्वरक्षाकर चिन्तामणि-यन्त्र, चण्डेश्वरमन्त्र 'ऊर्ध्व फट्' का उद्घाटन, मन्त्र के न्यास, ध्यान, जप-हवन आवरणपूजा तथा चण्डेश्वर मन्त्र के विभिन्न प्रयोगों का निरूपण किया गया हैं।

इकतालिसवें प्रकरण में मूल प्रकृति, महद्, अहंकार तथा पंच सूक्ष्मभूत रूपी प्रकृति-विकृतियों, पंच कर्मेन्द्रियों, पंच ज्ञानेन्द्रियों एवं पंच महाभूत तथा मनस् रूपी विकृतियों वाले चौबीस तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करने वाली (तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्) चौबीस अक्षरात्मिका शक्ति गायत्रीरूपी कुण्डलिनी, (भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः एवं सत्यं) इसकी सप्त व्याहृतियों तथा 'ओमापोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्स्वरों' रूप 'गायत्रीशिरः ' मन्त्र, इनके ऋष्यादिकों, न्यास, ध्यान, आवरणपूजा, पुरश्चरण-हवन तथा मन्त्र के विविध प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

बयालिसवें प्रकरण में त्रिष्टुब् मन्त्र—'जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः' की साधना के प्रसंग में इसके विभिन्न न्यासों, मन्त्र के आठ पाद और उनकी ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्दियात्मकतादि, मन्त्र के वर्णों और पादों के न्यास, त्रिष्टुभाशक्ति दुर्गा कात्यायिनी का ध्यान, आवरणपूजा, विलोम त्रिष्टुब्रूप अस्त्रमन्त्र की साधना-विधि, दिनास्त्र के प्रयोग की विधि, कृत्यास्त्र का स्वरूप एवं प्रयोग-विधि, त्रिष्टुप् मन्त्र के विभिन्न प्रयोग, भू-विवादशमन यन्त्र की निर्माण-विधि, तथा सीमारक्षा-प्रयोग आदि विभिन्न विषय दिये गये हैं।

तैतालिसवें प्रकरण में अथर्वोक्त 'लवणाम्भसि..' आदि लवणमन्त्र की पांच ऋचाओं के ऋष्यादि, विभिन्न न्यास, मन्त्र के अग्नि आदि देवता, मन्त्र के देवताओं की स्तुति, लवण मन्त्र के प्रयोग का अधिकारी तथा लवण मन्त्र के विभिन्न प्रयोग आदि वर्णित हैं।

चौवालिसवें प्रकरण में अनुष्टप् मन्त्र—'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' मन्त्र के ऋष्यादि, विविधन्यास, पार्वती-पति का ध्यान, आवरणपूजा, अनुष्टुब् मन्त्र के प्रयोग, शताक्षरी मन्त्र और इसके ऋष्यादि, न्यास, ध्यान, जप-हवन, आवरणपूजा तथा शताक्षरी के अनेक प्रयोग वर्णित हैं।

पैतालिसवें प्रकरण में ऋग्वेद के दशम मण्डल के १९१ वें सूक्त में पठित संवादसूक्त के नाम से प्रसिद्ध 'संसमिद्‌युवस वृषन्नग्ने...' आदि चार ऋचाओं की साधन-विधि का निरूपण है। इसमें उक्त ऋचाओं के ऋषि, न्यास, जप, हवन तथा आवरण-पूजा के साथ ही वारुणी ऋचा—'ध्रुवासु त्वासु क्षितिसु क्षियन्तो व्यास्मत्पाशं वरुणो मुमोचत्। अवो वन्माना अदितेरुपस्थाद् यूयं यात स्वस्तिभिः सदा नः' की साधना से सम्बन्धित ऋष्यादि, न्यास, ध्यान, जप-हवन, ध्यान, आवरणपूजा तथा वारुणी ऋचा के प्रयोगों का उल्लेख है।

छियालिसवें प्रकरण में त्रिगुणित, षड्गुणित, द्वादशगुणित तथा घटार्गल आदि यन्त्रों में प्रयोजनानुसार उचित मन्त्रों के संयोजन की विधि का निरूपण किया गया है।

सैतालिसवें प्रकरण में 'ब्रह्मश्रीमन्त्र, राजमुखीमन्त्र, अन्नप्रदायक मन्त्र, अन्नपूर्णामन्त्र, कुबेरमन्त्र, देवगुरु बृहस्पतिमन्त्र, असुर गुरु शुक्रमन्त्र वेदव्यास मन्त्र, संकोचकमन्त्र तथा अश्वारूढामन्त्र, मन्त्रों के ऋष्यादि, न्यास, ध्यान, जप-हवनादि- विधान बताये गये हैं तथा इनके साथ ही भगवती अश्वारूढा का सर्ववश्य यन्त्र एवं अमठ न्यास के स्वरूप का वर्णन है।

अड़तालिसवें प्रकरण में प्राणशक्ति-साधना के प्रसंग में प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र 'ओं आं ह्रीं कों यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः अमुष्य प्राणाः इह प्राणकाः जीवः इह स्थितः सर्वेन्द्रियाणि वांमनसी दृशं श्रुतिं सप्राणकं घ्राणं इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा' के ऋष्यादि, न्यास, ध्यान, जप-हवन, आवरणपूजा, नौ प्राणदूतियों के नाम, स्व, साध्य एवं पुत्तली आदि में प्राणदूतियों की स्थापना-विधि तथा विविध प्रयोगों का उल्लेख है।

उनचासवें प्रकरण में सन्तानप्रद यागविधि का निरूपण किया गया है इसमें पितृ-हवन तथा देव-हवन के लिये हवि को दो भागों के विभक्त करने की विधियां, पंचावरण-यन्त्र में अंगमन्त्र, ईशानादि, भवादि, केशवादि तथा इन्द्रादि के पूजन की विधि तथा—

'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिंचतु प्रजापति र्धाता गर्भं दधातु ते।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवा वा धत्तां पुष्करस्रजा।
हिरण्मयी अरणी निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे'।

इत्यादि मन्त्रों से अभिमन्त्रित हवि को यजमान दम्पती द्वारा खाने, अग्निदेव की अर्चना सहित सन्तानेच्छु दम्पती द्वारा निरन्तर तीन वर्ष तक उक्त याग को सम्पादित करते रहने की विधि का निरूपण किया गया है।

•

1

अक्षरात्मिका मूलप्रकृति

पुराकाल में कभी लय के अन्त में 'प्रधान' या प्रकृति नामक किसी नित्य तत्त्व से सारी सृष्टि आरम्भ हुई। इस प्रधान से ब्रह्मा, हरि और ईश्वर नामक तीन चैतन्य उत्पन्न हुए।

अथाऽभवन् ब्रह्महरीश्वराख्याः पुरा प्रधानात्प्रलयावसाने।
गुणप्रभिन्ना जगतोऽस्य सृष्टिस्थितिक्षयस्पष्टनिविष्टचेष्टाः।।

(प्रपञ्चसारतन्त्र, १/२)

त्रिदेवों को अवगत न था कि वे कौन हैं, कहां से उत्पन्न हुए हैं और इनके जन्म का क्या उद्देश्य है? ये तीनों परंज्योति 'अज' के पास यह जानने के लिये पहुंचे कि वे कौन हैं और उनका काम क्या है?

के वयं केन भाविताः, किं मूलाः किं क्रियाः। (वही, १/१६)

उस परंज्योति ने उन्हें बताया कि वे तीनों 'अक्षर' से उत्पन्न हुए हैं, अक्षर में ही लीन हो जायेंगे तथा उनका काम जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय करना है।

यूयमक्षरसम्भूताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः।
तैरेव विकृतिं यातास्तेषु वो जायते लयः।। (वही, १/१७-१८)

त्रिदेवों को यह तो ज्ञात हो गया कि उनकी उत्पत्ति 'अक्षर' से हुई है, लेकिन,'अक्षर' है क्या? अक्षर स्वयं कहां से उत्पन्न हुआ और इसका 'स्वरूप' क्या है? यह जानना उनके लिये बहुत आवश्यक था। इसलिये ब्रह्मा ने परंज्योति से प्रश्न किया—'हे स्वामिन्! अक्षर क्या है? यह कहां से उत्पन्न हुआ और इसका स्वरूप क्या है?

अक्षरं नाम किं नाथ कुतो जातः किमात्मकम्? (वही, १/१९)

परंज्योति ने उन्हें विस्तार से बताया कि एक मूल अक्षर है। उस मूल अक्षर के विकार रूप अन्य कई अक्षर हैं। उन विकारों के भी कई विकार हैं। इन्हीं अक्षरों से स्थूल-सूक्ष्म समस्त जगत्, वैदिक-तान्त्रिक समस्त मन्त्रों और उनके प्रयोगों की विधियां उत्पन्न हुईं। अज ने ब्रह्मा को बताया कि वह मूल अक्षर 'ह' है।

मूलार्णमर्णविकृतीर्विकृतेर्विकृतीरपि।
तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगांश्च पृथग् विधान्।।
वैदिकांस्तान्त्रिकांश्चापि सर्वानित्थमुवाच 'ह'। (वही, १/२०-२१)

'ह' एक ध्वनि है। तन्त्र-सिद्धान्त इस ध्वनि, शब्द या नाद से ही जगत् की उत्पत्ति मानता है। यह सिद्धान्त जितना पुरातन है उतना ही नवीन भी। आचार्य शंकर के तान्त्रिकसिद्धान्तानुसार प्रकृति, पुरुष और काल ये तीन नित्य तत्त्व हैं।

प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम। (वही, १/२१)

काल की प्रेरणा से यहीं शक्ति सृष्टि करती है। सामान्यतः ईश्वर-प्रणव 'ओम्' के अ उ तथा म् एवं शक्ति-प्रणव 'ह्रीं' के हकार, रेफ तथा माया (ईं) तीन-तीन वर्ण हैं। ये क्रमशः पुरुष, प्रकृति और काल के वाचक हैं।

"प्रकृतिपुरुषकाला अकारोकारमकाराः, हकाररेफमाया वा"।
(वही, १/२१ पर विवरण)

इनमें से काल केवल प्रेरक, पुरुष चिद्रूप तथा प्रकृति अचिद् रूप है। चिद् रूप पुरुष या ईश्वर के संयोग से अचिद् प्रकृति ही संसार का मूल कारण है।

मूल प्रकृति 'ह' का स्वरूप

प्रकृति अणु से भी अणु और स्थूल से भी स्थूल है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि सब कुछ यही है। यद्यपि श्वेत, रक्त, पीत आदि वर्णों, सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुणों अथवा पृथिवी, जलादि भूतों में इसकी स्थिति का विशेष निर्धारण नहीं किया जा सकता, परन्तु यह सामान्य रूप से सबमें और सर्वमयी है। यह प्रकृति मानव-शरीर में सात धातुओं, इन्द्रियों, अन्तःकरण और प्राणादि रूप में विद्यमान है। प्रकृति स्वसंवेद्य है। इसका साक्षात्कार महान् गुरुओं की कृपा से ही होता है। तान्त्रिक शंकर के मत में प्रकृति सामान्य रूप से, पुरुष (रूप प्राण), नपुंसक (रूप मनस्) तथा अंगना (रूप वाणी) क्रमशः इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के रूप में और साधना के समय प्रणवादि मन्त्रों के ध्वनिरूप उच्चारण में उपलब्ध होती है। लेकिन, नारियों में इसकी उपलब्धि विशेष रूप से होती है।

अणोरणीयसी स्थूलात् स्थूला व्याप्तचराचरा।
आदित्येन्द्वग्नितेजोमद् यद्यत्तत्तन्मयी विभुः।।
न श्वेतरक्तपीतादिवर्णैर्निर्धार्य चोच्यते।
न गुणेषु न भूतेषु विशेषेण व्यवस्थिता।।

अन्तरान्तर्बहिश्चैव देहिनां देहपुरणी।
स्वसंवेद्यस्वरूपा सा दृश्या देशिकदर्शितैः।।
यथाकाशस्तमो वापि लब्धया नोपलभ्यते।
पुंनपुंसकयोस्तुल्याऽप्यंगनासु विशिष्यते।। (वही, १/२२-२५)

इस प्रकृति या प्रधान को ही 'शक्ति' कहा जाता है। यह शक्ति हममें है, तुममें हैं, हम सबमें है और हम सब को अतिक्रमित कर बाहर भी स्थित है। प्रलय में समस्त चराचर जगत् इसी प्रकृति में लीन हो जाता है।

प्रलये व्याप्यते तस्यां चराचरमिदं जगत्। (वही, १/२७)

यह प्रकृति अज्ञेय है। यह अपने आपको तो जानती है, किन्तु इसे काल-पुरुष (परविष्णु) के अलावा कोई दूसरा नहीं जानता।

सैव स्वां वेत्ति परमा तस्या नान्योऽस्ति वेदिता।
सा तु कालात्मना सम्यक् मयैव ज्ञायते सदा।। (वही, १/२८)

विश्व की उत्पत्ति

काल प्रलयावस्था में प्रकृति में लीन प्राणियों की जाति, आयु तथा भोगादि विपाकों का फल देने के लिये प्रकृति में विकृति लाकर उसे सृष्टि के लिये उन्मुख करता है। काल से प्रेरित प्रकृति अपने चिन्मात्र (चिद्रूप पुरुष में अन्तर्भुक्त अतएव चिन्मात्र) स्वरूप का त्याग किये बिना ही सृष्टि के लिये उद्यत होती हुई प्राणियों के परिपक्व कर्मों से युक्त घनीभूत 'बिन्दु' का रूप लेती है। काल इस 'बिन्दु' को स्थूल, सूक्ष्म तथा पर तीन रूपों में विभक्त कर देता है। तन्त्रशास्त्र में इन तीनों को ही क्रमशः बिन्दु, नाद और बीज नाम से जाना जाता है। बिन्दु ही ईश्वर है, नाद प्रकृति के चिद्रूप से युक्त पुरुष है तथा बीज प्रकृति का ही अचिद् अंश है।

"बिन्दुरीश्वरः। नादः तस्याः चिन्मिश्रं रूपं पुरुषाख्यम्। बीजमचिदंशः"। (वही, १/४३ पर विवरण)

तान्त्रिक शंकर के अनुसार सृष्टि के आरम्भ की प्रक्रिया में जब बिन्दुरूप परमपुरुष के साथ बीजरूप प्रकृति का अभिन्न सम्बन्ध होता है, तब एक अव्यक्त 'रव' (ध्वनि, स्फोट या परावाक्) उत्पन्न होता है। यह रव या परावाक् ही पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी वाणी के रूप में अभिव्यक्त होती हुई जब श्रोत्रेन्द्रिय

के सम्पर्क में आती है, तब इसे 'शब्दब्रह्म' के नाम से जाना जाता है। इसी अव्यक्त शब्दब्रह्म या परावाक् से सत्त्व, रजस् तथा तमस् रूप तीन गुणों वाले 'महत्' तत्त्व की और महत् से अहंकार की सृष्टि हुई।

सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा ।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते ।।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते ।
तद्विस्तारप्रकारोऽयं यथा वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
बिन्दोस्तस्माद् भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत् ।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते ।
अव्यक्तादन्तरुदितत्रिभेदगहनात्मकम्।
महन्नाम भवेत्तत्त्वं महतोऽहंकृतिस्तथा।। (वही, १/४१-४५)

अहंकार का विकार-विस्तार

अहंकार के तीन भेद हैं—भूतादिक, वैकारिक तथा तैजस्। काल की प्रेरणा से सत्त्वादि त्रिगुण एवं बैन्दव शब्दब्रह्म से युक्त शक्ति (प्रकृति) से उक्त भूतादिक अहंकार से पहले शब्दतन्मात्र की सृष्टि हुई। फिर शब्दतन्मात्र से आकाश; आकाश से स्पर्शतन्मात्र; आकाश से अन्वित स्पर्शतन्मात्र से वायु; आकाश और वायु से रूपतन्मात्र; आकाश तथा वायु से अन्वित रूपतन्मात्र से अग्नि; आकाश, वायु तथा अग्नि से रसतन्मात्र; आकाश, वायु तथा अग्नि से अन्वित रसतन्मात्र से जल; आकाश, वायु, अग्नि तथा जल से गन्धतन्मात्र; आकाश, वायु, अग्नि तथा जल से अन्वित गन्धतन्मात्र से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

कार्य अपने कारण में स्थित होता है तथा कारण के गुण कार्य में अनुगत होते हैं। इस कारण आकाश में वायु, वायु में अग्नि, अग्नि में जल तथा जल में पृथ्वी की स्थिति होती है। आकाश का अपना गुण या स्वभाव शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस तथा पृथ्वी का गन्ध है। इन पांचों तत्त्वों के अपने-अपने गुण क्रमशः उत्तरोत्तर क्रम में पाये जाते हैं। इस प्रकार आकाश में केवल अपना गुण शब्द; वायु में आकाश का गुण शब्द तथा अपना गुण स्पर्श; अग्नि में शब्द, स्पर्श तथा रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये पांचों गुण पाये जाते हैं।

भूतादिकवैकारिकतैजसभेदक्रमादहङ्कारात्।
कालप्रेरितया गुणघोषयुजा शब्दसृष्टिरथ शक्त्या।
शब्दाद् व्योम स्पर्शतस्तेन वायु स्ताभ्यां रूपाद् वह्निरेतै रसाच्च।
अम्भास्येतैर्गन्धतो भूर्धराद्या भूताः पंच स्युर्गुणोनाः क्रमेण।

(वही, १/४६-४७)

तैजस् अहंकार से श्रोत्र, त्वग्, अक्षि, जिह्वा तथा घ्राण नामक पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा वैकारिक अहंकार से वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ नामक पांच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई हैं। अहंकार से ही सोलहवें तत्त्व मनस् की भी उत्पत्ति हुई। आचार्य शंकर के अनुसार पंच महाभूत, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां तथा मनस्—ये सोलह तत्त्व 'विकार' कहे गये हैं। अव्यक्त (प्रकृति), महत्, अहंकार तथा पंच सूक्ष्मभूत 'प्रकृति' कहे जाते हैं। पंच तन्मात्र, महत् तथा अहंकार—ये सात 'प्रकृतिविकृति' हैं।

भूतानीन्द्रियदशकं समनः प्रोक्तो विकारषोडशकः ।
अव्यक्तमहदहंकृतिभूतानि प्रकृतयः स्युरष्टौ च।।
तन्मात्राहंकाराः समहान्तः प्रकृतिविकृतयः सप्त। (वही,१/५६-५७)

शंकर के अनुसार अव्यक्त **'शब्दब्रह्म'** से ही चौबीस तत्त्वों वाले विश्व का आविर्भाव होता है। प्रकृति सहित चौबीस तत्त्वों में मूलप्रकृति अविकारी, महत्, अहंकार तथा पंचतन्मात्राएं प्रकृति-विकृति तथा सोलहवां तत्त्व मनस् केवल विकार है।

त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति के साथ जब उसके महदादि विकारों का विभिन्न प्रकार से सम्बन्ध होता है, तब इन्हीं (प्रकृति, प्रकृति-विकृति तथा विकृति रूप) तत्त्वों से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र; सूर्य, वायु एवं अग्नि रूप त्रिदेवों; ऋगादि तीन वेदों; उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरितरूप तीन स्वरों; प्राण, अपान तथा समान रूप प्राणों; आहवादि मरुतों, गार्हपत्यादि वैश्वानरों, भूर्भुवादि लोकों, इच्छादि शक्तियों, त्रिवर्गों, परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा नामक तीन वाक्समुदायों, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति रूप तीन वृत्तियों; इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना रूप तीन नाडियों तथा जो कुछ भी विश्व में त्रिगुणात्मक हैं और जो विश्व को बनाये रखने में कारणरूप सूर्य-चन्द्र तथा वैश्वानरादि हैं, वे सभी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उत्पन्न विश्व की स्थिति के लिये ही सूर्य, चन्द्र और अग्नि सर्वदा सक्रिय रहते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति सम्प्रोक्ताश्च त्रयो गुणास्तस्याः।
तत्सम्बन्धात् विकृतैर्भेदत्रितयैस्ततं जगत्सकलम्।।
देवाश्च श्रुतयः स्वरा समरुतो लोकाः स वैश्वानराः।
कालाः शक्तियुतत्रिवर्गसहितास्तिस्नस्तथा वृत्तयः।।
नाड्योऽन्यच्च जगत्त्रयेऽत्र नियतं यद्वस्तु सम्बध्य तद्,
विश्वेषां स्थितये चरन्त्यविरतं सूर्येन्दुवैश्वानराः।।
एष सर्गः समुत्पन्न इत्थं विश्वं प्रतीयते।
विश्वप्रतीतौ हि यतः प्रपञ्चस्त्ववगम्यते।। (वही, १/५८-६०)

समस्त विश्व उक्त तीन गुणों से उत्पन्न होने के कारण त्रिगुणात्मक है। यह त्रिगुणात्मक जगत् 'बैन्दव शब्दब्रह्म' से ही प्रवर्तित अतएव उसी का रूप या विकार है। आचार्य शंकर के अनुसार 'शब्दब्रह्म' का तात्पर्य शब्दावगम्य (शब्द से प्रतीत होने वाला) अर्थ है, न कि केवल ध्वनि या 'रव' मात्र। क्योंकि, बिन्द्वात्मक प्रकाशकत्व के बिना केवल ध्वनि, शब्द या रव में अर्थ के प्रकाशन की शक्ति नहीं होती। अर्थ सर्वत्र व्याप्त है। सर्वत्र व्याप्त और सबका कारण या मूल होने से यह अर्थ ही ब्रह्म या प्रकाशक कहा जाता है। विवक्षा अर्थात् कुछ कहने की इच्छा होने पर सर्वव्यापी शब्दब्रह्म, जो मूलाधार में 'अर्थ' के रूप में स्थित है, 'वैखरी वाक्' के रूप में अभिव्यक्त होता है।

शब्दब्रह्मेति शब्दावगम्यमर्थं विदुर्बुधाः।
स्वतोऽर्थानवबोधत्वात् प्रोक्तो नैतादृशो रवः ।।
स तु सर्वत्र संस्यूतो जाते भूताकरे पुनः ।
आविर्भवति देहेषु प्राणिनामर्थविस्तृतः।। (वही, १/६२-६३)

"एवं 'बिन्द्वात्मकं प्रकाशकत्वं विनाऽनवबोधत्वात् तत्प्रोक्तो रवो न ब्रह्मेत्यर्थः," इति विवरणे ।

चतुर्विध प्राणियों की उत्पत्ति

अव्यक्त के उक्त चौबीस तत्त्वों से उद्भिज, स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज भेद—इन चार प्रकार के शरीरों की उत्पत्ति होती है। इनमें से जरायुजों की उत्पत्ति माता-पिता द्वारा सम्पादित ग्राम्यक्रिया (मैथुन) से होती है।

औद्भिजः स्वेदजोऽण्डोत्थश्चतुर्थस्तु जरायुजः।
....
जरायुजस्तु ग्राम्यातः क्रियातः सृतिसम्भवः । (वही, १/६५-७०)

मानवाकार जरायुज शरीर की उत्पत्ति प्रक्रिया का विवेचन करते हुए शंकर कहते हैं कि स्त्री के **मायीय** नामक रज तथा पुरुष के **कार्मक** नामक शुक्र रूप मलों का संयोग होने पर ये दोनों दूसरे दिन बुलबुले के आकार के तथा एक पक्ष में चतुरस्र आकार के हो जाते हैं। माता द्वारा लिये जाने वाले आहार से पुष्ट होता हुआ यह सम्मिलित मल धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। गर्भस्थ शिशु किसी एक नाडी द्वारा, जो माता के हृदय से जुड़ी होती है, अपना आहार ग्रहण करता हुआ परिपुष्ट होता रहता है। क्रमशः अन्तःकरणादि आयतन के आकार ग्रहण कर लेने के बाद २४ तत्त्वों से निष्पन्न उस शरीर में सर्वव्यापी होने के कारण पहले से ही विद्यमान्, अविद्याकल्पित जीवभाव को प्राप्त, परंज्योतिष्कला परदेवता अपने को शरीराभिमानी क्षेत्रज्ञ के रूप मानने लगता है।

क्रमवृद्धौ परंज्योतिष्कला क्षेत्रज्ञतामियात्। (वही, १/८७)

स्त्री-पुरुषात्मक उस मिश्रित तत्त्व से ऋजु आकार वाली सुषुम्ना तथा उससे सम्बद्ध इडा, पिंगला, गांधारी, हस्तिजिह्विका, पुषा, अलम्बुषा, यशस्विनी, शंखिनी तथा कुहू नामक दस प्रधान नाडियों सहित साढ़े तीन लाख नाडियां विकसित होती हैं।

शाखोपशाखतां प्राप्ताः शिरालक्षत्रयात्परम् ।
अर्धलक्षमिति प्राहुः शारीरार्थविशारदाः ।। (वही, १/६०)

गर्भ में स्थित क्षेत्रज्ञ जीवात्मा अपने पूर्वजन्म के कर्मों का स्मरण करता हुआ गर्भ से बाहर आने का प्रयास करने लगता है। जन्म लेने के बाद वह निश्वास लेता है, रोता है, दुःखी होता है। लेकिन, अभिव्यक्ति के मुखादि अंगों के पूर्णरूप से विकसित न होने के कारण अस्पष्ट ध्वनि में ही विलापादि कर पाता है।

अथ पापकृतां शरीरभाजामुदरान्निष्क्रमितुं महान् प्रयासः।
नलिनोद्भव हे विचित्रवृत्ता नितरां कर्मगतिस्तु मानुषाणाम्।
जायतेऽधिकसंविग्नो जृम्भतेऽङ्गैः प्रकम्पितैः ।
जूत्योल्वणं निःश्वसिति भीत्या च परिरोदिति। (वही, २/४१-४२)

लेकिन, जैसे-जैसे उसके कण्ठमुखादि वर्णाभिव्यक्ति के अंग विकसित होते जाते हैं, मूलाधार-स्थित उसके भावों या अर्थों की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट होने लगती है।

आचार्य शंकर के अनुसार 'अर्थ' या भाव की मूलस्थिति मूलाधार में होती है। गुदा और लिंग के बीच स्थित मूलाधार में स्थित अर्थरूपी प्रथम भाव को 'परावाक्' कहा जाता है। इस परावाक् को ही 'कुण्डलिनी' कहा जाता है— 'तामेके कुण्डलीं विदुः'। यह परावाक् चैतन्याभास से युक्त निःस्पन्द माया ही है। विवक्षा (बोलने की इच्छा) होने पर जब यह स्पन्दावस्था में आती है, तो इसे 'पश्यन्ती' कहा जाता है। पश्यन्ती वाक् नादात्मिका एवं सामान्य ज्ञानात्मिका होती है।

इसमें 'इदमित्थम्' (यह ऐसा है) जैसी विशेषता नहीं होती। पश्यन्ती वाक् की अभिव्यक्ति या अनुभूति मूलाधार से नाभि-पर्यन्त होती है। नाभि से हृदय तक व्याप्त वाक् मध्यमा कही जाती है। मध्यमा वाक् बिन्दुतत्त्वमयी हिरण्य-गर्भात्मिका मानी जाती है। हृदय से मुखपर्यन्त अभिव्यज्यमान विराट्रूपिणी वाक् वैखरी कही जाती है। समस्त सांसारिक व्यवहार वैखरी के माध्यम से ही होते हैं। इस वैखरी वाक् से ही समस्त वर्ण उत्पन्न होते हैं।

मूलाधारात्प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः,
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।
वक्त्रे वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्ना-
बद्धस्तस्माद् भवति पवनप्रेरितो वर्णसंघः।। (वही, २/४३)

महर्षि पाणिनि के अनुसार भी (मूलाधार स्थित) आत्मतत्त्व बुद्धितत्त्व द्वारा पहले अर्थतत्त्व का आकलन करता है। इसके बाद वह मनस्तत्त्व को बुद्धि द्वारा आहृत अर्थों की अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित विभिन्न वाक्-अवयवों के सहयोग से स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न तथा अनुप्रदान भेद से पांच प्रकार के वर्णों को जन्म देता है।

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युंक्ते विवक्षया,
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयते स्वरम्.....
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयते स्वरम्.....
सोदीर्णोमूर्धन्यभिहतो वक्त्रमापद्यमारुतः ।
वर्णान् जनयते......." (पाणिनीयशिक्षा, ६-१०)

सवितारूप परावाक् कुण्डलिनी

मूलप्रकृति हृल्लेखा ही परावाक् या कुण्डलिनी कही जाती है। परावाक् हृल्लेखा ही संसार को जन्म देती है। जगत् को जन्म देने के कारण ही इसे 'सविता' (जन्म देने वाली) कहा जाता है। कुण्डलिनी या परावाक् का मूलस्थान मूलाधार है।

सुषुम्ना को वेष्टित करके मूलाधार में स्थित कुण्डलिनीरूपी परावाक् जब स्वयं को अभिव्यक्त करने की इच्छा करती है, तब यह स्वयं को त्रिगुणित, चतुर्गुणित, पंचगुणित, षट्-सप्त-अष्टगुणित, दशगुणित, द्वादशगुणित तथा पंचाशद्गुणित करके आत्मविस्तार कर वाच्य-वाचकरूप विश्व-वपुष् रूप में अभिव्यक्त होती है।

अप्यव्यक्तं प्रलपति यदा कुण्डलिनी तदा ।
मूलाधारे विसरति सुषुम्नावेष्टनी मुहुः ।।
त्रिचतुःपंचषट्सप्त चाष्टशो दशशोऽपि च ।
अथ द्वादशपंचाशद् भेदेन गुणयेत् क्रमात् ।। (वही, २/५१-५२)

परा शक्ति कुण्डलिनी जब त्रिगुणित होती है, तब यह गूढ शक्ति काम अर्थात् 'ईकार' (एवं कामराज बीज क्लीं), अग्नि अर्थात् र (एवं वाग्भव बीज ऐं) तथा नाद अर्थात् ह (एवं नाद प्रधान अन्य बीजों), अ उ म् (ओम्) तथा ह् र् ईं (ह्रीं) के रूप में अभिव्यक्त होती है। त्रिगुणित होकर ही यह परा शक्ति सत्त्वादि त्रिगुण, कफादि त्रिदोष, ऋगादि वेदत्रयी, भू आदि तीन लोकों, ब्रह्मादि त्रिदेवों एवं यन्त्रराज त्रिकोण के रूप में अभिव्यक्त होती है।

यदा त्रिशोऽथ गुणयेत्तदा त्रिगुणिता विभुः।
शक्तिः कामाग्निनादात्मा गूढमूर्तिः प्रतीयते।।
तदा तां तारमित्याहुरोमात्मेति बहुश्रुताः।
तामेव शक्तिं ब्रुवते हरेमात्मेति चापरे ।।
त्रिगुणा सा त्रिदोषा सा त्रिवर्णा सा त्रयी च सा।
त्रिलोका सा त्रिमूर्तिः सा त्रिरेखा सा विशिष्यते।।
एतेषां तारणात्तारः शक्तिस्तद्धृतिशक्तितः। (वही, २/५२-५६)

जब यह परा शक्ति हृल्लेखा चतुर्गुणित होती है, तब यह परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, वाक्, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय अवस्था, मनस्, बुद्धि,

अहंकार तथा चित्त नामक करणों आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है। यही कुण्डलिनी जब पंचगुणित होती है, तब अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद नामक ओंकार के पंचांगों; हकार, रकार, ईकार, बिन्दु तथा नाद-संज्ञक हृल्लेखा के पांच अंगों; भूत, इन्द्रिय तथा वायु पंचकों एवं 'नमः शिवाय' आदि पंचाक्षर मन्त्रों के रूप में व्यक्त होती है। षड्गुणित होने पर यह त्वचा आदि छह धातुओं, विज्ञानमयादि षट्कोशों, छह रसों, बुभुक्षा-पिपासा आदि छह उर्मियों तथा षड्गुणित यन्त्र आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है।

यदा चतुर्धा गुणिता सूक्ष्मादिस्थानवाचिकी।।
वाचिका जाग्रदादीनां करणाना च सा तदा।
सा यदा पंचगुणिता पंचपंचविभेदिनी ।।
पंचानामक्षराणां च वर्णानां मरुतां तथा।
गुणिता सा यदा षोढा कोषोर्मिरसभेदिनी।।
तदा षड्गुणिताख्यस्य यन्त्रस्य च विभेदिनी। (वही, २/५६-५६)

सप्त गुणित होकर यह हृल्लेखा हकार, रेफ, इकार, बिन्दु, नाद, शक्ति तथा शान्त रूप अपने सातों अंग-भेदों से स्वरों सहित सूर्य, कवर्ग सहित मंगल, चवर्ग सहित शुक्र, टवर्ग सहित बुध, तवर्ग सहित बृहस्पति, पवर्ग सहित शनि तथा यवर्ग सहित चन्द्र को जन्म देती है। सप्तभेदिनी होकर ही हृल्लेखा भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः तथा सत्य नामक सप्त लोकों; मेरु, निषध, हेमकूट, हिमवान्, नील, श्वेत तथा शृंगी नामक सात पर्वतों; जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीपों; अतल, वितल, सुतल, गभस्तिमत्, महातल, नितल तथा पाताल नामक सात पातालों; लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, क्षीर, तथा शुद्ध जल वाले सात सागरों; भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि तथा वसिष्ठ नामक सात मुनियों; षड्ज, ऋषभ, गान्धार, धैवत, मध्यम, पंचम तथा निषध नामक सात स्वरों; त्वचा, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, तथा रेतस् नामक सात धातुओं सहित सृष्टि के सात वर्गों वाले जो भी हैं, उन सबके रूप में अभिव्यक्त होती है।

यदा सा सप्तगुणिता तारहृल्लेखयोस्तदा।।
भेदैरहाद्यैः शान्ताद्यैर्भिद्यते सप्तभिः पृथक्।
अकारश्चाप्युकारश्च मकारो बिन्दुरेव च ।।
नादश्च शक्तिः शान्तश्च तारभेदाः समीरिताः ।

हकारो रेफमाये च बिन्दुनादौ तथैव च ।।
शक्तिशान्तौ च सम्प्रोक्ताः शक्तेर्भेदाश्च सप्तधा।
अंगेभ्योऽस्याश्च सप्तभ्यः सप्तधा भिद्यते जगत्।।
लोकाद्रिद्वीपपातालसिन्धुग्रहमुनिस्वरैः।
धात्वादिभिस्तथाऽन्यैश्च सप्तसंख्याप्रभेदकैः।। (वही, २/५६-६३)

जब यह हृल्लेखा अपने को अष्टगुणित करती है, तब इससे भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार नामक आठ प्रकृतियों; अनन्त, वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल तथा गुलिका नामक आठ सर्पों; धर, ध्रुव, सोम, अप्, अग्नि, वायु, प्रत्युष तथा प्रभास नामक आठ वसुओं; पूर्वादि आठ दिशाओं; ब्राह्मी आदि अष्ट मातरों तथा शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईशान, महादेव तथा पशुपति नामक आठ मूर्तियों आदि अष्टवर्गकों को जन्म देती है।

यदाऽष्टधा सा गुणिता तदा प्रकृतिभेदिनी ।
अष्टाक्षरा हि वस्वाशामातृमूर्तिविभेदिनी ।। (वही, २/६४)

हृल्लेखा दस गुणित होकर इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, लकुहा, अलम्बुषा तथा शंखिनी नामक दस नाडियों; हृदय, लिंग, तालु, मुख, उदर, नेत्र, कण्ठ, भ्रूमध्य, शंख (कनपटी) तथा गुदा नामक शरीर के दस मर्मस्थानों; पूर्वादि दस दिशाओं, प्राणापानादि दस वायुओं तथा दसवर्गीय अन्यों को जन्म देती है। द्वादशगुणित होकर यही हृल्लेखा मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन नामक बारह राशियों; विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र तथा उरुक्रम नामक बारह सूर्यों; 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' आदि द्वादशाक्षर मंत्रों तथा अकारादि बारह स्वरों (यहां नपुंसक वर्ण ऋ, ॠ, ऌ तथा ॡ का उल्लेख नहीं है); केशवादि बारह मूर्तियों तथा शक्ति के द्वादशगुणित नामक यन्त्र के रूप में अभिव्यक्त होती है। जब यह हृल्लेखा कुण्डलिनी पचास गुणित होती है, तब मूलाधार में अपने अधिष्ठानरूप पुरुष तत्त्व से दिव्यभाव प्राप्त कर नाद (हकार) के साथ सुषुम्ना के मार्ग से कण्ठादि स्थानों का स्पर्श करती हुई अ से क्ष तक के ५० वर्णों के रूप में अभिव्यक्त होती है।

दशधा गुणिता नाडीमर्माशादिविभेदिनी ।
द्वादशात्मिक्यपि यदा तदा राश्यर्कमूर्तियुक्।।
मन्त्रञ्च द्वादशार्णाख्यमभिधत्ते स्वरानपि ।

तत्संख्यञ्च तथा यन्त्रं शक्तेस्तद्गुणितात्मकम्।
पञ्चाशद्वा प्रगुणिता पञ्चाशद् वर्णभेदिनी।।
पञ्चाशदंशगुणिताऽथ यदा भवेत्सा,
देवी तदात्मविनिवेशितदिव्यभावा।
सौषुम्नवर्त्मसुषिरोदरनादसंगात्,
पञ्चाशदीरयति पंक्तिश एव वर्णान्।। (वही, २/५१-६७)

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्या के उपासक आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्मादि समस्त जगत् की सृष्टि अक्षर अर्थात् शब्दब्रह्म से हुई हैं। यह शब्दब्रह्म सामान्य शब्द या रव मात्र नहीं, अपितु शब्द से प्रतीत होने वाली अर्थस्वरूपा 'बिन्द्वात्मिका परावाक्' ही है। व्यक्तियों के मूलाधार में स्थित यह परावाक् अर्थों की अभिव्यंजना के लिये पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के रूप में उत्तरोत्तर स्थूल होती हुई स्थूल-सूक्ष्मादि समस्त अर्थों को अभिव्यंजित करती है। भाषा के समस्त वर्ण परावाक् के ही स्थूलरूप हैं। वैदिक, तान्त्रिक, पौराणिक मन्त्र, समस्त वाङ्मय तथा आख्यान इसी परावाक् कुण्डलिनी के ही वैखरी रूप हैं।

❋

वर्ण-विभूति

2

आचार्य शंकर के अनुसार भगवती परावाक् कुण्डलिनी से ही अकारादि सभी वर्ण उत्पन्न हुए हैं। परा शक्ति का शरीर अवर्ग, कवर्गादि सात वर्णवर्गों से विरचित है। वे वर्णमयी हैं। वर्ण या वर्णसमूह केवल ध्वनि-प्रतीक या अभिव्यक्ति के माध्यम ही नहीं हैं। वर्ण अनन्त शक्तियों के भण्डार हैं। ये देव-शक्तियों के अधिष्ठान हैं। इनमें रहस्यमयी शक्तियां छिपी हुई हैं। तान्त्रिक वर्णसमूह को मातृका-शक्ति मानते हैं। यह सारा जगत्प्रपंच वर्णमय है। वर्ण उस बीज की तरह हैं, जिसमें सम्पूर्ण वृक्ष अन्तर्निहित है। बीजों के उचित वपन, सिंचन, अंकुरण और पल्लवन से जिस प्रकार एक विशाल वृक्ष को रूपाकार दिया जा सकता है, उसी प्रकार वर्ण या वर्णों के उचित संयोजन, मनन, अर्चन और उनसे हवनादि क्रिया से उनमें विश्ववपुष् (समस्त विश्व को) को रूपायित किया जा सकता है। वर्णों की उचित अर्चना से दैहिक, दैविक और भौतिक आदि समस्त समृद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं। इनसे मारण-मोहन, वशी-करण तथा उच्चाटनादि की नितान्त लौकिक आभिचारिक क्रियाएं सम्पन्न करके अनेक चमत्कारिक प्रयोग देखे और दिखाये जा सकते हैं। आचार्य शंकर के अनुसार मन्त्रों का प्रभाव सामान्य मानवीय बुद्धि और कल्पना से परे है।

वर्णों का मन्त्र के रूप में प्रयोग और साधना के लिये उनके स्वरूप, शक्ति, वर्णाधिदैवत, शरीर में उनकी मूलस्थिति, वर्णों की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया, उनके उच्चारण के स्थान-प्रयत्नादि की जानकारी आवश्यक होती है। सभी मन्त्र वर्णमय और सभी अक्षर मन्त्रमय हैं। परावाक् कुण्डलिनी ही स्पन्दित होती हुई अकारादि पचास अक्षरों तथा उनसे निर्मित एकाक्षर से लेकर अनेकाक्षर मन्त्रों के रूप में अभिव्यक्त होती है। कुण्डलिनी शक्ति के स्पन्दित या जाग्रत् होने पर वर्णात्मक मन्त्रों की अभिव्यक्ति स्वतः होने लगती है।

वर्ण या अक्षर ध्वनि रूप हैं। अक्षर का स्थूल या व्यावहारिक रूप ध्वनि है। अक्षर के ही अन्य नाम 'अर्ण' और वर्ण भी हैं।

अक्षर के विभेद

अकार से क्षकार तक ५१ ध्वनियां या वर्ण हैं। इन्हें मूलार्ण अर्ण-विकृति

और विकृति-विकृति, स्वर-व्यंजन, ह्रस्व-दीर्घ, स्वर-स्पर्श और व्यापक, सूर्य-सोम और अग्नि, पुरुष-स्त्री एवं नपुंसक आदि के आधार पर निम्नांकित रूप में कई वर्गों में विभाजित किया जाता है।

मूलार्ण

परावाक् रूप शक्तिबीज 'ह' ही मूलार्ण है। परावाक् रूप मूलार्ण हकार में ही समस्त शब्द और उनके अर्थों के स्वान्तःस्फुरण रूप रकार और स्वयं में ही वाचक और वाच्यरूप से वर्तमान समस्त संसार का उन्मेष और निमेष करने वाली शक्ति ईकार भी निहित है। इस प्रकार विश्व के निमेषोन्मेष करने वाला ह्, र् और ईं सहित शक्ति बीज 'ह्रीं' को भी मूलार्ण कहा जाता है।

मूलार्णमर्णविकृतीर्विकृतेर्विकृतीरपि.... (प्रपंचसारतन्त्र, १/२०)

अर्णविकृति

उक्त प्रकृति बीज ह्रीं के हकार, रेफ् और माया अर्थात् ई से उत्पन्न अकारादि विसर्गान्त सोलह स्वरों को अर्णविकृति कहा जाता है।

विकृति-विकृति

अकारादि सोलह स्वरों से उत्पन्न क से लेकर क्ष पर्यन्त ३५ व्यंजन वर्णों को विकृति-विकृति कहा जाता है।

> "मूलार्णं शक्तिबीजं केवलमर्थसहितं वा। एवमुत्तरत्रापि। अर्णविकृतीर्हकाररेफमायार्णविकृतित्वेन वक्ष्यमाणाः स्वराः। विकृतीनां स्वराणां विकृतिः। कादिक्षान्ता विकृतेर्विकृतयः"।

(वही, १/२० पर विवरण)

एवं

> "नित्यत्वसमर्थनार्थमुक्तं वाचकं तावदिह हकार एव। तस्य स्वरूप मूलार्णं शक्तिबीजम्। तच्च नित्यं स्वयं मूलार्णतया तस्यापि मूलार्णान्तरायोगात् समस्तमन्त्रानुगततया तेषामेवानित्यतोपपत्तेरिति मूलार्णग्रहणेऽभिप्रायः।
>
> ननु हकारस्यैव कथं शक्तिबीजं स्वरूपमभ्युपगम्यत इति। उच्यते परावाचस्तावच्छक्तिलक्षणं स्वरूपम्। हेति च परावागेव। तदेव स्वान्तस्स्फुरत्सकलशब्दार्थमात्रात्मकरेफतदुन्मेष निमेषशनरूपेकार-विलसितमेव शक्तिबीजम्"।

(वही, दीपिका)

ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर वर्ण

स्वर वर्णों के भी दो भेद हैं—पहला ह्रस्व और दूसरा दीर्घ। अ-आ, इ-ई, उ-ऊ,ऋ-ॠ, लृ-लॄ ए-ऐ, ओ-औ इन १४ वर्णों के सात युग्मों में से प्रत्येक युग्म या जोड़े का पहला वर्ण ह्रस्व और दूसरा दीर्घ है। शेष दो बिन्दु (अं) अनुस्वार एवं विसर्ग (अः) का सम्बन्ध क्रमशः ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों से है।

अग्निसोमात्मक अर्ण

अग्नि और सोम के भेद से वर्ण दो प्रकार के होते हैं। अ से लेकर अः (विसर्ग) पर्यन्त सभी १६ स्वर अग्न्यात्मक तथा क से क्ष पर्यन्त सभी व्यंजन सोमात्मक हैं।

सोम, सूर्य और अग्न्यात्मक अर्ण

सोम, सूर्य और अग्नि इन तीन आधारों पर वर्णों का विभाजन करने पर सभी १६ स्वर सोमात्मक, क से म पर्यन्त २५ स्पर्श व्यंजन सूर्यात्मक तथा य से क्ष पर्यन्त १० व्यंजन अर्ण अग्न्यात्मक माने गये हैं। १० व्यापक वर्णों में से पांच-पांच (**य र ल व** श तथा ष स ह ळ क्ष) के दो वर्ग हैं। आचार्य पद्मपाद के अनुसार समस्त वर्णों में जो अकारांश है, वह अग्न्यात्मक तथा शेष सोमात्मक हैं।

> "सर्ववर्णेषु अकारांशोऽग्न्यात्मकः पुरुषांशः, इतरः प्रकृत्यात्मकः सोमांशः। प्रकाशप्रकाश्यांशाभ्यां वाग्नीसोमांशकत्वं स्वरव्यंजनभेंदेन वा समविभागतो वा"। (वही, विवरण)

पुंस्त्री एवं नपुंसक अर्ण

पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक भेद से अक्षर पुनः तीन प्रकार के होते हैं। स्वर वर्णों में से पांच ह्रस्व वर्ण (अ इ उ ए तथा ओ) पुरुषात्मक, अग्न्यांश अन्तिम पांच दीर्घ वर्ण (आ ई ऊ ऐ तथा औ) प्रकृत्यात्मक त्र्यंश तथा सोमात्मक हैं। मध्य के ४ वर्ण (ऋ ॠ लृ तथा लॄ) नपुंसकांश हैं। शेष दो बिन्दु (अनुस्वार) तथा विसर्ग स्त्री तथा पुरुषांश वर्णों के अनुगामी हैं।

अथोभयात्मका वर्णाः स्युरग्नीषोमभेदतः।
त एव स्युस्त्रिधा भूयः सोमेनाग्निविभागतः।।
स्वराख्याः षोडश प्रोक्ताः स्पर्शाख्याः पंचविंशतिः।
व्यापकाश्च दशैते स्युः सोमेनाग्न्यात्मकाः क्रमात्।।

एषु स्वरा ह्रस्वदीर्घभेदेन द्विविधा मताः।
पूर्वो ह्रस्वः परो दीर्घो बिन्दुसर्गान्तिकौ च तौ।।
आद्यन्तस्वरषट्कस्य मध्यमं यच्चतुष्टयम्।
वर्णानामागमधनैस्तन्नपुंसकमीरितम्।। (प्रपंचसारतन्त्र ३/१-४)

क से म तक जो २५ स्पर्श वर्ण हैं, उनमें अन्तिम वर्ण 'म' क से भ तक के २४ वर्णों की आत्मा है, अतएव इन सभी में अनुस्यूत है। यह 'म' सूर्यात्मक पुरुष तत्त्व है, प्रतिलोम क्रम में भ से लेकर क तक २४ वर्ण प्रकृति, महत् तथा अहंकारादि चौबीस तत्त्वरूप हैं। ये सभी २५ स्पर्शवर्ण वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल तथा आकाश रूप पंचभूतात्मक हैं।

स्पर्शाख्या अपि ये वर्णाः पंचपंचविभेदतः।
भवन्ति पंचवर्गास्तदन्त्यश्चात्मा रविः स्मृतः।।
चतुर्विंशतितत्त्वाख्यास्तस्माद् वर्णाः परे क्रमात्।।
तेन स्पर्शाक्षराः सौराः प्राणाग्नीलाम्बुखात्मकाः।।
व्यापकाश्च द्विवर्गाः स्युस्तथा पंचविभेदतः। (वही, ३/८-१०)

उक्त सभी वर्ण कलाओं, मूर्तियों, देवताओं, औषधियों, वृक्षों, ग्रहों, नक्षत्रों आदि से सम्बद्ध और इनके वाचक हैं। तान्त्रिक उपासना में इन वर्णों की उपासना इनकी अधिष्ठात्री देवताओं, इनसे सम्बन्धित कलाओं, शक्तियों और मूर्तियों आदि के साथ सांगोपांग की जाती है। आचार्य शंकर ने अपने प्रपंचतन्त्रसार में इन वर्णों या मातृकाओं की कलाओं, शक्तियों तथा मूर्तियों की चर्चा विस्तार से की है।

वर्ण और कलाएं

आचार्य शंकर के अनुसार सोम, सूर्य तथा अग्नि से उत्पन्न १६ स्वरों, कभादि १२ युग्म के २४ स्पर्शों और १० व्यापक वर्णों से ही क्रमशः १६ सौम्य, १२ सौर तथा १० आग्नेय कलाओं का जन्म हुआ है।

शशीनाग्न्युत्थिता यस्मात् स्वरस्पृग्व्यापकाक्षराः।।
तत्त्रिभेदसमुद्भूता अष्टात्रिंशत्कला मताः।
स्वरैः सौम्याः स्पर्शयुग्मैः सौरा याद्याश्च वह्निजाः।।
षोडश द्वादश दश संख्याः स्युः क्रमशः कलाः। (वही, ३/१०-१२)

सौम्य कलाएं

१६ सौम्य स्वर वर्णों से क्रमशः अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रा, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा तथा पूर्णामृता नामक आनन्द प्रदान करने वाली १६ सौम्य कलाओं का आविर्भाव हुआ। इन कलाओं को कामदा कहा जाता है। इन चन्द्र कलाओं का सम्बन्ध प्रतिपदादि तिथियों से हैं।

सौर कलाएं

स्पर्शाक्षरों के आत्मरूप 'म' वर्ण को छोड़कर शेष २४ सौर वर्णों का संबन्ध तपन-तापनादि द्वादश सूर्यों और मधु-माधवादि बारह मासों से है। इन २४ वर्णों से कादि-भादि, ठान्त-डान्त क्रम से वसुदा नामक निम्न १२ सौर कलाओं का जन्म हुआ—

क + भ से तपिनी, ख + ब से तापिनी, ग + फ से धूम्रा, घ + प से मरीचि, ङ + न से ज्वालिनी, च + ध से रुचि, छ + द से सुषुम्ना, ज + थ से भोगदा, झ + त से विश्वा, ञ + ण बोधिनी, ट + ढ से धारिणी, ठ + ड से क्षमा।

व्यापक नामक य र ल व श ष स ह ळ तथा क्ष इन १० अग्न्यात्मक वर्णों से क्रमशः धूम्रा, अर्चि, उष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, हव्यवहा तथा कव्यवहा नामक दस धर्मप्रदा कलाओं का आविर्भाव हुआ।

प्रणवजनित ३८ कलाएं

जिस प्रकार अकारादि वर्णों से उक्त ३८ कलाएं उत्पन्न हुईं, उसी प्रकार प्रणव अर्थात् ओंकार की अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद नामक पांच मात्राओं से ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री भेद से निम्नांकित ३८ कलाओं का जन्म हुआ—

अकार से उत्पन्न १० ब्राह्मी कलाएं

सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति तथा सिद्धि। ये ब्राह्मी कलाएं सृष्टिकारिका हैं।

उकार से उत्पन्न १० वैष्णवी कलाएं

जरा, पालिनी, शान्ति, ऐश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति तथा दीर्घा नामक दस वैष्णवी कलाएं स्थितिकारिणी हैं।

मकार से उत्पन्न १० रौद्री कलाएं

तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी तथा मृत्यु ये दस रौद्री कलाएं संहारकारिणी कही गई हैं।

बिन्दु से उत्पन्न ४ कलाएं

पीता, श्वेता, अरुणा तथा असिता

नाद से उत्पन्न १६ कलाएं

नाद से निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा तथा अनन्ता नामक १६ भोग-मोक्षप्रदायिनी कलाएं उत्पन्न हुईं। चार बिन्दुज तथा सोलह नादज कलाएं भोग तथा मोक्षप्रदायिनी कही गई हैं।

वर्णेभ्य एव तारस्य पंचभेदैस्तु भूतगैः।।
सर्वगाश्च समुत्पन्नाः पंचाशत्संख्यका कलाः। (वही, ३/१२)

इसी प्रकार ओंकार की अ उ म बिन्दु तथा नादरूपी मात्राओं से अकारादि सभी वर्ण उत्पन्न हुए हैं। जैसे, ओंकार की प्रथम मात्रा अकार से कवर्ग तथा चवर्ग के १० वर्ण, उकार से टवर्ग और तवर्ग के १० वर्ण, मकार से पवर्ग के पांच और यवर्ग के पांच वर्ण, बिन्दु से षवर्ग के चार(एवं क्ष) तथा नाद से १६ स्वर उत्पन्न हुए।

कलाः कला नादभवा वदन्त्यजाः कचादिवर्णानुभवाष्टतादिकान्।
पयादिकान्माक्षरजाश्च बिन्दुजाः क्रमादनन्तावधिकास्तु षादिकान्।।
(वही, ७/१८)

यद्यपि इस प्रसंग में आचार्य शंकर ने श्वेता, पीता, अरुणा तथा असिता नामक चार कलाओं को ही बिन्दु से उत्पन्न माना है, लेकिन सातवें पटल में बिन्दुजा कलाओं में ष से लेकर अनन्त (अनन्त का तात्पर्य क्ष वर्ण से है) तक पांच वर्णों को बिन्दुज माना है और इस प्रकार ओंकार की कुल ५१ कलाएं हो जाती हैं। किन्तु, 'अनन्तावधिका' का अर्थ 'अनन्तः (क्षः) अवधिः यासाम् कलानाम् ताः अनन्तावधिकाः' ऐसी व्याख्या करें तो, ष, स, ह तथा ळ ये चार वर्ण ही बिन्दुजा कलाओं में आयेंगे। यहां ज्ञातव्य है कि 'क्ष' को शंकर ने सर्वोत्तीर्ण, लयात्मक और 'क एवं ष' का संयुक्त रूप मानकर ही मातृकाओं की संख्या ५० मानी है, इक्यावन नहीं। क्ष को अलग रखने का उद्देश्य यह है कि

'क्ष' वर्ण 'क+ष' का संयुक्त रूप है और इसका अर्थ कर्षण अर्थात् शनैः-शनैः विश्व का विलयन है। सारा विश्व क से लेकर ष तक की वर्ण कलाओं का प्रतिबिम्ब है। विश्व के विलयन अर्थात् विनाश क्रम में जब वर्णमाला के प्रथम वर्ण क और अन्तिम वर्ण ष का मिलन होता है, तब 'क्ष' की स्थिति आती है। इस 'क्ष' का अर्थ विश्वक्षय है। क्ष वर्ण के अधिदेव नरसिंह हैं। यही नरसिंह प्रलय के देवता माने गये हैं।

कषतो भुवनं मत्तः कषयोः संगमो भवेत्।
ततः क्षकारः संजातः नृसिंहस्तस्य देवता। (वही, ४/५६)

वर्णमूर्तियां एवं शक्तियां

५० वर्णों से ही वैष्णव, शैव तथा शाक्त साधना के समय न्यासादि में प्रयुक्त होने वाली १६ स्वर तथा ३५ हल् (व्यंजन) मूर्तियों एवं इतनी ही शक्तियों का जन्म हुआ।

स्वरजनित वैष्णव मूर्तियां

वैष्णव साधना से सम्बन्धित स्वरजनित १६ विष्णु मूर्तियों के नाम केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधूसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, वासुदेव, दामोदर, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध हैं।

व्यंजनजनित वैष्णव मूर्तियां

व्यंजनजनित ३५ वैष्णव हल् मूर्तियों के नाम चक्री, गदी, शांर्गी, खड्गी, शंखी, हली, मूसली, शूली, पाशी, अंकुशी, मुकुन्द, नन्दज, नन्दी, नर, नरकजित्, हरि, कृष्ण, सत्य, सात्वत, शौरि, शूर, जनार्दन, भूधर, विश्वमूर्ति, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, बली, बलानुज, बाल, वृषघ्न, वृष, हंस,(सिंह), वराह, विमल तथा नृसिंह हैं।

स्वरजनित वैष्णव शक्तियां

वैष्णव साधना में प्रयुक्त होने वाली सोलह १६ वैष्णव स्वर शक्तियों के नाम कीर्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, क्षान्ति, क्रिया, दया, मेधा, हर्षा, श्रद्धा, लज्जा, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति तथा रति हैं।

व्यंजनजनित वैष्णव शक्तियां

व्यंजन या हल् वर्णों से उत्पन्न ३५ वैष्णवी शक्तियों के नाम क्रमशः जया,

दुर्गा, प्रभा, सत्या, चण्डा, वाणी, विलासिनी, विरजा, विजया, विश्वा, विनदा, सुतदा, स्मृति, ऋद्धि, समृद्धि, शुद्धि, भुक्ति, मुक्ति, मति, क्षमा, रमा, उमा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, वसुदा, वसुधा, (अपरा) परा, परायणा, सूक्ष्मा, संध्या, प्रज्ञा, प्रभा, निशा, अमोघा तथा विद्युता हैं।

शैव स्वर मूर्तियां

शैव स्वरमूर्तियों के नाम श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अर्घीश, भावभूति, तिथि, स्थाणु, हर, झिण्डीश, भौतिक, सद्योजात, ग्रहेश्वर, अक्रूर तथा महासेन हैं।

शैव हल् मूर्तियां

व्यंजनजनित शैव मूर्तियों के नाम क्रमशः क्रोधीश, चण्डेश, पंचान्तक, शिवोत्तम, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, चतुरानन, अजेश, शर्व, सोमेश्वर, लांगलि, दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढि, दण्डी, अद्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छलगण्ड, द्विरण्ड, महाकाली, कपाली, भुजंगेश, पिनाकी, खड्गीश, वक, श्वेत, भृगु, नकुली, शिव तथा संवर्तक हैं।

शैव स्वरशक्तियां

शैव स्वरशक्तियों के नाम पूर्णोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्विका, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वालामुखी, उल्कामुखी, श्रीमुखी व विद्यामुखी हैं।

शैव हल् शक्तियां

शैव व्यंजन-शक्तियों के नाम सर्वसिद्धिमहाकाली, सर्वसिद्धिमहासरस्वती, गौरी, त्रैलोक्यविद्या, मंत्रशक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, वैखरी, मंजरी, रूपिणी, वीरिणी, कोटरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कुब्जिनी, कपर्दिनी, महावज्रा, जया, सुमुखेश्वरी, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोपधारिणी, सहजा, लक्ष्मी, व्यापिनी तथा माया हैं।

स्वर तथा व्यंजन मूर्तियों और शक्तियों का उपयोग साधना काल में न्यासादि के अतिरिक्त मन्त्रों के उद्धार में भी किया जाता है। ये क्रमशः अकारादि वर्णों की वाचिका हैं। कलाएं, शक्तियां तथा मूर्तियां क्रमशः अपने-अपने वर्ण की प्रतीक हैं। मन्त्रों तथा इसकी विवेचना के प्रसंग में वर्णों के स्थान पर कलाओं

आदि तथा कलादि नामों के स्थान पर वर्णों का उपयोग किया जा सकता है। मन्त्रोद्धार के लिये इनके नामों और इनसे सम्बन्धित वर्णों की जानकारी अनिवार्य है। इसके अलावा न्यासादि क्रियाओं में इनके नाम के प्रथम अक्षर में अनुस्वार तथा अन्त में नमः लगाकर किया जाना चाहिये, जैसे 'अं केशवाय कीर्त्यै नमः, अथवा 'अं केशवकीर्तिभ्यां नमः' आदि।

वर्णौषधियां

उक्त पचास मातृकाओं का सम्बन्ध सत्ताइस नक्षत्रों, नौ ग्रहों, बारह राशियों तथा 50 औषधियों से भी है। विविध सिद्धियों की प्राप्ति के लिये प्रयुक्त होने वाली पचास औषधियां क्रमशः पचास वर्णों से ही उत्पन्न हुई हैं। अकारादि वर्णों से उत्पन्न होने के कारण ही इन्हें 'वर्णौषधि' कहा जाता है। अकारादि वर्णों से उत्पन्न इन पचास औषधियों का व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्व है। व्यक्तियों के नाम नक्षत्रों, राशियों आदि से सम्बद्ध वर्णों पर रखा जाता है। किसी भी व्यक्ति के नाम के प्रथम वर्ण के अनुसार ही वर्णौषधियों का चुनाव करके मन्त्र-साधना, औषधीय-प्रयोग तथा ग्रहादि की अनुकूलता-प्रतिकूलता की जानकारी और तदनुरूप उपचार किया जाता है। गुलिका, क्वाथ और भस्म के रूप में प्रयुक्त वर्ण औषधियां अद्भुत प्रभावशालिनी सिद्ध होती हैं। आचार्य शंकर ने औषधियों के प्रभाव को तर्क से परे माना है।

आचार्य के अनुसार वर्णौषधियों के नाम चन्दन, कुचन्दन (रक्त चन्दन), अगरु, कर्पूर, उशीर, रोगजल, घुसृण, कल्लोल, जाति, मांसी, मुरा, चोर, ग्रन्थि, रोचना, पत्रा, पिप्पल, बिल्व, गुहा, अरुण, तृणक, लवंग, कुम्भी, वदिनी, उडुम्बर, काश्मरिका, स्थिरा, अब्ज, दरपुष्पिका, मयूरशिखा, प्लक्ष, अग्निमंथ, सिंही, कुशा, दर्भ, कृष्णहरपुष्पी, रोहिण, लुण्डुक, वृहती, पाटल, चित्रा, तुलसी, अपामार्ग, शतमूलिलता, द्विरेफ (भृंगराज या भांगरा) विष्णुकान्ता, मुसली, अंजलिनी, दूर्वा, श्रीदेवी, सहा, लक्ष्मी तथा सदाभद्रा हैं।

> **चन्दनकुचन्दनागरुकर्पूरोशीररोगजलघुसृणाः।**
> **कल्लोलजातिमांसीमुराचोरग्रन्थिरोचनापत्राः।**
> **पिप्पलबिल्वगुहारुणतृणकलवंगाह्वकुम्भिवदिन्यः।**
> **सोडुम्बरीकाश्मरिकास्थिराब्जदरपुष्पिकामयूरशिखाः।।**
> **प्लक्षाग्निमन्थसिंहीकुशाह्वदर्भाश्च कृष्णहरपुष्पी।**
> **रोहिणलुण्डुकवृहतीपाटलचित्रातुलस्यपामार्गाः।।**

शतमूलिलता द्विरेफा विष्णुक्रान्ता मुषल्यथांजलिनी।
दूर्वा श्रीदेवीसहे तथैव लक्ष्मीसदाभद्रे।।
आदीनामिति कथितावर्णानां क्रमवशादथौषधयः।।
गुलिकाकषायभसितप्रभेदतो निखिलसिद्धिदायिन्यः।।

(वही, ३/५३-५७)

इनमें से बहुत सी औषधियां या तो विलुप्त हो चुकी हैं या अज्ञात हैं। दीपिका के अनुसार 'कुचन्दन का अर्थ रक्तचन्दन, घुसृण का अर्थ कुंकुम, चोर का अर्थ कच्चूर आदि हैं। दीपिकाकार द्वारा औषधियों के नाम के बारे में दिया गया विवरण अस्पष्ट, अतएव अनुसंधेय है।

"कुचन्दनं रक्तचन्दनम्। घृसृणं कुंकुमम्। चोरं कच्चूरम्। ग्रन्थि? कर्णी वर्चिलगुहमूलम्। नृणं चोर्वेरि फुल्ल कुम्भी, वदनी गजवदनी, काश्मरी अब्दमुत्तमम्। आदरपुष्पी शंखपुरूपी, अग्निमंथं सिंही, कृष्ण दरपुष्पी शंखपुष्पी, रोहिणं वृहती, चित्रा तुलसी, द्विरेफं, मुसलिनी, अंजली, श्रीदेवी तलसहं सदाभद्रम्.." (वही, दीपिका)

उक्त कलाओं, मूर्तियों, शक्तियों और वर्णौषधियों का अकार आदि वर्णों के साथ आन्तरिक और सहज सम्बन्ध है। वर्णौषधियां भी क्रमशः अपने-अपने वर्ण की प्रतीक हैं। मन्त्रों तथा इसकी विवेचना के प्रसंग में वर्णों के स्थान पर कलाओं आदि तथा कलादि नामों के स्थान पर वर्णों का उपयोग किया जा सकता है। मन्त्रोद्धार के लिये इनके नामों और इनसे सम्बन्धित वर्णों की जानकारी आवश्यक है। इसके अलावा न्यासादि क्रियाओं में इनके नाम के प्रथम अक्षर में अनुस्वार तथा अन्त में नमः लगाकर किया जाना चाहिये, जैसे 'अं केशवाय कीर्त्यै नमः', अथवा 'अं केशवकीर्तिभ्यां नमः' आदि।

विसर्ग से उत्पन्न हुए हैं सभी वर्ण

आचार्य शंकर के अनुसार समस्त वर्णों की उत्पत्ति 'ह' रूप विसर्ग से हुई है। विसर्ग का अर्थ विशेष सर्जन करना है। अनुस्वार और विसर्ग में से अनुस्वार या बिन्दु सूर्यात्मक, अतएव पुरुषात्मक है और विसर्ग चन्द्रात्मक अतएव स्त्र्यात्मक या स्त्रीरूप है। बिन्दु की अभिव्यक्ति 'अं' तथा विसर्ग की अभिव्यक्ति 'अः' ध्वनि के रूप में होती है। बिन्दु और विसर्ग के योग की स्पष्ट अभिव्यक्ति अजपा मंत्र 'हंसः' के रूप में देखी जा सकती है। बिन्दु और विसर्ग का योग ही

पुरुष और प्रकृति का योग है। जिस प्रकार प्रकृति से ही विश्व की अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार विसर्ग से सारे ध्वन्यात्मक विश्व-प्रपंच का आविर्भाव होता है। मूलाधार में स्थित प्राणरूप यह विसर्ग जब ऊष्मा और प्राण (बल और श्वास) से युक्त होता है, तब 'ह' के रूप में अभिव्यक्त होता है। यह विसर्ग कण्ठ में आकर वायु से संयुक्त होकर अवर्ग, कवर्गादि के वर्णों के रूप में अभिव्यक्त होता है। विसर्ग जब कण्ठस्थान का अल्पस्पर्श करता है, तब क और जब स्वर का भी सहयोग प्राप्त करता है, तब 'ख' के रूप में अभिव्यक्त होता है। स्वर का कुछ गहरा स्पर्श प्राप्त करके 'ग' तथा 'घ' के रूप में तथा कण्ठ से बाहर निकलते समय 'ङ' के रूप में अभिव्यक्त होता है। ऊष्मा के साथ तालु के स्पर्श से यही विसर्ग चवर्ग, इ, श एवं च के रूप में, मूर्धा के स्पर्श से ऋ, टवर्ग, र एवं ष के रूप में, दन्तस्थान के स्पर्श से लृ, तवर्ग ल एवं स के रूप में, ओंठों के स्पर्श से उ, पवर्ग तथा उपध्मानीय के रूप में तथा दन्त एवं ओठों के स्पर्श से 'व' के रूप में अभिव्यक्त होता है।

बिन्दुसर्गात्मनोर्व्यक्तिममसोरजपां वदेत्।
कण्ठात्तु निःसरन् सर्गः प्रायोऽचामेकतः परः।।
नश्वरः सर्ग एव स्यात् सोष्मा सप्राणकस्तु हः।
स सर्गः श्लेषितः कण्ठे वायुनाऽकादिमीरयेत्।।
वर्गं स्पर्शनमात्रेण कं स्वरस्पर्शनात् तु खम्।
स्तोकगम्भीरसंस्पर्शात् गघौ ङश्च बहिर्गतः।।
विसर्गस्तालुगः सोष्मेशं चवर्गं च यं यथा।
ऋटुरेफषकारांश्च मूर्धगो दन्तगस्तथा।।
लृतवर्गलसानोष्ठादुपूपध्मानसंज्ञकान्।
दन्तौष्ठाभ्यां वं च तत्तत्स्थानगऽर्णान् समीरयेत्।। (वही, ३/६५-६६)

सभी वर्ण पंच भूतात्मक हैं। इनमें उ ऊ ग ज ड द ब ओ ल एवं ळ ये दस वर्ण पार्थिव, ऋ ॠ घ झ ढ ध भ ओ व तथा स जलात्मक, इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र एवं क्ष आग्नेय, अ आ ए क च ट त प य तथा ष वायुमय, लृ ॡ अं ङ ञ ण न म श एवं ह ये दस वर्ण आकाशात्मक हैं—ये सभी वर्ण मन्त्ररूप है। मोहन-स्तम्भनादि के लिये इन वर्णमन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। तान्त्रिक परम्परा के अनुसार मारण-मोहनादि क्रियाओं में वर्णात्मक मंत्रों का प्रयोग उनके तत्त्वों के अनुरूप ही किया जाना चाहिये। इनके लिये पंचभूतात्मक ५० वर्णों को

उनके मूलभूत तत्त्वों के अनुरूप दस-दस वर्णों के समूह के रूप में पांच भागों में विभक्त किया गया है। जैसे—अआ इई उऊ ऋॠ लृॡ, एक ऐख, ओग, औघ अंङ, चट छठ जड झढ ञण, तप थफ दब धभ नम, यष रक्ष लळ वस तथा शह।

ह्स्वाः पंच परे च सन्धिविकृताः पंचाथ विन्द्वन्तिकाः।
काद्याः प्राणहुताशभूकखमया याद्याश्च शार्णान्तिकाः।।
हान्ताः षक्षळसाः क्रमेण कथिता भूतात्मकास्ते पृथक्।
तैस्तैः पंचभिरेव वर्णदशकैः स्युः स्तम्भनाद्याः क्रियाः।। (वही, ३/७०)

स्तम्भनादि क्रियाओं के प्रयोग के लिये पहले एक त्रिकोण बनाना चाहिये। फिर इस त्रिकोण के बीच आरम्भ में अनुस्वार तथा अन्त में नमः से युक्त दो-दो वर्णों को 'अं आं नमः, एं कं नमः, चं टं नमः, तं पं नमः, यं षं नमः आदि क्रम से योजित करके प्रथम तथा पंचम वर्ण-समूह को त्रिकोण के मध्य तथा शेष तीन समूहों को त्रिकोण के तीन कोणों में क्रमशः लिख कर या चिन्तन करके इन वर्णमन्त्रों की साधना करनी चाहिये।

शंकर के अनुसार पार्थिव अक्षरों वाले मंत्रों से मारण, रक्षा तथा स्तम्भनादि, जलात्मक वर्णों वाले मन्त्रों से शान्ति, पुष्टि तथा वर्षणादि, अग्निमय वर्णों के मन्त्रों से दाहनादि, वायुमय वर्णवाले मन्त्रों से शोषण तथा आकाशात्मक वर्णों वाले मन्त्रों से उच्चाटनादि क्रियाएं की जानी चाहिये।

ऊदृगदादिलळाः कोर्नसौ चतुर्थार्णका वसौ वारः।
दृष्ट्यैव द्वितीयरक्षा वह्नेरद्वन्द्वयोनिकादियषाः।।
मरुतः कपोलबिन्दुकपंचमवर्णाः शहौ तथा व्योम्नः।
मनुषु परेष्वपि मंत्री करोतु कर्म्माणि संसिद्ध्यै।।
स्तम्भनाद्यमथ पार्थिवैरपामक्षरैश्च परिवर्षणादिकम्।
दाहशोषणसशून्यतादिकान् वह्निवायुवियदक्षरैश्चरेत्।।
दशभिर्दशभिरमीभिर्नमोऽन्तिकैर्द्वन्द्वशश्च बिन्दुयुतैः।
योनेर्मध्ये कोणत्रितये मध्ये च संयजेन्मन्त्री।। (वही, ३/७१-७४)

इस प्रकार सृष्टि के लिये उन्मुख विसर्ग स्वरूपा मूलप्रकृति 'ह' बिन्दुतत्त्व द्वारा शब्दब्रह्मात्मता की स्थिति में आकर अकारादि १६ स्वरों, इन स्वरों से अनुगत २५ व्यंजनों तथा संयुक्त धातुरूप यकारादि व्यापक वर्णों के साथ ही शब्दस्पर्शादि अपने-अपने गुणों के साथ तन्मात्राओं सहित पंचभूतों सहित समस्त

संसार को जन्म देती है तथा विलय काल में इन सबको अपने में लीन कर निस्तरंग साम्यावस्था 'ह' रूप में ही स्थित हो जाती है।

पूर्वोक्ताद् बिन्दुमात्रात्स्वयमथ रवतन्मात्रतामभ्युपेता-
ऽकारादीन् द्व्यष्ट कादीनपि तदनुगतान् पंचविशत् तथैव।
यादीन् संयुक्तधातूनपि गुणसहितैः पंचभूतैश्च ताभि-
स्तन्मात्राभिर्व्यतीत्य प्रकृतिरथ हसंज्ञा भवेद्व्याप्य विश्वम्।।

(वही, ३/७५)

❋

3

मूलप्रकृति 'हृल्लेखा'
(हकार का विश्वयोनित्व)

'तत्त्व' नामक निस्तरंग मूलप्रकति ही अपने मूलस्वरूप 'ह' के विकार-विस्तार द्वारा शब्दार्थरूप समस्त प्रपंच को जन्म देती है। 'ह' शक्तिवाचक मूलमन्त्र कहा जाता है। हकार वाच्य मूलप्रकृति ही 'बिन्दु तत्त्व' द्वारा वाचक रूप में अकारादि सोलह स्वरों, ककारादि पच्चीस स्पर्श व्यंजनों तथा यकारादि दस व्यापक वर्णों एवं वाच्य रूप से समस्त विश्व-प्रपंच के रूप में अभिव्यक्त होती है। त्रिगुणात्मक विश्व-प्रपंच के रूप में परिणत होने अर्थात् आत्मविस्तार के लिये मूल प्रकृति 'ह' 'रूढ़संस्थित' अर्थात् ई र तथा बिन्दु से युक्त होकर 'ह्रीं' बनती है।

अथ व्यवस्थिते त्वेवमस्य शक्तित्वमिष्यते।
कृतकृत्यस्य जगति सततं रूढसंस्थितेः।। (प्रपंचसारतन्त्र, ४/१)

विवरण के अनुसार 'रूढसंस्थिति' का अर्थ रकार एवं ईकार से युक्त होना तथा 'सतत' का अर्थ बिन्दु (से युक्त होना) है। यह बिन्दु व्यापक है। प्राणात्मक हकार का रूढसंस्थित होना उसका र्कार ईकार तथा अनुस्वार से युक्त होना अर्थात् ह्रीं होना ही है। जिस प्रकार परमात्मा का प्रणव अ उ म् 'ओं' है, उसी प्रकार शक्ति का प्रणव ह् र् ई म् 'ह्रीं' है।

"सततं रूढसंस्थितेः, प्राणात्मकं हकाराख्यं बीजम्।
रेफोढो रूढः संम्भूय स्थितः ई यस्मिन् हकारे स संस्थितिः।
रूढश्चासौ संस्थितिश्चेति रूढसंस्थितिः तस्य रूढसंस्थितेः
ईकाररेफसंयुक्तस्येत्यर्थः। ततः बिन्दुः। तस्य व्याप्तत्वात्।
ततः सहितं यथा भवति तथा संस्थितेरित्यर्थः"।

(वही, ४/१ पर विवरण)

'ह्रीं' में हकार, रेफ तथा बिन्दु युक्त ईकार ये तीन वर्ण हैं। इनमें से हकार प्राणात्मक है। प्राण भगवती परा की क्रिया-शक्ति है। इस 'हकार' से बुभुक्षा, पिपासा, शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु नामक छह ऊर्मियां उत्पन्न हुई हैं। आदि शक्ति की क्रियाशक्ति 'प्राण' बुभुक्षा आदि छह उर्मियों की समष्टि अर्थात् संयुक्त रूप है। बुभुक्षादि छह उर्मियों से क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ तथा ऊ ये छह स्वर

उत्पन्न हुए। रकार आदिशक्ति की कार्यशक्ति है। ह्रीं के 'रकार' (आकाश) से वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी नामक तत्त्व क्रमशः अपने-अपने गुण, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध के साथ उत्पन्न हुए। यह रेफ स्वयं आकाश है। यह अपने गुण शब्द के सहित वायु आदि चार भूतों की समष्टि है। रकार से उत्पन्न वायु आदि चार भूतों से क्रमशः ऋ, ॠ, ऌ तथा ॡ ये चार स्वर उत्पन्न हुए। ईकार आदिशक्ति की 'ज्ञानशक्ति' कही जाती है। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, संघात तथा चेतना ये छह तत्त्व ईकार के गुण हैं। ईकार के इन छह अंगों से क्रमशः ए, ऐ, ओ, औ, अं तथा अः ये छह स्वर उत्पन्न हुए हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, संघात तथा चेतना नामक छह तत्त्वों की समष्टि ही ईकार है। इस प्रकार भगवती परा शक्ति 'ह्रीं' सोलह अंगों वाली मानी जाती है। परा शक्ति बीज ह्रीं के हकार, रकार तथा इकार से सोलह स्वरों की उत्पत्ति तो हुई ही, इनके बुभुक्षादि अंगों से ककारादि अन्य वर्ण भी उत्पन्न हुए। इसी कारण रेफ और इकार युक्त 'हकार' को मूल वर्ण या मूलाक्षर कहा जाता है।

प्राणात्मकं हकाराख्यं बीजं तेन तदुद्भवाः।
षडूर्मयः स्यू रेफोत्था गुणाश्चत्वार एव च।।
पवनाद्याः पृथिव्यन्ताः स्पर्शाद्यैश्च गुणैः सह।
करणान्यपि चत्वारि संघातश्चेतनेति च।।
ईकारस्य गुणाः प्रोक्ताः षडिति क्रमशो बुधैः।।
ऊकारान्तास्त्वकाराद्याः षड्वर्णाः षड्भ्य एव च।
प्रभेदेभ्यः समुत्पन्ना हकारस्य महात्मनः।
ऋकाराद्यास्तु चत्वारो रेफोत्था लृपराः स्मृताः।।
एकारादिविसर्गान्तं वर्णानां षट्कमुद्गतम्।
ईकारस्य षडंगेभ्य इतीदं षोडशांगवत्।।
एभ्यः संजज्ञिरेऽगेभ्य स्वराः षोडश सर्वगाः।
तेभ्यः वर्णान्तराः सर्वे ततो मूलमिदं विदुः।। (वही, ४/२-७)

भगवती का प्रणव बीज 'ह्रीं' और साधक के शरीर में कोई अन्तर नहीं। जिस प्रकार 'ह्रीं' बीज अकारादि सोलह स्वरों वाला है, उसी प्रकार साधक का शरीर भी बुभुक्षा-पिपासादि सोलह अंगों वाला है। इस प्रकार बुभुक्षादि तथा अकारादि षोडशांगों की उत्पत्ति का मूल कारण प्राणात्मिका शक्ति 'ह' का रूढसंस्थित रूप 'ह्रीं' ही है।

"इदं बीजं साधक शरीरं च षोडशोगवदि"ति विवरणे।

एवं

"षोडशांगानि यस्य शक्तिबीजस्य तच्च षोडशांगमि"ति दीपिकायाम्।

यही मूलबीज हकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव का जनक है। समस्त प्राणियों में यही व्याप्त है। इसे ही नाद, प्राण, जीव तथा घोष आदि नामों से जाना जाता है। यही हकार पुरुष रूप रेफ, स्त्रीरूप माया अर्थात् ई तथा नपुंसक रूप बीज अनुस्वार है। इसे ही शक्ति, श्री, सन्नति, कान्ति, लक्ष्मी, मेधा, सरस्वती, क्षान्ति, पुष्टि, स्मृति, शान्ति आदि नामों से जाना जाता है। यही हकार षोडश स्वरों तथा विभिन्न प्राणियों के रूप में आविर्भूत होता है। लोग इस हकार या ह्रीकार शक्ति को ही 'कुण्डलिनी' कहते हैं। आचार्य शंकर का कहना है कि कुछ लोग इस परा शक्ति कुण्डलिनी को हृदय में स्थित मानते हैं, लेकिन यह बात सत्य नहीं है। मूलाधार निवासिनी कुण्डलिनी तो निश्चित रूप से मूलाधार से सुषुम्ना पथ का अनुगमन करती है।

गतो वो बीजतामेष प्राणिष्वेवं व्यवस्थितः।
ब्रह्माण्डं ग्रस्तमेतेन व्याप्तं स्थावरजंगमम्।।
नादः प्राणश्च जीवश्व घोषश्चेत्यादि कथ्यते।
एष पुंस्त्रीनियमितैर्लिंगैश्च सनपुंसकैः।।
रेफो माया बीजमिति त्रिधा समभिधीयते।
शक्तिः श्रीः सन्नतिः कान्तिर्लक्ष्मीर्मेधा सरस्वती।।
क्षान्तिः पुष्टिः स्मृतिः शान्तिरित्याद्यैः स्वार्थवाचकैः।
नाना विकारतां प्राप्तैः स्वैः स्वैर्भावैर्विकल्पितैः।।
तामेनां कुण्डलीत्येके सन्तो हृदयगां विदुः।
सा रौति सततं देवी भृंगीसंगीतकध्वनिः।।
आकृतिं स्वेन भावेन पिण्डितां बहुधा विदुः।
कुण्डली सर्वथा ज्ञेया सुषुम्नानुगतैव सा।। (वही, ४/८-१३)

यह 'ह' ध्वनि समस्त ब्रह्माण्ड तथा प्राणियों में 'तत' अर्थात् व्याप्त हो रही है। इस मूल 'हकार' के साथ बिन्दु के योग अर्थात् 'हं' से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। इसी मूलबीज हकार से अन्वित रकार(ह र्) के साथ अकार का योग होने पर 'हर' तथा हकार से अन्वित रकार के साथ इकार (ह र् इ) का योग होने से

'हरि' की उत्पत्ति हुई। क्योंकि, मूलाक्षर हकार की उत्पत्ति 'बिन्दु' से हुई है, अतः बिन्दु से युक्त 'ह' को 'हं' कहा जाता है।

चराचरस्य जगतो बीजत्वाद् बीजमेव तत्।
मूलस्य बिन्दुयोगेन शतानन्द त्वदुद्भवः।।
रेफान्वितेकाराकारयोगादुत्पत्तिरेतयोः।
हंकाराख्यो भवांस्तेन हरिरित्येष शब्यते।
हरत्वमस्य तेनैव सर्वात्मत्वं ममापि च।।
अस्य बिन्दोः समुत्पत्या तदन्तोऽसौ हमुच्यते।। (वही, ४/१४-१६)

अजपा मन्त्र हंसः

यह 'हं' अजपा मन्त्र (हंसः) का प्रथम बीज है। बिन्दुयुक्त हकार अर्थात् 'हं' पुरुष है तथा 'सः' प्रकृति है। इन दोनों का योग ही 'हंसः 'अर्थात् जीव है। 'हंसः' को अजपा या आत्म महामन्त्र कहा जाता है। इनमें पुरुष रूप बिन्दु का स्थान दांया तथा स्त्रीरूप विसर्ग का स्थान बांया है। इसी कारण व्यावहारिक जगत् में पुरुष का स्थान दाएं तथा स्त्री का बाएं माना गया है। इस महामन्त्र के देवता 'अर्धनारीश्वर' हैं। यह 'हंसः' प्राणियों के प्रत्येक श्वास (हं) तथा निश्वास (सः) के साथ बिना किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से निरन्तर उच्चरित होता रहता है। इसीलिये इस महामन्त्र को 'अजपा' के नाम से जाना जाता है।

स हंकारः पुमान् प्रोक्तः स इति प्रकृतिः स्मता।
अजपेयं मता शक्तिस्तथा दक्षिणवामतः।।
बिन्दुर्दक्षिणभागस्तु वामभागो विसर्गकः।।
तेन दक्षिणवामाख्यौ भागौ पुंस्त्रीविशेषितौ।।
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता ।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्।। (वही, ४/१७-१९)

परमात्म मन्त्र 'सोऽहम्'

जब प्रकृति रूप 'सः' पुरुष रूप 'हं' के साथ तादात्म्य का अनुभव करती है, तब वह 'सः हम्' (सोऽम्) 'मैं वह पुरुष हूं,' की अनुभूति करती है। यह 'सोऽहम्' भी एक महामन्त्र है, जिसे 'परमात्म महामन्त्र' कहा जाता है। परमात्म महामन्त्र 'सोऽहम्' के प्राणात्मक पुंस्तत्त्व 'हकार' तथा प्रकृति तत्त्व 'सकार' का लोप कर देने पर केवल 'ओ+अम्' शेष रहता है। फिर 'एङः पदान्तादति' इस

पाणिनि सूत्र के नियम से पूर्वरूप सन्धि कर देने पर केवल 'ओम्' शेष रह जाता है। यह 'ओम्' पुरुष और प्रकृति से परे पूर्ण परमात्मन् है।

पुंरूपं सा विदित्वा स्वं सोहन्भावमुपागता।
स एष परमात्माख्यो मनुरस्य महामनोः।।
सकारंच हकारंच लोपयित्वा प्रयोजयेत्।
सन्धिं वै पूर्वरूपाख्यं ततोऽसौ प्रणवो भवेत्।। (वही, ४/२०-२१)

शक्ति के सात भेद

परेशवाचक ओं और परावाचक 'ह्रीं' में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है । विश्वोतीर्ण और विश्व के तारक होने के कारण ओम् को 'तार' भी कहा जाता है और विश्व की तारिका होने से 'ह्रीं' 'तारा' कही जाती है। तार के अ, उ, म्, नाद, शक्ति, शान्त और शान्तातीत नामक सात भेद होते हैं। आचार्य शंकर के अनुसार तार या ओम् के इन सात भेदों में से शान्त और शान्तातीत अंश विश्व से परे हैं। जबकि इसके 'म्' अंश से आकाशादि पंच भूत, 'उ' से सूर्यादि तेजस् तथा प्रथमांश 'अ' से समस्त शब्द उत्पन्न हुए हैं। ईश्वर प्रणव ओं की भांति ही शक्ति-प्रणव 'ह्रीं' के भी ह्, र, ई, बिन्दु , नाद, शक्ति तथा शान्त नामक सात भेद हैं। शक्ति के इन सात भेदों से ही सारा जगत् सात भेदों में विभक्त होता है।

ताराद् विभक्ताच्चरमांशतः स्युर्भूतानि खादीन्यथ मध्यमांशात् ।
इनादितेजांसि च पूर्वभागाच्छब्दाः समस्ताः प्रभवन्ति लोके।।

(वही, ४/२२)

वर्णरूपिणी हृल्लेखा एवं सात ग्रह

बताया जा चुका है कि भगवती हृल्लेखा 'ह्रीं' के हकार, रेफ, ईकार, बिन्दु, नाद, शक्ति तथा शान्त नामक सात अंग हैं। हृल्लेखा अपने इन सात अवयवों से अवर्ग, कवर्गादि सात वर्गों तथा सूर्यादि सात ग्रहों को जन्म देती है। हृल्लेखा अपने सात अंगों में से हकार से स्वरों के स्वामी सूर्य, रकार से कवर्ग के स्वामी मंगल, ईकार से चवर्गेश शुक्र, बिन्दु से टवर्गपति बुध, नाद से तवर्गेश बृहस्पति, शक्ति से पवर्गेश शनि तथा शान्त से यवर्ग के स्वामी सोम को अपने-अपने वर्गाक्षरों सहित जन्म देती है।

सप्तग्रहात्मिका प्रोक्ता यदेयं सप्तभेदिनी ।।
तदा स्वरेशः सूर्योऽयं कवर्गेशस्तु लोहितः।

चवर्गप्रभवः काव्यष्टवर्गाद् बुधसम्भवः ।।
तवर्गोत्थः सुरगुरुः पवर्गोत्थः शनैश्चरः ।
यवर्गजोऽयं शीतांशुरिति सप्तगुणा त्वियम् ।। (वही, ४/२४-२६)

हृल्लेखा के विकार रूप अकारादि पचास वर्णों से मेषादि बारह राशियों, राशियों से अश्विनी, भरणी आदि सत्ताइस नक्षत्रों, पचास (या इक्यावन) वर्णों से चन्दन, रक्त चन्दन आदि ५० वर्णौषधियों और २७ नक्षत्रों से कारस्कर आदि २७ नक्षत्र वृक्षों एवं विलोम क्रम में व्यंजनों के क्षवर्ग, षवर्ग, मवर्ग, नवर्ग, णवर्ग, ञवर्ग तथा ङवर्ग रूपी सात वर्गों तथा (आठ-आठ में विभाजित) स्वरों के दो वर्गों से क्रमशः केतु, राहु, शनि, बृहस्पति, बुध, शुक्र, मंगल, चन्द्र तथा सूर्य नामक नौ ग्रहों और उक्त क्रम से ही ग्रहों से सम्बन्धित मरकत, गोमेद, नीलम, विद्रुम, हीरक, पुष्पराग, वैदूर्य, मुक्ता तथा माणिक्य नामक नौ रत्नों की उत्पत्ति हुई।

(वही, ४/३१-३६ एवं ८/५)

वर्ण एवं राशियां

हृल्लेखा के विकार रूप वर्णों में से बारह राशियों का जन्म हुआ है। भगवती पराशक्ति जब आत्मविस्तार करने लगती है, तब उसके मातृका रूप अआइई से मेष, उऊऋ से वृष, ॠऌॡ से मिथुन, एऐ से कर्क, ओऔ से सिंह, अंअः शषसहळ से कन्या, कवर्ग से तुला, चवर्ग से वृश्चिक, टवर्ग से धनु, तवर्ग से मकर, पवर्ग से कुम्भ तथा यरलव एवं क्ष से मीन नामक राशियों का जन्म हुआ है।

अस्या विकाराद् वर्णेभ्यः जाता द्वादश राशयः...

आद्यैर्मेषाह्वयो राशिरीकारान्तैः प्रजायते।
ऋकारान्तैरुकाराद्यैर्वृषो युग्मं ततस्त्रिभिः।।
एदैतोः कर्कटो राशिरोदौतोः सिंहसम्भवः।
अमःशवर्गळेभ्यश्च संजाता कन्यका मता।।
षड्भ्यः कचटतेभ्यश्च पयाभ्यांच प्रजज्ञिरे।।
वणिगाद्याश्च मीनान्ता राशयः शक्तिजृंभणात्।।
चतुर्भिर्यादिभिः सार्द्धं स्यात् क्षकारस्तु मीनगः। (वही, ४/३१-३४,३७)

वर्ण एवं नक्षत्र

इन्हीं मातृकावर्णों (से उत्पन्न राशियों से) में से अ आ से अश्विनी, इ से

भरणी ई उ ऊ से कृत्तिका, ऋ ॠ ऌ ॡ से रोहिणी, ए से मृगशिरा, ऐ से आर्द्रा, ओ औ से पुनर्वसु, अं अः तथा ळ से रेवती, क से तिष्य, ख ग से अश्लेषा, घ ङ से मघा, च से पूर्वाफाल्गुनी, छ ज से उत्तराफाल्गुनी, झ ञ से हस्ता, ट ठ से चित्रा, ड से स्वाती, ढ ण से विशाखा, त थ द से अनुराधा, ध से ज्येष्ठा, न प फ से मूला, ब से पूर्वाषाढा, भ से उत्तराषाढा, म से श्रवणा, य र से श्रविष्ठा, ल से शतभिषा, व श से प्रौष्ठपदा (पूर्वभाद्रपदा) तथा ष स ह से उत्तरभाद्रपदा नामक सत्ताइस नक्षत्रों का जन्म हुआ। 'ळ'वर्ण का सम्बन्ध अं अः के साथ रेवती नक्षत्र के साथ है। अं तथा अः ही बिन्दु और विसर्ग कहे जाते हैं। ये बिन्दु और विसर्ग क्रमशः सूर्य और चन्द्र हैं। अं अः का ळ के साथ योग ही सूर्य और चन्द्र का रेवती के साथ योग कहा जाता है। रेवती के साथ सूर्य और चन्द्र के योग को अमावस्या कहते हैं। 'क और ष' के संयोग से 'क्ष' वर्ण बनता है। क और ष के संयोग से निष्पन्न 'क्ष' वर्ण के देवता 'नृसिंह' हैं। क और ष का योग नरसिंह के साथ होने पर विश्व-विलय की प्रक्रिया आरम्भ होती है। त्रिगुणात्मिका हृल्लेखा के रजस् अंश से दिन तथा तमस् से रात्रि होती है। इसके सत्त्वांश का सहारा लेकर सूर्य मेरु पर्वत की परिक्रमा करता है। इसी ह्रीं से ग्रह, राशि, दिन, तिथि तथा करण रूप पंचांगों की उत्पत्ति होती है।

एभ्य एव तु राशिभ्यो नक्षत्राणां च सम्भवः।
स चाऽप्यक्षरभेदेन सप्तविंशतिधा भवेत्।।
आभ्यामश्वयुगेर्जाता भरणी कृत्तिका पुनः।
लिपित्रयाद्रोहिणी च तत्पुरस्ताच्चतुष्टयात्।।
एदैतोर्मृगशीषर्द्रि तदन्त्याभ्यां पुनर्वसुः।
अमसो केवलो योगो रेवत्यर्थं पृथङ्मतः ।।
कतस्तिष्यस्तथाऽश्लेषा खगयोर्घङयोर्मघा।
चतः पूर्वाऽथ छजयोरुत्तरा झञयोस्तथा।।
हस्तश्चित्रा च टठयोः स्वाती डादक्षरादभूत् ।
विशाखा तु ढणोद्भूता तथदेभ्योऽनुराधिका।।
ज्येष्ठा धकारान्मूलाख्या नपफेभ्यो बतस्तथा।
पूर्वाषाढा भतोऽन्या च संजाता श्रवणा मतः ।।
श्रविष्ठाख्या च यरयोस्तथा शतभिषा लतः ।
वशयोः प्रोष्ठपत्संज्ञा षसहेभ्यः परा स्मृता।।

ताभ्याममोभ्यां ळार्णोऽयं यदा वै सह वत्स्यते।
तदेन्दुसूर्ययोर्योगादमावस्या प्रकीर्त्यते।।
कषतो भुवनं मत्तः कषयोः संगमो भवेत्।
ततः क्षकारः संजातो नृसिंहतस्य देवता ।।
स पुनः षसहैः सार्धं परप्रोष्ठपदं गतः । (वही, ४/५१-६०)

नक्षत्र-वृक्ष

वर्णौषधियों के अलावा आचार्य शंकर ने सत्ताइस नक्षत्रों से सम्बद्ध २७ नक्षत्र वृक्षों का भी उल्लेख किया है। शंकर ने अश्विनी आदि नक्षत्रों के क्रम से ही कारस्कर, आमलक, उदुम्बर, जम्बु, खदिर, कृष्ण, वंश, पिप्पल, नाग, रोहिण, पलाश, प्लक्ष, अम्बष्ठ, बिल्व, अर्जुन, विकंकत, वकुल, सरल, सर्ज, वंजुल, पनस, अर्कक, शमी, कदम्ब, आम्र, निम्ब तथा मधूक नामक २७ नक्षत्र वृक्षों का उल्लेख किया है।

अपने जन्म के नक्षत्र के आधार पर रखे गये अपने नाम के अनुरूप व्यक्ति अपना नक्षत्र-वृक्ष जान सकता है। आचार्य शंकर ने निर्देश किया है कि व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने कल्याण के लिये अपने नक्षत्र-वृक्ष को कभी न काटे, उसका रोपण, सिंचन एवं पल्लवन करे तथा अपने जन्म से सम्बन्धित तिथि, वार तथा नक्षत्रों में अपने नक्षत्र-वृक्ष के नीचे बैठ कर मन्त्रादि की साधना करे। (वही, ४/६०-६४)

इस प्रकार सृष्टि के लिये उन्मुख 'ह' रूप मूलप्रकृति बिन्दुतत्त्व द्वारा शब्दब्रह्मात्मता की स्थिति में आकर अकारादि १६ स्वरों, इन स्वरों से अनुगत २५ व्यंजनों तथा संयुक्त धातुरूप यकारादि व्यापक वर्णों के साथ ही शब्दस्पर्शादि अपने-अपने गुणों के साथ तन्मात्राओं सहित पंचभूतों को जन्म देती है तथा विलय काल में इन सबको अपने में लीन कर निस्तरंग साम्यावस्था 'ह' रूप में ही स्थित हो जाती है। यह सारा संसार 'हं' अक्षर से वाच्य ह्ल्लेखा(ह्रीं) के विकार-विस्तारमय वर्णों से उत्पन्न हुआ है। अतः वर्णवाच्य समस्त जगत् के विकास या विकार का 'मूल कारण' होने से इस 'हं' बीज को चराचर जगत् का मूल कहा जाता है। आचार्य शंकर के अनुसार परा शक्ति ह्ल्लेखा संसार के समस्त प्राणियों की प्राणरूपा है। इसका उपासक सांसारिक कर्म-बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है। अतः जन्म-मरण रूपी कर्म-बन्धनों से मुक्ति

के लिये साधक को चाहिये कि वह नित्य ही 'ह्रीं' मन्त्र का जप, अर्चन तथा हवन आदि सम्पादित करता हुआ परा की उपासना में निरत रहे।

इति मूलाक्षरविकृतं कथितमिदं वर्णविकृतिबाहुल्यम् ।
सचराचरस्य जगतो मूलवान् मूलताऽस्य बीजस्य।।
यां ज्ञात्वा सकलमपास्य कर्मबन्धं तद्विष्णोः परमपदं प्रयाति लोकः ।
तामेतां त्रिजगति जन्तुजीवभूतां हृल्लेखां जपत च नित्यमर्चयीत।।

(वही, ४/७५-७६)

❋

दीक्षा में मण्डप-मण्डलादि का निर्माण

4

आचार्य शंकर के अनुसार 'दाञ् दाने तथा क्षि क्षये' इन दो धातुओं से निष्पन्न 'दीक्षा' शब्द का सामान्यार्थ एक ऐसी आध्यात्मिक क्रिया है, जिसमें व्यक्ति को दिव्यता प्रदान करने तथा त्रिविध तापों-पापों को नष्ट करने की सामर्थ्य होती है। साधक के मानवीय भावों में दिव्यता लाने तथा उसके दोषों को दूर करने के लिये किसी समर्थ गुरु द्वारा सम्पन्न विशेष क्रियाविधि को 'दीक्षा' कहा जाता है। जिस वर्ण या वर्ण-समूह के द्वारा उस वर्ण या वर्ण-समूह के वाच्य 'तत्त्व' के मनन से साधक का दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रिविध भय से त्राण (रक्षण) होता है, उस वर्ण या वर्ण-समूह को 'मन्त्र' कहा जाता है।

दद्याच्च दिव्यभावं क्षिणुयाद्दुरितान्यतो भवेद्दीक्षा ।
मननात्तत्त्वपदस्य त्रायते इति मन्त्रमुच्यते भयतः।।

(प्रपंचसारतन्त्र ५/२)

पद्मपाद के अनुसार दीक्षा में यह सामर्थ्य उसमें मन्त्रों के योग से आती है। दीक्षा और मंत्र में अटूट सम्बन्ध है।

दीक्षायाः सिद्धिदानसामर्थ्यं..दीक्षाया
अपि मन्त्रयोगसामर्थ्यहेतुरिति विवरणे।

दीक्षा के प्रकार

दीक्षा तीन प्रकार की होती है—आणवी, शाक्ती तथा शाम्भवी। आणवी दीक्षा को मन्त्रदीक्षा, शाक्तदीक्षा को शक्तिपात तथा शाम्भवी दीक्षा को वेधदीक्षा भी कहा जाता है। आणवी या मन्त्रदीक्षा में गुरु अपनी शक्ति से शिष्य के भीतर प्रवेश करके उसके प्रत्येक अंग में स्वर, स्पर्श तथा व्यापक वर्णों (अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग तथा यवर्ग इन सात वर्गों) का यथाविधि एक-एक करके या सामूहिक रूप से न्यास कर शिष्य के अशुद्ध शरीर को निर्मल बनाता है। इसके बाद हवन आदि बाह्य विधानों का सम्पादन करके वह शिष्य को मन्त्र प्रदान करता है। शाक्तदीक्षा चाक्षुषी, स्पार्शी, वाचिकी तथा मानसी भेद से चार प्रकार की होती है। इस दीक्षा में गुरु अपनी दृष्टि, स्पर्श, वाणी अथवा मानसिक प्रभाव से अपनी शक्ति को शिष्य के शरीर में प्रवेश कराके कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत्

कर उसके शरीर को देवत्त्व प्रदान करता है। इन दीक्षाओं में शाम्भवी दीक्षा तीव्रतम दीक्षा मानी जाती है। इसमें गुरु दीक्षाकाल में ही शिष्य को जीव-ब्रह्मैक्य का अनुभव कराके उसे जीवनमुक्त बना देता है।

"तत्र आणवी दीक्षा अणुभिः मन्त्रैः क्रियमाणा अनेकविधा। तत्रोक्त चतुर्विधलिपिन्यासानामेकेन शिष्यशरीरमशुद्धं संहृत्य शुद्धं सृजेदिति न्यासरूपाणवीदीक्षाप्रकारः। होमादिपूर्वकं तूत्तरत्रभविष्यति। स्वशक्तिसूत्रेण शिष्यदेहं प्रविश्य तत्त्वसंहारं कृत्वा तं परदेवतारूपं भावयेदिति शाक्तदीक्षा..। सा च बहुप्रकारा चाक्षुषी स्पार्शी वाचिकी मानसीत्यादिद्वारभेदात्। शाम्भवी दीक्षा केवलस्वरूपस्थितिमात्रेण शिष्यसर्वदेहग्रसनरूपा.." इति प्रथमपटले विवरणकारः।

दीक्षामण्डप एवं वास्तुदेव-पूजन

शंकराचार्य ने मन्त्र-साधना के लिये शिष्य को दीक्षित करने हेतु दीक्षा-मण्डप तथा अर्चना-मण्डप के निर्माण की विधि का विस्तृत निरूपण किया है। दीक्षा-मण्डप निर्माण की विधि का आरम्भ वास्तुदेवताओं की अर्चना से होता है। आचार्य के अनुसार पुराकाल में यज्ञादि के सम्पादन के लिये मण्डप तथा गृहादि निर्माण में बाधा उत्पन्न करने वाला 'वास्तुपुरुष' नामक एक दैत्य था। उस वास्तुपुरुष को चतुरस्र (धरती) पर पटक उसके शरीर पर चढ़कर ५३ देवताओं ने उसका वध कर दिया था। मण्डप-निर्माण के आरम्भ में एक चतुरस्र (चतुष्कोण) यन्त्र का निर्माण करके उसमें उस वास्तुपुरुष का हनन करने वाले ५३ देवों की उनके लिये निर्धारित स्थान पर अर्चना करके उन्हें बलि प्रदान की जाती है।

अभवत्पुराऽथ किल वास्तुपुमानिति विश्रुतो जगदुपद्रवकृत्।
चतुरस्रसंस्थितिरसौ निहतो निहितः क्षितौ सुरगणैर्दितिजः।।
तद्देहसंस्थिता ये देवास्ते विश्रुतास्त्रिपंचाशत्।
मण्डलमध्येऽभ्यर्च्या यथा तथोक्तक्रमेण वक्ष्यन्ते।।

(वही, ५/५-६)

चतुरस्र(चतुष्कोण) पृथ्वी का प्रतीक है। इसके निर्माण के लिये पहले धरती को समतल करके उस पर आठ अष्टकों अर्थात् कुल ६४ छोटे चतुरस्रों वाला एक बड़ा चतुष्कोण बनाना चाहिये। फिर उन चौसठ कोष्ठों में वास्तु पुरुष

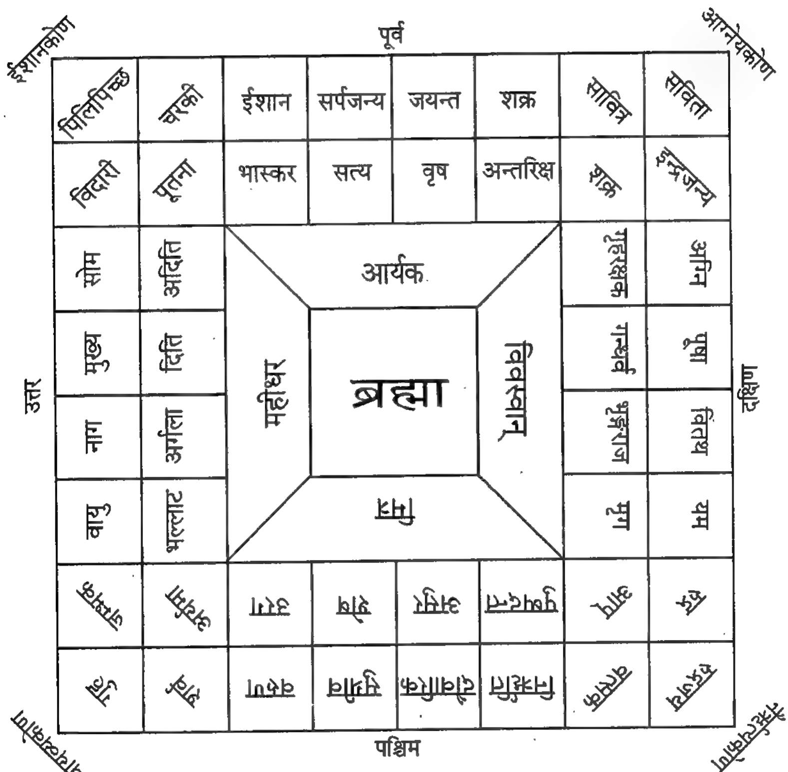
को मारने वाले तिरपन देवताओं की अर्चना करके उन्हें बलि प्रदान करनी चाहिये। इसके लिये उन ६४ चतुष्कोणों के मध्य में स्थित चार चतुष्कोणों को एक मान कर उसके बीच ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये। फिर उस ब्राह्म प्रकोष्ठ के चारों ओर के चार चतुष्कोष्ठकों (कुल १२ कोष्ठक) में क्रमशः आर्यक, विवस्वान्, मित्र तथा महीधर; इसके बाद चार उप दिशाओं के १६ कोष्ठकों में आग्नेय कोण में सावित्र, सविता, शक्र तथा इन्द्रजय; नैर्ऋत्य में रुद्र, रुद्रजय, आप् तथा वत्सक; वायव्य में शर्व, गुह, अर्यमा एवं जम्भक तथा ईशान कोण में पिलिपिच्छ, चरकी, विदारी तथा पूतना की स्थापना कर वासव (पूर्व), यम (दक्षिण), जलेश (पश्चिम) तथा शशि (उत्तर) दिशावर्ती बत्तीस कोष्ठकों में से पूर्व के कोष्ठों में ईशान, सर्पजन्य, जयन्त, शक्र, भास्कर, सत्य, वृष तथा अन्तरिक्ष की; दक्षिण के कोष्ठों में, अग्नि, पूषा, वितथ, यम, गृहरक्षक, गन्धर्व, भृंगराज तथा मृग; पश्चिम के कोष्ठों में निर्ऋति, दौवारिक, सुग्रीव, वरुण, पुष्पदन्त, असुर, शेष तथा उरग एवं उत्तर दिशा के कोष्ठों में वायु, नाग, मुख्य, सोम, भल्लाट, अर्गला, दिति तथा अदिति की अर्चना की जानी चाहिये।

कृत्वाऽवनिं समतलां चतुरस्रक्लृप्तामष्टाष्टकोद्यतपदां च सकोणसूत्राम्।
तस्यां चतुष्पदसमन्वितमध्यकोष्ठे ब्रह्मा तु साधकवरेण समर्चनीयः।।
प्राग्याम्यवारुणोदग्दिक्कोष्ठचतुष्पदेषु समभियजेत्।
आर्यकमथ सविवस्वत्संज्ञमथ मित्रं महीधरं क्रमशः।।
कोणोद्वयार्धकोष्ठेष्वर्च्याः सावित्रसवितृशक्राह्वाः।
सेन्द्रजयरुद्रतज्जयसापश्च वत्सकस्तथाऽन्याद्याः।।
अस्रे पार्श्वोत्थपदे द्वन्द्वे शर्वं गुहार्यमणौ च यजेत्।
जम्भकपिलिपिच्छाख्यौ चरकिविदार्यौ च पूतना प्रोक्ता।।
अर्धपदाद्यन्तासु च चतसृषु दिक्षु क्रमेण बहिरर्च्याः।
वासवयमजलेशशशिनामष्टावष्टौ च मन्त्रिणा विधिना।।
ईशानाख्यः सपर्जन्यो जयन्तः शक्रभास्करौ।
सत्यो वृषोऽन्तरिक्षश्च देवताः प्रागुदीरिताः।।
अग्निः पूषा च वितथो यमश्च गृहरक्षकः।
गन्धर्वो भृंगराजश्च मृगो दक्षदिगाश्रिताः।।
निर्ऋतिर्दौवारिकश्च सुग्रीवो वरुणस्तथा।
पुष्पदन्तासुरौ शेषोरगौ प्रत्यग्दिगाश्रिताः।।

वायुर्नागश्च मुख्यश्च सोमो भल्लाट एव च ।
अर्गलाख्यो दितिस्तद्वददितिः सौम्यदिग्गताः।।
इतीरितानामपि देवतानां चित्राणि कृत्वा रजसा पदानि।
पयोऽम्भसा साधु बलिः प्रदेयो द्रव्यैश्च वा तन्त्रविशेषसिद्धैः।।

(वही,५/७-१६)

वास्तुपूजन यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ५/७-१५ एवं ५/८-९ पर दीपिका)

मण्डप-निर्माण

वास्तुपूजा के उपरान्त सुन्दर, समतल, रोम तथा अस्थि आदि दूषित वस्तुओं को हटाकर साफ-सुथरी भूमि पर चार द्वारों वाला पुष्पमालाओं से युक्त, तोरणादि से सुसज्जित तथा वस्त्रावरणादि से चारों ओर से घिरा सुरक्षित नौ, सात अथवा पांच हाथ लम्बा मण्डप बनाया जाना चाहिये।

भूयो भूमितले समे विरहिते रोमास्थिलोष्टादिभिः,
कर्तव्यं नवसप्तपंचकमितैर्हस्तैः परीणाहतः।
युक्तं द्वारचतुष्ककल्पितपयोभूरुट्चतुस्तोरणं
दर्भस्रक्परिवीतमुज्ज्वलतरं स्यात्संवृतं मण्डपम्।। (वही, ५/१७)

बीज-वपन तथा मण्डल-रचना

उस मण्डप में दीक्षा वाले दिन से सात या नौ दिन पहले ही चार-चार पालिका (हांडी) परई तथा शरावों (पुरवा) में शाली, कंगु, श्यामाक, तिल, सरसों, मूंग, उड़द तथा खल्वाढकी आदि के बीज बीजमन्त्रों से अभिमंत्रित कर हल्दी-मिश्रित जल से अभिसिंचित करते हुए साधक के हाथ से बोये जाने चाहिये। बीज वाले उक्त शरावों (लघु घटों) के पास सात अथवा नौ रातों तक भूत, पितृ, यक्ष, नाग, ब्रह्मा तथा शिव को बलि प्रदान करनी चाहिये।

सप्ताहतो वा नवरात्रतो वा प्रागेव दीक्षादिवसाद् यथावत्।
सपालिकापंचमुखीशरावचतुष्टये बीजनिवापमुक्तम्।।
अन्यस्मिन् भवने सुसंवृततरे शुद्धे स्थले मण्डल
कुर्यात् प्राग्वरुणायतं पदचतुष्कोपेतभानूदरम्।
पीतारक्तसितासितं प्रतिपदं वह्न्यादिशर्वान्तिमं
याम्योदीच्वसमायतं प्रणिगदन्त्यन्ये च तन्मन्त्रिणः।।
वैष्णव्यस्त्वथ पालिका अपि चतुर्विंशांगुलोच्छायका,
वैरिंच्यो घटिकास्तु पंचवदना द्व्यष्टांगुलोत्सेधकाः।
शैवाः स्युर्द्विषडङ्गुला अपि शरावाह्वा जलक्षालिताः,
सूत्रैश्च प्रकलय्य पंक्तिषु च ताः प्रोक्तक्रमाद् विन्यसेत्।।
पृथगपि शालीतण्डुलपूर्णासु सदर्भबद्धकूर्चासु।
मृद्बालुकाकरीषैः क्रमेण पूर्णानि तानि पात्राणि।।
शालीकंगुश्यामाकतिलसर्षपमुद्गमाषनिष्पावाः।
खल्वाढकिसमेता बीजानि विदुः प्ररोहयोग्यानि।।
प्रक्षाल्य तानि निवपेदभिमन्त्र्य मूलबीजेन साधकवरस्त्वथ पात्रकेषु।
विप्राशिषा च विधिवत्प्रतिपाद्यमानशंखादिमुख्यतरपंचमहास्वनैश्च।।
हारिद्राद्भिः सम्यगभ्युक्ष्य वस्त्रैराच्छाद्याऽद्भिः सिच्यतां पंचघोषैः।
सायंप्रातःशर्वरीषु प्रदद्यादुक्तैर्द्रव्यैस्तद्बलिं साधकेशः।।

(वही, ५/१८-२४)

बलि के लिये उपयुक्त पदार्थ

आचार्य के अनुसार लाजा, तिल, नक्तरज (हल्दी का चूर्ण), दही तथा सत्तू, भूतबलि के लिये; तिल-चावल (का मिश्रण) पितृ बलि के लिये; गूलर, धान तथा लाजा यक्ष बलि के लिये; केरोद (नारियल का पानी) तथा सत्तू की पीठी नागबलि के लिये; कमल तथा अक्षत ब्राह्मबलि के लिये; पुए शैवबलि के लिये तथा गुडौदन (गुड में पकाये चावल) वैष्णव बलि के लिये उपयुक्त द्रव्य हैं। लेकिन, यदि यज्ञ नौ दिनों का है, तो वैष्णव बलि के लिये कृशर (खिचड़ी) ही उपयुक्त है। जिसे भी बलि प्रदान की जा रही है उसके नाम में पहले 'ओम्' और अन्त में 'नमः' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिये।

भूतपितृयक्षनागब्रह्मशिवा देवताश्च विष्ण्वन्ताः।
ताभ्यः क्रमेण रात्रिषु सप्तसु नवसु वा तद्बलिर्देयः।।
लाजातिलनक्तरजोदधिशक्त्वन्नानि भूतक्रूराख्यम्।
पैत्रं तिलतण्डुलकं सोडुम्बरिकधानलाजकं याक्षम्।।
केरोदशक्तुपिष्टं नागं पद्माक्षतं च वैरिंचम्।
अन्नापूपं शैवं गुडौदनं वैष्णवं च दौग्धान्नम्।।
कृशरं च वैष्णवेयं यदि नवरात्रं क्रमेण बलिरुक्तः।
तारादिकैर्नमोन्तैः स्वैः स्वैरपि नामभिश्च बलिमन्त्रः।।
पात्राणि त्रि(वि) विधान्यपि परितः पुनरष्टदिक्षु बलिक्लृप्तिः।
बीजारोपणकर्म प्रथितमिदं सार्वकामिकं भवति।।

(वही,५/२५-२६)

कुण्ड निर्माण-विधि

मण्डप में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर एक हाथ गहरे चतुष्कोण, अर्ध चन्द्राकार, पद्म-दल, वृत्ताकार अथवा त्रिकोण के आकार के हवन-कुण्ड बनाये जाने चाहिये। कुण्ड के चारों ओर चौबीस अंगुल आकारवाली मेखला बनाई जानी चाहिये। पश्चिम अथवा उत्तर दिशा वाले कुण्ड के अन्दर सोलह, बारह, आठ अंगुल अथवा बीता भर कुण्ड के भीतर प्रविष्ट, पीपल के पत्ते की आकार वाली योनि का निर्माण किया जाना चाहिये। तत्पश्चात् दीक्षा-मण्डप को गाय के गोबर से लीप कर उसके बीच स्थण्डिल (वेदी) बनाकर उस पर वृत्ताकार, त्रिकोणाकार, चतुष्कोण अथवा कमलपत्र के आकार वाला राशिचक्र का विधिपूर्वक निर्माण किया जाना चाहिये।

आचार्य शंकर ने राशिचक्र की निर्माण-विधि का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार किसी भी देवता की उपासना के लिये निर्मित किया जाने वाला मण्डल इस राशिचक्र के भीतर ही निर्मित होना चाहिये। इन यन्त्रों की रचना राशिचक्र के भीतर ही की जानी चाहिये, अन्यथा गुरु और शिष्य दोनों शाप और दोष के भागी बनते हैं। गुरु-शिष्य दोनों को चाहिये कि वे राशिचक्र के निर्माण और उसमें राशियों और उनके स्वामियों के सम्बन्ध में समस्त जानकारियां प्राप्त करके उनकी अर्चना करने के पश्चात् ही चतुरस्रादि मण्डलों का निर्माण करें।

मण्डल का तात्पर्य त्रिगुणित, षड्गुणित, द्वादशगुणित आदि यन्त्रों से हैं।

प्रागेव लक्षणयुतानि च मण्डपेऽस्मिन्,
कुण्डानि कारयतु सम्यगथो दिशासु।
आखण्डलार्कसुतवारिधनाधिपानां,
दोर्माचकाणि विलसद्गुणमेखलानि।।
चतुरस्रमर्धशशिबिम्बविलसितमथ त्रिकोणकम्।
पद्मदलरुचिरवृत्तमिति ब्रुवते बुधा विधिषु कुण्डलक्षणम्।।
विंशत्या चतुरधिकाभिरंगुलीभिः
सूत्रेणाऽप्यथ परिसूत्र्य भूमिभागम्।
ताभिश्च प्रखनतु तावतीभिरेखां
त्यक्त्वा चांऽगुलिमपि मेखलाश्च कार्याः।।
सत्त्वपूर्वकगुणान्विताः क्रमात् द्वादशाऽष्टचतुरंगुलोच्छ्रिताः।
सर्वतोऽंगुलिचतुष्कविस्तृता मेखलाः सकलसिद्धिदा मताः।।
योनिस्तत्पश्चिमायामथ दिशि चतुरस्रस्थलारब्धनाला।
तन्मध्योल्लासिरन्ध्रोपरि परिविततताश्वत्थपत्रानुकारा।
उत्सेधायामकाभ्यां प्रकृतिविकृतिसंज्ञांगुलाऽष्टांगुला स्या-
द्विस्तृत्या द्वादशार्धांगुलमितनमिताग्रा निविष्टैव कुण्डे।।

....

ततश्च राशिचक्रं स्यात् स्वस्ववर्णभूषितम्।

....

चक्रं च चतुरस्रं च त्र्यस्रा द्वादश राशयः।।

....

मण्डलानि तु तत्त्वज्ञो राश्यन्तान्येव कारयेत्।
राशावन्यत्र रचयेत् प्रमोहादन्यमण्डलम्।।

आवाह्य देवतामन्यामर्चयंस्त्वन्यदेवताम्।
उभाभ्यां लभते शापं मन्त्री तरलदुर्मतिः।।
कालात्मकस्य देवस्य राशेर्व्यक्तिमजानता।
कृतं समस्तं व्यर्थं स्यादज्ञेन ज्ञानमानिना।।
अवगम्यानुरूपाणि मण्डलानि च नाऽन्यधीः।।

(वही, ५/३०-६२)

"मण्डलानि चेति भाविमण्डलाभिप्रायम्, वक्ष्यति च व्योमाविः-सचतुर्दशस्वरेत्यत्र प्रविधाय पद्ममिति"।.... इति प्रयोगदीपिकायाम्।

❋

दीक्षा-विधि (१)

5

दीक्षा के लिये मण्डप-निर्माण, पालिका-शरावों में बीजवपन, कुण्ड-निर्माण, राशिचक्रादि-निर्माण आदि विधि पूरी कर लेने के बाद साधक की दीक्षा वाले दिन मन्त्रप्रदाता गुरु को चाहिये कि वह स्नानपूजादि नित्य कर्म समाप्त कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके आसन पर बैठकर 'ओं ह्रीं' मन्त्र का उच्चारण करता हुआ परमात्मा से लेकर अपने दीक्षागुरु तक की परम्परा का स्मरण करता हुआ 'ओं गं अस्मद्गुरुभ्यो नमः, ओं गं गणपतये नमः, ओं दुं दुर्गायै नमः, ओं सां सरस्वत्यै नमः, ओं क्षं क्षेत्रपालाय नमः, ओं पं परमात्मने नमः' इन मन्त्रों से दोनों कन्धों, जांघों तथा हृदय में न्यास तथा दिग्बन्धादि क्रियाओं को सम्पन्न करे। इसके बाद आचार्य यही न्यासादि क्रियाएं शिष्य द्वारा भी सम्पादित कराये। न्यासादि क्रियाएं अपने-अपने सम्प्रदायानुसार या गुरु-परम्परा के अनुसार की जाती हैं।

अथ पुनराचम्य गुरुः प्राग्वदनो विष्टरोपविष्टः सन्।
प्राणायामं सलिपिन्यासं कृत्वा न्यसेत् तदृष्यादीन्।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ६/१)

न्यास

'न्यास' का अर्थ 'रखना या प्रतिष्ठित करना' है। साधक द्वारा अपने बाह्य तथा अन्तःशरीर में विभिन्न देवताओं की प्रतिष्ठा करके शरीर को देवमय बनाने की क्रिया का नाम न्यास है। न्यासविधि के द्वारा साधक अपने को सामान्य मानवीय भूमिका से ऊपर उठाकर अपने गुरु तथा इष्ट देवता के साथ तादात्म्यावस्था को प्राप्त करने का प्रयास करता है। साधना में 'देवो भूत्वा देवानप्येति' का मूलमन्त्र काम आता है। तात्पर्य यह कि यदि गुरु और इष्ट की कृपा प्राप्त करनी है, तो सामान्य मानवीय प्रकृति से ऊपर उठकर गुरु तथा देवतामय बनना पड़ता है, 'ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने' अर्थात् स्वयं में, गुरु तथा ईश्वर में केवल बाह्यभेद मानकर परमार्थतः अभेद-भावना करनी होती है।

न्यास ऋष्यादिन्यास, षडंगन्यास, करन्यास, मातृकान्यास, सृष्टिन्यास, संहारन्यास आदि कई प्रकार के होते हैं। ऋष्यादिन्यास में मन्त्र के ऋषि, छन्दस्, देवता, बीज, शक्ति तथा कीलक नामक छह अंग होते हैं। इनमें से प्रत्येक के

साथ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करते हुए क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् पदों के साथ सिर, मुख, हृदय, गुदा, चरण तथा नाभि में न्यास किया जाता है। जैसे, भगवती दुर्गा के महामन्त्र 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' के ऋषि नारद, छन्दस् गायत्री, देवता दुर्गा, बीज दुं तथा शक्ति ह्रीं है। इस मन्त्र की साधना में ऋष्यादिन्यास निम्न प्रकार से किये जाने का विधान है—

नारदाय ऋषये नमः (सिर में),
गायत्री छन्दसे नमः (मुख में),
दुर्गादेवतायै नमः (हृदय में),
दुं बीजाय नमः (गुह्य अंग में)
ह्रीं शक्तये नमः (चरणों में)

ऋष्यादिन्यास का तात्पर्य

ऋषि

आचार्य शंकर ने ऋषि, छन्दस् तथा देवता आदि की निरुक्ति अपने ही ढंग से की है। उनके अनुसार साधक जिस मन्त्र की साधना कर रहा है, उस मन्त्र का प्रथम साक्षात्कार करने वाला महान् साधक उस मन्त्र का 'ऋषि' कहलाता है। जैसे गायत्री महामन्त्र के ऋषि महर्षि विश्वामित्र हैं। मन्त्र की साधना में मन्त्र का सर्वप्रथम साक्षात्कार करने वाला 'ऋषि' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिये मन्त्र-साधना में सबसे पहले ऋषि का ही स्मरण करके उसे शरीर में सर्वोच्च स्थान पर न्यस्त या स्थापित किया जाता है।

ऋषिर्गुरुत्वाच्छिरसैव धार्यः छन्दोक्षरत्वाद्रसनागतं स्यात्।
धियाऽवगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रदिष्टा मनुदेवता च।। (वही, ६/२)

'ऋषि' शब्द का निर्माण गति अर्थ वाले धातु 'ऋ गतौ' तथा प्राप्ति अर्थ वाली धातु 'षिङ् प्रापणे' से होता है। शिष्य को गतिशील बनाकर जो उसे 'स्वस्वरूप परमात्मन्' तक ले जाता है, वह गुरु है। गुरु सर्वोच्च है, अतः गुरु ही 'ऋषि' है। साधना में ऋषि को अपने शरीर के सर्वोच्च स्थान 'सिर' पर आसीन करके साधक वास्तव में, अपने गुरु को ही यह स्थान देता है।

ऋषिवर्णादिकौ धातू स्तो गत्या प्रापणेन च।
यात्याभ्यां यत्स्वरूपं स गुरुः स्याद्दृषिवाचकः।। (वही, ६/३)

छन्दस्

'छन्दस्' शब्द इच्छा अर्थ वाली 'छदु (इच्छायाम्) तथा दान अर्थ वाली दाण् (दाने) धातुओं के योग से होता है। साधक को उसकी इच्छा के अनुरूप फल प्रदान करने वाले 'तत्त्व' को 'छन्दस्' कहा जाता है। यह छन्दस् अक्षरमय है। अतः अक्षरमय मन्त्र के वर्ण ही छन्दस् कहे जाते हैं।

इच्छादानार्थकौ धातू स्तश्छदाद्यश्च दादिकः।
तयोरिच्छां ददातीति छन्दो मन्त्रार्णवाचकः।। (वही, ६/४)

देवता

'देवता' शब्द की निष्पत्ति क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति तथा गत्यर्थकादि धातु 'दिवु' से अथवा विस्तार अर्थ वाली धातु 'तक्षु या त्वक्षु' से होता है। जो जीवात्मा के अज्ञानादि दोषों को क्षीण करके उसमें द्युति, देवत्त्व तथा आत्म-विस्तार में योग देता है, उसे 'देवता' कहा जाता है। मन्त्र-साधना में मन्त्र का देवता साधक को मनुष्यत्व से उठाकर देवत्व तक पहुंचाता है। मन्त्र के देवता की आराधना, उसका चिन्तन एवं मनन बुद्धि और हृदय से किया जाता है, अतः उसकी प्रतिष्ठा या न्यास हृदय में किया जाता है।

आत्मनो देवताभावप्रदानाद् देवतेति च।
पदं समस्ततन्त्रेषु विद्वद्भिः समुदीरितम्।। (वही, ६/५)

बीज

यद्यपि आचार्य शंकर ने ऋष्यादि न्यास के प्रसंग में बीज एवं शक्ति की चर्चा नहीं की है, तथापि पद्मपाद ने आचार्य शंकर द्वारा उद्घाटित प्रत्येक मन्त्र के निर्वचन में उस मन्त्र के बीज और शक्ति का उल्लेख किया है। जैसे सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का एक बीज होता है, वैसे ही प्रत्येक मन्त्र का भी एक बीज होता है। बीज ही विकसित होकर वृक्ष बनता है। मन्त्रशास्त्र में बीज को मन्त्र का मूल बिन्दु माना जाता है। यह मन्त्र में शक्ति तत्त्व का संचार करता है। मानव-शरीर में बीज की अभिव्यक्ति का स्थान गुह्येन्द्रिय अर्थात् जननेन्द्रिय है, अतः बीज का न्यास गुह्येन्द्रिय में किया जाता है।

शक्ति

बीज को जाग्रत् अथवा संचरणशील बनाने का कार्य 'शक्ति' करती है । बीजात्मक शिव में सृजनादि का समावेश शक्ति द्वारा ही होता है। आचार्य शंकर

के अनुसार 'शिव जब शक्ति से युक्त होता है, तभी उसमें 'प्रभवन' (सृष्टि), स्थिति, संहार, तिरोधान तथा अनुग्रह नामक प्रपंचन की सामर्थ्य आती है। लेकिन, यदि वह शक्ति से रहित है, तब तो उसमें स्पन्दन करने की भी सामर्थ्य नहीं होती'।

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि"। (सौन्दर्यलहरी, १)

मन्त्र में प्रभविष्णुता या प्रभाव लाने का कार्य शक्ति ही करती है। व्यक्ति में संचरण की शक्ति उसके चरणों में होती है। अतः शक्ति का न्यास चरणों में किया जाता है। आचार्य शंकर एवं पद्मपाद ने मन्त्र के छठे अंग 'कीलक' की चर्चा नहीं की है। वैसे, कीलक का काम मन्त्र और मन्त्र-साधकों को विचलन से बचाना है। कीलक का न्यास सर्वांग में किया जाता है ।

ऋष्यादि न्यास में मन्त्र के साक्षात्कार करने वाले ऋषि को अपने मस्तक (सहस्रार) में आसीन करने की भावना करता हुआ साधक अपने मूलाधार में स्थित आत्मतेज (कुण्डलिनी शक्ति) को मूलाधार से उठा कर सहस्रार में स्थित परमात्मन्रूपी परम गुरु (शिव) से मिलाने की भावना करता है। इस भावन-क्रिया द्वारा वह सहस्रार-स्थित परमात्मन् गुरु से 'चिदादित्य रूपी' मन्त्रमय अमृत प्राप्त करता है। सहस्रार से वह आत्मतेज पुनः अपने मूलस्थान मूलाधार की ओर लौटता है। सहस्रार से स्रवित होने वाले मन्त्रमय अमृत से उस साधक का हृदय सहित समस्त शरीर आप्लावित हो जाता है। इसे ही कुण्डलिनी का उत्थान तथा व्युत्थान क्रम कहा जाता है। आचार्य शंकर ने 'सौन्दर्यलहरी' में इनका उल्लेख किया है।

"महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि जित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ।।
सुधाऽऽधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः,
प्रपंचं सिंचन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि"।।

(सौन्दर्यलहरी, ९-१०)

अंगमन्त्र एवं षडंगन्यास

मन्त्र की साधना में ऋष्यादिन्यास के अनन्तर 'षडंगन्यास' किया जाता है। यह न्यास क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच (कन्धों), नेत्र तथा अस्त्र (सर्वांग) में उक्त अंगों के साथ चतुर्थी विभक्ति लगा कर तथा उनके अन्त में क्रम से नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् शब्दों का प्रयोग करके किया जाता है।

हृदयशिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सहचतुर्थीषु।
नत्या हुत्या च वषड् हुं वौषट् फट्पदैः षडंगविधिः।। (वही, ६/६)

अंगन्यास की विधि स्वसम्प्रदायानुसार भिन्न हो सकती है। शाक्त-साधकों की परम्परा में हृदयन्यास में तर्जनी तथा मध्यमा नामक अंगुलियों से हृदय एवं सिर का, बंधी हुई मुट्ठी वाले अंगूठे से शिखा का, दोनों हथेलियों से सर्वांग का, तर्जनी एवं अनामिका से नेत्रों का (मध्यमा से भ्रूमध्य में स्थित तीसरे नेत्र) स्पर्श करके तथा चोटी के बन्धन से दिग्बन्ध की षडंग क्रिया सम्पन्न की जाती है।

षडंग जातियों का अर्थ

नमः

'नमः' का अर्थ प्रणाम है। परमात्मा हृदय में स्थित है (हृदि +अयम् इति हृदयम्)। इसे सूक्ष्म तत्त्वदर्शिनी बुद्धि से देखा जा सकता है-'दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।' परमात्मा को साधक बुद्धि द्वारा अपने हृदय में प्राप्त कर उसे नमस्कार करता है। इसी तथ्य को दिखाने के लिये षडंगन्यास में 'हृदय' पद के साथ 'नमः' (हृदयाय नमः) पद का प्रयोग किया जाता है।

हृदयं बुद्धिगम्यत्वात्प्रणामः स्यान्नमः पदम्।
क्रियते हृदयेनाऽतो बुद्धिगम्या नमस्क्रियाः ।। (वही, ६/७)

स्वाहा

'स्वाहा' का अर्थ 'समर्पण' है। शिरस् (सिर) सर्वोच्च अंग है। यहां परम शिव अर्थात् गुरु का निवास है। 'शिरस्' शब्द के साथ स्वाहा शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस न्यास क्रिया में साधक द्वारा 'शिरसे स्वाहा' मन्त्र के उच्चारण का अर्थ यह है कि 'मैं अपनी इन्द्रियों के द्वारा जिन-जिन विषयों का भोग करता हूं, उन्हें परम शिव को समर्पित करता हूं।

तुंगार्थः स्याच्छिरः स्वे स्वे विषयाहरणे द्विठः ।
शिरोमन्त्रेण चोत्तुंगविषयाहृतिरीरिता ।। (वही, ६/८)

शिखा

'शिखा' में परमात्मन् का 'तेजस्' स्थित है। परमात्मन् का यही तेजस् साधक के कार्य-कारण शरीर में भी व्याप्त है। शिखा के साथ 'वषट्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'वषट्' अंग को कहते हैं।

शिखा तेजः समुद्दिष्टा वषडित्यंगमुच्यते ।
तत्तेजोऽस्य तनुः प्रोक्ता शिखामन्त्रेण मन्त्रिणः । (वही, ६/६)

विवरण के अनुसार कार्य और कारण शरीर को वषट् कहते हैं। न्यास-विधि में 'शिखायै वषट्' कहने का अर्थ है कि 'मैं शिखास्थान में स्थित परमात्मा को अपने समस्त अंगों अर्थात् पूरे शरीर को समर्पित करता हूं।'

''कार्यकारणात्मकं शरीरं वषडित्युच्यते'' इति विवरणे।

कवच

ग्रहणार्थक 'कव' धातु से 'कवच' शब्द बनता है। इसका अर्थ ग्रहण करना है। कवच के साथ 'हुं' का प्रयोग किया जाता है। 'हुं' का अर्थ भी 'तेजस्' है। अतः इस न्यास में 'कवचाय हुं' कह कर परमात्मन् के तेजस् द्वारा जीवात्मन् या साधक के तेजस् को ग्रहण या व्याप्त किये जाने की भावना की जाती है।

कव ग्रहण इत्यस्माद्धातोः कवचसम्भवः ।
हुं तेजस्तेजसा देहो गृह्यते कवचं ततः ।। (वही, ६/१०)

नेत्र

'वौषट्' का सम्बन्ध नेत्र से है। 'नेत्र' दृष्टि को तथा 'वौषट्' दर्शन को कहते हैं। नेत्र इन्द्रिय गोलक को नहीं, अपितु उस तेजस् को कहते हैं, जिसके द्वारा नेत्र-गोलकों में देखने की शक्ति आती है। वह शक्ति परमात्मा का तेजस् ही है—'तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।' न्यासविधि में 'नेत्राभ्यां वौषट्' कह कर साधक परम तेजस् रूप परमात्मा का स्मरण करता है।

नेत्रं दृष्टिः समुद्दिष्टा वौषड्दर्शनमुच्यते ।
दर्शनं दृशि येन स्यात्तत्तेजो नेत्रवाचकम् ।। (वही, ६/११)

अस्त्र

'अस्त्र' शब्द की निष्पत्ति 'असु क्षेपणे' तथा 'त्रस्' चलने इन दो धातुओं के योग से होती है। आक्षेपण और चालन (खींचना और चलाना) 'अस्त्र' के

स्वभाव हैं। अस्त्र के साथ 'फट्' का प्रयोग किया जाता है। 'फट्' शब्द का अर्थ रक्षा की भावना से देहादि का ईश्वर को समर्पण करना है। षडंगन्यास विधि में 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण कर साधक साधना में आने वाले बाधक तत्त्वों को अपनी भावना से खींचकर 'फट्' रूपी आग्नेयास्त्र द्वारा से उन्हें वैसे ही दूर फेंक देता है, जैसे ज्वलनशील पदार्थों से अस्त्र को संचालित कर उसे तथा उसमें रखे गये पदार्थों को दूर फेंक दिया जाता है।

असुत्रसादिकौ धातू स्तः क्षेपचलनार्थकौ।
ताभ्यामनिष्टमाक्षिप्य चालयेत् फट् पदाग्निना।। (वही, ६/१२)

शंकर के अनुसार सभी तन्त्रों में हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, आदि न्यास के छह अंग ही अंगमन्त्र कहे जाते हैं। जिन मन्त्रों की न्यास-विधि में छह अंग नहीं, केवल 'पंचांग' का ही विधान है, उनमें 'नेत्रन्यास' नहीं किया जाता।

अंगमन्त्रा इमे प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिभिः।
पंचैव यस्य मन्त्रस्य भवन्त्यंगानि मन्त्रिणः।
सर्वेष्वपि च मन्त्रेषु नेत्रलोपो विधीयते। (वही, ६/१३-१४)

करन्यास

अंगन्यास के पश्चात् अंगन्यास के मन्त्रों द्वारा ही करन्यास किया जाता है। करन्यास का तात्पर्य भी कर के अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका करतल एवं करपृष्ठ में देवताओं, मन्त्रों, मन्त्रांगों आदि की प्रतिष्ठा करके करों को देवमय बनाना है। इसके बाद अस्त्र मन्त्र से दायें हाथ की अंगुलियों से बांयें हाथ की हथेली पर तीन बार ताडन करके इसी मन्त्र से दिग्बन्ध की क्रिया सम्पन्न की जाती है। आचार्य शंकर के अनुसार किसी भी मन्त्र के जप करने के आरम्भ में अंगन्यासादिरूपी उक्त नियम समान रूप से ग्रहण किये जाते हैं।

अंगुलीषु क्रमादंगैरंगुष्ठादिषु विन्यसेत्।।
कनिष्ठान्तासु तद् बाह्यतलयोः करयोः सुधीः।।
अस्त्रेण तालत्रितयं कृत्वा तेनैव बन्धयेत्।।
दिशो दश क्रमादंगषट्कं वा पंचकं न्यसेत् ।
जपारम्भे मनूनां तु सामान्येयं प्रकल्पना।। (वही, ६/१४-१६)

दीक्षा तथा देव-साधना आदि के अवसरों पर प्रयुक्त किये जाने वाले षोडशांगन्यास, षडध्वन्यास, अजपादिन्यास, कला-केशवादिन्यास, ग्रहन्यास,

सृष्टिन्यास, संहारन्यास आदि की विधि को आचार्य शंकर ने बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। साधक के तन और मन में किये जाने वाले न्यासों का मूल उद्‌देश्य साधक के तन-मन को निर्मल बनाकर उसे देवत्व तक पहुंचाना है। इन विविध न्यासों के स्वरूप का विवेचन मन्त्र-देवादि के साधना-प्रसंगों में आगे किया जाना उचित होगा।

❋

पूजा-विधान

साधना के समय साधक को चाहिये कि वह अपने सामने एक अष्टदल कमल-चक्र की रचना करके शंख तथा गन्धपुष्प-अक्षत तथा जल अपने बायीं ओर रखकर पूजा के लिये रखी गयी मूर्ति में गुरु द्वारा बताई गई विधि से मन्त्राक्षरों का न्यास करे। दायीं ओर पूजापात्र तथा सामने दीपक रखा जाना चाहिये। बायीं ओर देवमय गुरुओं की पूजा 'गुं परमगुरुभ्यो नमः, गुं परापरगुरुभ्यो नमः, गुं अपरगुरुभ्यो नमः, गुं अस्मद्गुरुभ्यो नमः' इन मन्त्रों से की जानी चाहिये। तदनन्तर 'धं धर्माय नमः' आदि मन्त्रों के साथ धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य नामक आठ पीठ देवताओं में से प्रथम चार का न्यास तथा पूजा क्रमशः आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान नामक उप दिशाओं में एवं अन्तिम चार का न्यास तथा पूजा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर में की जानी चाहिये। पीठ के मध्य में अनन्त, पद्म, सूर्य-मण्डल, चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल सत्त्वादि त्रिगुण-मण्डल, आत्ममण्डल, अन्तरात्ममण्डल, तथा परमात्म-मण्डल का न्यास और पूजन करना चाहिये। केसरों में साधना से सम्बन्धित मन्त्र की आठ शक्तियों तथा मध्य में नौवीं शक्ति का न्यास एवं पूजन किया जाना चाहिये।

शंखं सगन्धपुष्पाक्षततोयं वामतः प्रविन्यस्य।
सांगं मन्त्रं पूजामूर्तौ न्यसेद् गुरूपदेशेन।।
न्यसेच्च दक्षभागे सुमनःपात्रं तथाऽभितो दीपान्।
अन्यत्साधनमखिलं पुरतो गन्धाक्षतादिकं मन्त्री।।
प्रथमं निजसव्यतो यथावत् प्रयजेद् देवमयान् महागुरून् स्वान्।
गणनायकमन्यतश्च पाशांकुशदन्ताभयहस्तमुज्ज्वलांगम्।।
रक्तं धर्मं वृषतनुमथाऽग्नौ हरिं श्यामवर्णं
ज्ञानं रक्षोदिशि मरुति पीतं च वैराग्यसंज्ञम्।
भूताकारं द्विरदतनुमैश्वर्यमीशे च कृष्णं
नञ्पूर्वैस्तैर्यजतु दिशि चित्राणि गात्राणि पीठे।।
मध्येऽनन्तं पद्ममस्मिंश्च सूर्यं सोमं वह्निं तारवर्णैर्विभक्तैः।

सत्वादींश्च त्रीन् गुणानात्मयुक्ताञ्छक्तीः किंजल्केषु मध्ये यजेच्च।।
श्वेताकृष्णारक्तापीताश्यामानलोपमाः प्रोक्ताः।
अंजनजपासमानवर्णास्तेजोरूपाश्च शक्तयः प्रोक्ताः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ६/१७-२२)

कलश-स्थापना

पूजन के लिये निर्मित पीठ पर अंकित कमल की कर्णिका में शाली (धान) उसके ऊपर चावल, चावलों पर दर्भ, दर्भों के ऊपर अक्षतों सहित कूर्च तथा उस पर वस्त्र से आवेष्ठित एवं नवग्रहों के लिये विहित नौ रत्नों से युक्त, क से लेकर ष वर्ण अक्षरों से अभिमन्त्रित औषधियों से पकाये गये, या दशमूलादि से पकाये गये अथवा दूधवाले पवित्र वृक्षों की छाल से पकाये गये जल से भरा हुआ घट स्थापित किया जाना चाहिये। इसके बाद उपासना के अनुरूप शाक्त, वैष्णव या शैव गन्धाष्टकों को शंख में रखे हुए उक्त क्वथित कषाय जल में अच्छी तरह घोलकर उपासना के मन्त्रों से साधना से सम्बन्धित कलाओं का आवाहन करके उक्त घट में मिला देना चाहिये।

विन्यस्य कर्णिकोपरि शालींस्तदुपरि तण्डुलांश्च तथा।
तेषामुपरि च दर्भान् दर्भोपरि कूर्चमक्षतोपेतम्।।
त्रिगुणेन च तन्तुरूपभाजा परितोऽथो परिवेष्टितं यथावत्।
लघुनाऽलघु धूपितं च कूर्चोपरिकुम्भं निदधातु तारजापी।।
न्यस्य दर्भमयकूर्चमक्षताद्यन्वितं सनवरत्नकं घटे।
पूरयेत्सह कषादिकान्तगैरक्षरौषधिविपाचितैर्जलैः।।
अथवादशमूलपुष्पदुग्धांघ्रिपचर्मोत्क्वथितैः कषायतोयैः।
स्तनजद्रुमचर्मसाधितैर्वा सलिलैः संयतधीः शुभोदकैर्वा।।
शंखे कषायोदकपूरिते च विलोड्य सम्यग् विधिनाऽष्टगन्धम्।
कलाः समावाह्य विनिक्षिपेत्तत्क्वाथोदकापूर्णमुखे च कुम्भे।।

(वही, ६/२३-२७)

त्रिविधगन्धाष्टकम्

पूजन में अष्टगन्धों के प्रयोग से साधक को शारीरिक-मानसिक शक्ति और उपास्य देव का सान्निध्य प्राप्त होने के साथ ही, पूजन में भाग ले रहे लोगों को मनःशान्ति भी प्राप्त होती है। गन्धाष्टक तीन प्रकार के होते हैं—शाक्तेय, वैष्णव और शैव। चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुंकुम, कपि, मांसि, रोचना तथा चोरा

नामक औषधि-पदार्थों के सम्मिश्रण से शाक्तेय गन्धाष्टक बनाया जाता है। चन्दन, ह्रीवेर, अगुरु, कुष्ठ, असृग्, उशीर, मांसि तथा मुरा के सम्मिश्रण से वैष्णव अष्टगन्ध बनता है। चन्दन, कर्पूर, अगुरु, दल, रुधिर, कुशीत, रोगज तथा मुरा के सम्मिश्रण से शैव अष्टगन्ध का निर्माण किया जाता है।

त्रिविधं गन्धाष्टकमपि शाक्तेयं वैष्णवं व शैवमपि।
गन्धाष्टकेन शक्तिः स्यात् कमशो मन्त्रिणा कृतेऽनन्ता।।
चन्दनकर्पूरागुरुकुंकुमकपिमांसिरोचनाचोराः।
गन्धाष्टकमपि शक्तेः सान्निध्यकरं च लोकरंजनकृत्।।
चन्दनह्रीवेरागुरुकुष्ठासृगुशीरमांसिमुरमपरम्।
चन्दनकर्पूरागुरुदलरुधिरकुशीतरोगजमपरम्।। (वही, ६/२८-३०)

कला-विनियोग एवं ऋक्-पंचक से कुम्भपूरण

आचार्य शंकर ने कलाओं के उल्लेख के प्रसंग में १६ सौम्य, १२ सौर तथा १० आग्नेय कलाओं के अलावा ओंकार के अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद से उत्पन्न क्रमशः १० सृष्टिकारिणी ब्राह्मी, १० स्थितिकारिणी वैष्णवी, १० संहारकारिणी रौद्री, ४ बिन्दुज, १६ नादज, शक्ति और शान्त से सम्बन्धित 'हंसः शुचिषद्' आदि ५ ऋक्-प्रभवा कुल ८३ कलाओं के अलावा बिन्दु कलाओं में से क्षकार-प्रभवा अन्तिम कला 'अनन्ता' या उक्त सभी कलाओं की आत्मरूपा ८४वीं कला (मन्त्र के देवता) का उल्लेख किया है।

कलश-स्थापना की विधि के अन्तर्गत मन्त्र के देवता सहित इन सभी कलाओं का उक्त शंख में रखे जल में आवाहन कर उस शंखस्थित जल को कलश के जल में मिला देना चाहिये। फिर उनमें मन्त्र-देवता सहित प्रत्येक कला की प्राणप्रतिष्ठा करके उनका अर्घ्य, पाद्य, आचमनादि षोडशोपचार पूजन करना चाहिये।

अष्टत्रिंशत्प्रभेदेन याः कलाः प्रागुदीरिताः।
गुरूपदेशक्रमतस्ता विद्वान् विनियोजयेत्।।
याः पंचाशत्कलास्तारपंचभेदसमुत्थिताः।
पंचपंचकसम्भिन्ना विदुस्तास्तत्त्ववेदिनः।।
सप्तात्मकस्य तारस्य परौ द्वौ तु परौ यतः।
ततस्तु शक्तिशान्ताख्यौ पठ्येते न परैः सह।।

प्रथमं प्रकृतेर्हंसः प्रतद्विष्णुरनन्तरः।
त्र्यम्बकं तृतीयं स्यात् चतुर्थस्तत्पदादिकः।।
विष्णुर्योनिरितीत्यादिः पंचमः कल्प्यतां मनुः।
चतुर्नवतिमन्त्रात्मा देवतावाह्य पूर्यताम्।।
अत्र याः पंच सम्प्रोक्ता ऋचस्तारस्य पंचभिः।
कलाप्रभेदैश्च मिथो युज्यन्ते ताः पृथक् क्रमात्।।
कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां च तत्र तत्र समाहितः।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण पुनस्तोयं कलात्मकम्।
उच्चारयन् मूलमन्त्रं कलशे सन्निधापयेत्।। (वही, ६/३१-३७)

प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र

"आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों क्षं सं हंसः ह्रीं हों
अमुष्य प्राणाः इह प्राणकाः जीवः इह स्थितः
सर्वेन्द्रियाणि वांमनसी दृशं श्रुतिं सप्राणकं घ्राणं इहायातु स्वाहा"

यह प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र है। इस मन्त्र के 'अमुष्य' पद के स्थान पर जिस देवता या कला की प्राणप्रतिष्ठा करनी हो, उसके नाम का उच्चारण करना चाहिये।

प्रोक्तापूर्वममुष्य शब्दमथ च प्राणा इह प्राणका-
स्तद्वज्जीव इह स्थितेति च तथा सर्वेन्द्रियाणीति च।
तद्वद् वाङ्मनसावुदीर्य तदनु प्राणा इहायान्त्विति
स्वाहान्तं प्रजपेन्मनुं निशितधीः प्राणान् प्रतिष्ठापयेत्।। (वही, ६/३८)

तदनन्तर अक्षतादि से युक्त पीपल, आम्र, कटहल आदि के पवित्र पर्णों को कल्पवृक्ष के पर्ण की भावना करते हुए उन्हें कलश के मुख पर रख कर दो वस्त्र खण्डों से कलश का मुख लपेट कर सर्वप्रथम साध्यमन्त्र के देवता में षडंग-न्यासादि करके कलश में पूर्णरूप से स्थित हो जाने की प्रार्थनारूपी सकलीकरण करते हुए उनका आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वसन, आभरण, सुगन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वन्दनरूपी षोडशोपचार, अथवा अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप-दीप तथा नैवेद्य रूपी दशोपचार अथवा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यरूपी पंचोपचार अर्चना-पद्धतियों में से किसी एक से पूजा करनी चाहिये।

अश्वत्थचूतपनसस्तवकैः सूत्रामवल्लरीतण्डुलैः (युक्तैः)।
सुरतरुधिया पिधाय कुम्भमुखं वेष्टयीत वासोभ्याम्।।
पुनस्तोयगतं देवं साध्यमन्त्रानुरूपतः।
सकलीकृत्य च गुरुरुपचारान् समाचरेत्।।
आसनस्वागते सार्घ्यपाद्ये साचमनीयके।
मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणान्यपि।।
सुगन्धसुमनोधूपदीपान्नैवेद्यवन्दने।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश।।
अर्घ्यपाद्याचमनमधुपर्काचमनान्यपि।
गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात्।।
गन्धादिका निवेद्यान्ता पूजा पंचोपचारिकी।
सपर्याः त्रिविधाः प्रोक्तास्तासामेकां समाचरेत्।। (वही, ६/३६-४४)

पूजार्ह द्रव्य

अर्घ्यद्रव्य

गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप तथा दूर्वा नामक आठ पदार्थ अर्घ्यद्रव्य कहे जाते हैं।

पाद्य द्रव्य

श्यामाक, दूर्वा, कमल तथा विष्णुक्रान्ता पाद्य द्रव्य हैं।

आचमनीय द्रव्य

जाती, लवंग तथा कल्लोल आचमनीय द्रव्य हैं।

मधुपर्क द्रव्य

मधुसहित दही मधुपर्क द्रव्य है।

आचमनीय द्रव्य

शुद्ध जल आचमनीय द्रव्य माना जाता है।

गन्ध द्रव्य

चन्दन, अगुरु तथा कपूर को जल में पीस कर गन्ध द्रव्य बनाया जाता है।

पुष्प

हरित तथा श्यामा तुलसी, रक्त तथा श्वेत कमल, श्वेत तथा पीत जाती,

श्वेत तथा पीत केतकी तथा रक्त एवं पीत कनेर ये दस पुष्प पूजा के लिये सर्व-श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त रक्त कमल, नील कमल, कुमुद, मालती, मल्लिका, कुन्द, मन्दार, नन्द्यावर्त, पलाश, पाटली, पार्थ, पारन्ती, आवर्तक, चम्पक, नागकेसर, रक्त-मन्दार, अशोक तथा बिल्व से उत्पन्न पुष्पाभ अंकुर, कनेर सहित अन्य सुगन्धित, सुन्दर और अपने-अपने आगम में विहित पुष्प पूजा में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। लेकिन, किसी से सूंघे हुए, अशुद्ध अंग से स्पर्श किये हुए तथा वासी पुष्पों से देवार्चन नहीं करना चाहिये।

धूप

गुग्गुलु, अगुरु, उशीर, शर्करा, घृत तथा चन्दन की पिष्टी से धूप नामक द्रव्य बनाया जाता है। धूप का प्रयोग नीचे फर्सादि पर रखना चाहिये, जिससे कि सारा वातावरण सुगन्धित हो जाय।

दीप

कपास की बाती को लघु अथवा कपूर से लिप्त कर गोधृत अथवा तैल से दीपित दीप को पूजागृह में किसी उच्च स्थान पर रखना चाहिये जिससे सारा कक्ष प्रकाशित होता रहे।

नैवेद्य

नैवेद्य किंचित् उष्ण, घृतयुक्त शुद्ध खीर, मिश्री, कदलीफल तथा दधि आदि मधुर पदार्थों से देवता को अर्पित करने के लिये नैवेद्य निर्मित किया जाता है।

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपाः।
दूर्वा चेति क्रमादर्घ्यद्रव्याष्टकमुदीरितम्।।
पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते।
जातीलवंगकल्लोलैर्मतमाचमनीयकम्।।
मधुपर्कं च सक्षौद्रं दधि प्रोक्तं मनीषिभिः।
शुद्धाभिरद्भिर्विहितं पुनराचमनीयकम्।।
चन्दनागुरुकर्पूरपंकं गन्धमिहेष्यते।
अथवा लघुकाश्मीरपटीरमृगनाभिजम्।।
तुलस्यौ पंकजे जात्यौ केतक्यौ करवीरकौ।
शस्तानि दश पुष्पाणि तथा रक्तोत्पलानि च।।
उत्पलानि च नीलानि कुमुदानि च मालती।
मल्लिका कुन्दमन्दारनन्द्यावर्तादिकानि च।।

पलाशपाटलीपार्थपारन्त्यावर्तकानि च।
चम्पकानि सनागानि रक्तमन्दारकाणि च।।
अशोकोद्भवबिल्वोत्थकर्णिकारोद्भवानि च।
सुगन्धानि सुरूपाणि स्वागमोक्तानि यानि च।
मुकुलैः पतितैर्म्लानैः शीर्णैर्वा जन्तुदूषितैः
आघ्रातैरंगसंसृष्टैरुषितैरपि नाऽर्चयेत्।।
सगुग्गुल्वगुरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः।
सारांगारे विनिक्षिप्तैर्मन्त्री नीचैः प्रधूपयेत्।।
गोसर्पिषा वा तैलेन वर्त्या च लघुगर्भया।
दीपितं सुरभिं शुद्धं दीपमुच्चैः प्रदीपयेत्।।
सुशितेन सुशुद्धेन पायसेन सुसर्पिषा।
सितोपदंशकदलौ दध्याद्यैश्च निवेदयेत्।। (वही, ६/४५-५६)

मन्त्र के मुख्य देवता की षोडशोपचार अर्चना करने के बाद क्रमशः अपने-अपने मूलमन्त्र से पुटित अकारादि ५० मातृकाओं से उक्त पचास कलाओं की गन्धादि-नैवेद्यान्त दशोपचार अर्चना करनी चाहिये। इस प्रशस्त प्रयोग को त्रैलोक्यमोहन प्रयोग कहा जाता है।

वर्णैर्मनुप्रपुटितैः क्रमशः शतार्धैर्न्यासक्रमादभिजयेत्सकलासु मन्त्री।
गन्धादिभिः प्रथमतो मनुदेवतासु त्रैलोक्यमोहनमिति प्रथितः प्रयोगः।।
(वही, ६/५७)

अंगदेवता, लोकपाल एवं उनके आयुध

आवरण-पूजा

मन्त्र देवता तथा पंचाशत् कलाओं की अर्चना के बाद सर्वप्रथम तुषार, स्फटिक, श्याम, नील, कृष्ण तथा अरुण आभा वाली, वरद एवं अभय मुद्रा-धारिणी स्त्रीरूप वाली अंगदेवताओं की पूजा अर्चनार्थ निर्मित अष्टदल कमल की केशरों के क्रमशः आग्नेय कोण में हृदय, नैर्ऋत्य में शिरस्, वायव्य में शिखा, ईशान में कवच, सामने नेत्र तथा मुख्य दिशाओं में अस्त्र मन्त्रों से करनी चाहिये। तदनन्तर क्रमशः पीत, पिंगल, कृष्ण, धूम्र, श्वेत, धूम्र, श्याम, श्वेत, काशपुष्प तथा रक्त कमल वर्ण वाले लोकपाल इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर, वरुण, अनिल, कुबेर, शिव, अनन्त तथा ब्रह्मा और उनके क्रमशः पीत, हिम, श्याम, आकाश, विद्युत्, रक्त, कुन्द, नील, अतसीपुष्प तथा अरुण वर्ण वाले कुलिशादि आयुधों की अर्चना करनी चाहिये।

हृदयं सशिरस्तथा शिखया कवचं चेत्यनलास्त्रिषु।
पुरतो नयनं दिशासु मन्त्री पुनरस्त्रं च समर्चयेत्क्रमात्।।
हारस्फटिककलायांजनपिंगलवह्निरोचिषो ललनाः।
अभयवरोद्यतहस्ताः प्रधानतनवोंऽगदेवताः कथिताः।।
आदावंगावरणं तन्त्रत्वादीरितं विधानेषु।
अन्ते च लोकपालावृतिरथ कुलिशादिकान् च।।
इन्द्राग्नियमनिशाचरवरुणानिलधनेशशिवाहिपतिविधयः।
जात्यधिपहेतिवाहनपरिवारान्ताः क्रमेण यष्टव्याः।।
पीतः पिंगः कृष्णो धूम्रः श्वेतं च धूम्रशितशुक्लाः।
काशारुणाम्बुजाभा लोकेशा वासवादयः प्रोक्ताः।।
वज्र सशक्तिर्दण्डः खड्गः पाशांकुशौ गदाशूलौ।
रथचरणनलिनसंज्ञौ प्रोक्तान्यस्त्राणि लोकपालानाम्।।
पीतहिमजलदगगनाचिरप्रभारक्तकुन्दनीलरुचः।
करविन्दारुणवर्णाः प्रोक्ताः स्युर्वर्णतोऽपि वज्राद्याः।।

(वही, ६/५८-६४)

❋

अग्नि-स्थापना

7

मन्त्रदेवता तथा कलादि की आवरण-पूजा सम्पन्न करने के बाद गुरु को चाहिये कि वह पूर्वोक्त मण्डल के चारों ओर पंचम पटलोक्त अंकुरित शाली, कंगु, श्यामाक आदि से युक्त मंगल-पात्रों को स्थापित करके हवन-कुण्ड को गोमय से लीप कर उसके पास अपने चरण की माप की भूमि पर रेखाएं खींच कर योग-विष्टर का निर्माण करके 'ओं ह्रीं वागीश्वरीवागीश्वरासनाय नमः' मन्त्र से योगविष्टर की पूजा करे, अथवा गुरु के उपदेशानुसार शिष्य षट्कोण के भीतर एक त्रिकोण का निर्माण कर उसमें 'प्राणाग्निहोत्र की विधि से 'आवसथीय' नामक अग्नि के स्थान को ऋतुमती, इन्द्रियातीत, जगन्मयी भगवती शक्ति की भावना कर ओंकार के उच्चारण के साथ उसकी योनि में सूर्यकान्त मणि अथवा अरणिमन्थन से उत्पन्न या श्रोत्रिय की अग्निशाला से लायी गई अग्नि की स्थापना कर, उसे—

"चित्पिंगल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा"।

मन्त्र से प्रज्ज्वलित करके—

"अग्निं प्रज्ज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतो मुखम्"।।

मन्त्र से अग्नि की स्तुति करने के बाद अग्निदेव के जिह्वामन्त्रों से लिंग, गुदा, मूर्धा, आस्य, नासा, नेत्र तथा सर्वांग में क्रमशः न्यास करना चाहिये।

कृते निवेद्ये च ततो मण्डलं परितः क्रमात्।
मंगलांकुरपात्राणि स्थापनीयानि मन्त्रिणा।।
उपलिप्य कुण्डमत्र स्वचरणयोग्या विलिख्य रेखाश्च।
अभ्युक्ष्य प्रणवेन प्रकल्पयेद् योगविष्टरं मन्त्री
अथवा षट् कोणावृतत्रिकोणके गुरुजनोपदेशेन
प्राणाग्निहोत्रविधिनाऽप्यावसथीयाह्वयेऽनलस्थाने।।
तत्राथो सदृतुमतीमतीन्द्रियाभां
संस्मृत्य सकलजगन्मयीं च शक्तिम्।
तद्योनौ मणिभवमारणेयकं वा

तारेणाक्षिपतु गृहोत्थमेव वाऽग्निम्।।
चित्पिंगलपदमुक्त्वा हनदहपचयुग्मकानि सर्वज्ञम्।
आज्ञापयाग्निजाये प्रभाष्य मनुनाऽमुनाऽनलं ज्वालयेत्।।
अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतो मुखम्।।
अनेन ज्वलितं मन्त्रेणोपतिष्ठेद्धुताशनम्। (प्रपंचसारतन्त्र, ६/६५-७१)

सप्तजिह्वाओं के नाम एवं वर्ण

अग्नि की जिह्वाएं सात्विक, राजसिक तथा तामसिक तीन प्रकार की होती हैं। इनमें अपने-अपने नाम के अनुरूप वर्ण वाली जिह्वाओं में हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अतिरक्ता ये सात जिह्वाएं सात्विक, पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, घूमिनी तथा करालिका नामक जिह्वाएं राजसिक एवं विश्वमूर्ति, स्फुलिंगिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला तथा काली नामक अग्निजिह्वाएं तामसिक मानी जाती हैं। सात्विक जिह्वाएं देवतादि की पूजा में, राजसिक जिह्वाएं काम्यकर्म में तथा तामसिक जिह्वाएं क्रूर प्रयोगों में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। वास्तव में, सुर, पितृ, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच तथा राक्षस हविभाग के लिये क्रम से इन्हीं सप्तजिह्वाओं पर आश्रित हैं।

हिरण्या गगना, रक्ता कृष्णा चैव तु सुप्रभा।
बहुरूपाऽतिरक्ता च जिह्वा सप्तेति सात्विकाः।
पद्मरागा सुवर्णा च तृतीया भद्रलोहिता।
लोहिताख्या तथा श्वेता धूमिनी सकरालिका।।
राजस्यः कथिता जिह्वाः क्रमात् कल्याणरेतसः।
विश्वमूर्त्तिस्फुलिंगिन्यो धूम्रवर्णा मनोजवा।।
लोहिता च करालाख्या काली तामसजिह्विकाः।।
अनलेरार्धिबिन्द्वन्ताः सादियान्ताक्षरान्विताः।।
सात्त्विका दिव्यपूजासु राजस्य काम्यकर्मसु।
तामस्यः क्रूरकार्येषु प्रयोक्तव्याः विपश्चिता।।
सुराः सपितृगन्धर्वयक्षनागपिशाचकाः।
राक्षसाश्च क्रमादग्नेराश्रिता रसनास्वमी।।
जिह्वासु त्रिदशादीनां तत्तत्कार्यसमाप्तये।

जुहुयाद् वांछितां सिद्धिं दद्युस्ता देवता मताः।।
स्वनामसदृशाकाराः प्रायो जिह्वा हविर्भुजः।। (वही, ६/७३-८०)

अग्निदेव की प्रार्थना के पश्चात् मन्त्र एवं कर्मानुरूप अग्नि की इन्हीं जिह्वाओं में क्रमशः अनल (र्), इर (य), अर्घी (ऊ) तथा बिन्दु से युक्त (विलोम क्रम से) स से य पर्यन्त अक्षरों से युक्त जिह्वामन्त्रों से गुरु और शिष्य की देह के लिंग, गुदा, मूर्धा, मुख, नासा, नेत्र तथा सर्वांग में न्यास किया जाता है। जैसे यजनादि देवकार्यों में अग्नि की सात्त्विक जिह्वाओं का न्यास निम्न प्रकार से किया जायगा—

"स्र्यूं हिरण्यायै नमः लिंगे, ष्र्यूं गगनायै नमः पायौ,
श्र्यूं रक्तायै नमः शिरसि, व्र्यूं कृष्णायै नमः मुखे,
ल्र्यूं सुप्रभायै नमः नासिकायाम्, र्र्यूं बहुरूपायै नमः नेत्रयोः,
य्र्यूं अतिरक्तायै नमः सर्वांगे"।

ततः प्रविन्यसेद् देहे जिह्वामन्त्रैर्विभावसोः।
सलिंगगुदमूर्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात्।
ससर्वांगेषु जिह्वाश्च वक्ष्यन्ते त्रिविधात्मिकाः।। (वही, ६/ ७१-७२)

षडंगन्यास

सप्तजिह्वामन्त्र न्यास के उपरान्त सहस्रार्चि, स्वस्तिपूर्ण, उत्तिष्ठपुरुष, धूम्रव्यापिन्, सप्तजिह्व तथा धनुर्धर पदों से षडंगन्यास तथा अष्टमूर्ति न्यास करना चाहिये।

सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषस्तथा।
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतीरितः।।
अंगमन्त्रान् क्रमादष्टमूर्तीश्चाऽथ प्रविन्यसेत्।। (वही, ६/८१.८२)

तदनुसार षडंगन्यास निम्नांकित प्रकार के होंगे—

"सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा,
उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् , धूमव्यापिने कवचाय हुम् ,
सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् , धनुर्धराय अस्त्राय फट्"।

अष्टमूर्तिन्यास

षडंगन्यास के बाद क्रमशः मूर्धा, वामस्कन्ध, वामपार्श्व, वामकटि, लिंग,

दक्षकटि, दक्षपार्श्व एवं दक्षस्कन्ध में अग्नि की जातवेदस्, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजस्, विश्वमुख तथा देवमुख नामक अग्नि की आठ मूर्तियों का न्यास इन नामों से पहले 'ओं अग्नये' तथा अन्त में 'नमः' पद लगाकर प्रदक्षिणा के क्रम अर्थात् बाएं से दायें करना चाहिये।

... .क्रमादष्टमूर्तींश्चऽथ प्रविन्यसेत्।
मूर्धांसपार्श्वकट्यन्धुकटिपार्श्वांसकेषु च।
प्रादक्षिण्येन विन्यस्येद् यथावद् देशिकोत्तम।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च।।
अश्वोदरजसंज्ञश्च सवैश्वानर एव च।
कौमारतेजाश्च तथा विश्वदेवमुखाह्वयौ।।
स्युरष्टमूर्तयो वह्नेरग्नये पदपूर्विका।
प्रणवादि नमोऽताश्च... (वही, ६/८२-८५)

अष्टमूर्ति न्यास

उपर्युक्त उल्लेखानुसार अष्टमूर्ति न्यास का स्वरूप निम्नांकित होगा—

ओं अग्नये जातवेदसे नमः (मूर्ध्नि),
ओं अग्नये सप्तजिह्वाय नमः (वामांसे)
ओं अग्नये हव्यवाहनाय नमः (वामपार्श्वे),
ओं अग्नये अश्वोदरजाय नमः (वामकटौ)
ओं अग्नये वैश्वानराय नमः (लिंगे),
ओं अग्नये कौमारतेजसे नमः (दक्षकटौ)
ओं अग्नये विश्वमुखाय नमः (दक्षपार्श्वे),
ओं अग्नये देवमुखाय नमः दक्षांसे।

अग्निदेव की आवरण-पूजा

न्यासों के पश्चात् अग्निदेव की आवरण-पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये। इसके लिये पहले ही निर्मित पूजा-पीठ पर षट्कोण बनाकर उसके चारों ओर की मुख्य दिशाओं में कुश-निर्मित चार आसनों को बिछाकर षट्कोण के मध्य में अग्निदेव, छहों कोणों में क्रमशः अग्नि की उक्त छह जिह्वाओं, अग्निदेव के पार्श्व में सातवीं (अतिरक्ता) जिह्वा, केसरों में अंगमन्त्रों, छह कोणों से बाहर अग्नि की अष्टमूर्तियों (मूर्तियों के बाहर अष्टमातरों तथा भैरवादि) की पूजा

उनके मन्त्रों से करनी चाहिये। अग्निदेव की पूजा 'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' मन्त्र से करनी चाहिये। मन्त्रमहोदधि के अनुसार जिह्वामन्त्र के ऋषि भृगु, छन्दस् गायत्री, देवता पावक, बीज रं तथा शक्ति स्वाहा हैं।

......................पुनर्दर्भचतुष्टयैः।
दिक्क्रमात् संपरिस्तीर्य सम्यग्गन्धादिभिर्यजेत्।
मध्ये च कोणषट्के च जिह्वाभिः केसरेषु च।।
अंगमन्त्रैस्ततो बाह्ये चाऽष्टभिर्मूर्तिभिः क्रमात्।
ततोऽग्निमनुना तेन मन्त्री मध्ये च संयजेत्।।
वैश्वानरं जातवेदमुक्त्वा चेहावहेति च।
लोहिताक्षपदं सर्वकर्माणीति समीरयेत्।।
ब्रूयाच्च साधयेत्यन्ते वह्निजायान्तिको मनुः।। (वही, ६/८५-८८)

अग्निदेव का ध्यान

अग्निदेव के आवाहनादि षोडशोपचार पूजन के अनन्तर तीन नेत्रों वाले, रक्त वर्ण की केशराशि से सुशोभित सिर वाले, श्वेतवस्त्रधारी, रक्तवर्ण की देहवाले कमलासन पर विराजमान, अपने चार हाथों में से दाहिने हाथों में वरदमुद्रा तथा शक्ति एवं बाएं हाथों में स्वस्तिक तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए एवं स्वर्णमाला से विभूषित अग्निदेव का ध्यान करना चाहिये।

त्रिनयनमरुणाप्तबद्धमौलि सुशुक्लांशुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम्।
अभिमतवरशक्तिस्वस्तिकाभीतिहस्तं नमत कनकमालालंकृतांसकृशानुम् ।।
(वही, ६/८६)

उपर्युक्त अग्नि-जिह्वाओं का वर्ण ज्वाला की भांति, अंगदेवता वराभयहस्त वाली तथा मूर्तियों के हाथों में शक्ति तथा स्वस्तिक है।

जिह्वा ज्वालारुचः प्रोक्ता वराभययुतानि च।
अंगानि मूर्तयः शक्तिस्वस्तिकोद्यतदोर्द्वयाः।। (वही, ६/६०)

न्यास एवं ध्यान के पश्चात् के अग्निदेव के स्थापन, तापन, अभिद्योतन, उद्योतन, उत्पवन तथा संप्लवन नामक छह संस्कारों (विशेष देखें विवरण में) को सम्पन्न कर विशुद्ध घृत से व्याहृतियों के साथ उच्चरित अग्निमन्त्र से तीन बार हवन करना चाहिये।

संस्कृतेन घृतेनाऽभिद्योतनोद्योतितेन च।
व्याहृत्यनन्तरं तेन मनुना जुहुयात्त्रिशः।। (वही, ६/६१)

अग्निदेव के गर्भाधानादि संस्कार

इसके बाद अग्निदेव का "अस्य अग्नेः गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहा, अस्य अग्नेः सीमन्तोन्नयनसंस्कारं करोमि स्वाहा" आदि मन्त्रों से गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन तथा विवाह आदि संस्कार सम्पन्न करने चाहिए। प्रत्येक संस्कार में व्याहृतियों से युक्त अग्निमन्त्र के अन्त में 'वौषट्' लगाकर(ओं भूः भुवः स्वः वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा वौषट् आदि) आठ घृताहुतियां देनी चाहिए। इसके बाद अग्निदेव के माता-पिता वागीशी एवं वागीश की पूजा करके उन्हें अपने हृदय में स्थापित कर ('ततः पितरौ सम्पूज्य आत्महृदये स्थापयित्वा समिधो जुहुयात्' इति विवरणे) अग्निजिह्वाओं तथा अग्निमूर्तियों के मन्त्रों से एक-एक आहुति षट्कोण के मध्य में स्थापित अग्निदेव तथा उक्त छह जिह्वाओं तथा समस्त मन्त्रों से षट्कोण के मध्य में स्थित 'अतिरक्ता' नामक जिह्वा में एक आहुति देकर अग्निपूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

गर्भाधानादिका वह्नेः समुद्वाहावसानिकाः।
क्रियास्तारेण वै कुर्यादाज्याहुत्यष्टकैः पृथक्।।
जिह्वांगमूर्तिमनुभिरेकाहुत्या हुनेत्ततः।
जिह्वायां मध्यसंस्थायां मन्त्री ज्वालावलीतनौ।। (वही, ६/६२-६३)

गणपति-पूजन

अग्निदेव की पूजा सम्पन्न कर लेने के बाद विघ्नविनाशक भगवान् गणपति की पूजा गणपति मन्त्र 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' से करनी चाहिये। भगवान् गणपति का यह मन्त्र कल्पवृक्ष के समान समस्त सम्पत्तियों का देने वाला है।

तारः श्रीशक्तिमारावनिगणपतिबीजानि दण्डीनि चोक्त्वा।
पश्चाद्विघ्नं चतुर्थ्या वरवरदमथो सर्वयुक्तं जनं च।
आभाष्य क्ष्वेलमेन्तं वशमिति च तथैवाऽऽनयेति द्विठान्तः ।।
प्रोक्तोऽयं गाणपत्यो मनुरखिलविभूतिप्रदः कल्पशाखी।।
(वही, १७/२)

हवन

गणपति मन्त्र के 'ओम्, श्रीं, ह्रीं, क्लीं, ग्लौं, गं, गणपतये, वरवरद, सर्वजनं मे, वशमानय स्वाहा'(अत्र वशमानय स्वाहा इत्ययं दशमो भेद इति दीपिकायाम्) ये दस अंग हैं। पूर्व-पूर्व भेदों से युक्त गणपति के उक्त मन्त्र से एक-एक आहुति दी जानी चाहिये। यथा—

ओं स्वाहा,
ओं श्रीं स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा

तदनन्तर समस्त गणपति मन्त्र से चार तथा इष्ट मन्त्र से २५ घृताहुतियां दी जानी चाहिये। आचार्य शंकर का कहना है कि अग्नि देवता की तृप्ति के लिये सभी प्रकार के हवनों में इसी विधि का पालन किया जाना चाहिये। विशेषरूप से तान्त्रिक हवनों में इसी विधि को अपनाने का नियम है।

ताराद्यैर्दशभिर्भेदैः पूर्वपूर्वसमन्वितैः।
मनुना गाणपत्येन हुनेत्पूर्वं दशाहुतीः।।
जुहुयाच्च चतुर्वारं समस्तेनैव तेन तु।
आज्येन साध्यमनुना पंचविंशतिसंख्यकम्।।
जुहुयात्सर्वहोमेषु सुधीरनलतृप्तये।।
तान्त्रिकाणामयं न्यायो हुतानां समुदीरितः।। (वही, ६/६४-६६)

कलशपूजा, अग्निस्थापन तथा पूजन एवं गणपति-पूजन के पश्चात् अपने साध्यमनु अर्थात् जिस मन्त्र का उसने जप किया है या करना चाहता है, जो साधक का अपना इष्ट मन्त्र है, उस मन्त्र से घृत से युक्त दूध-भात अथवा वह जिस साधना में लगा है, उसके विधान के लिये निश्चित द्रव्यों की आठ हजार

अथवा आठ सौ आहुतियां साध्यमन्त्र से देकर अभिसिंचन के साथ मुख्य हवन कर्म की समाप्ति करे।

पुनः साध्येन मनुना हुनेदष्टसहस्रकम्।
अथवाऽष्टशतं सर्पिःसंयुक्तेन पयोऽन्धसा।।
द्रव्यैर्विधानप्रोक्तैर्वा महाव्याहृतिपश्चिमम्।
पुनः समापयेद् होमं परिषेकावसानकम्। (वही, ६/९७-९८)

महाव्याहृति हवन

मुख्य हवन समाप्त करने के बाद महाव्याहृति हवन करना चाहिये। महाव्याहृति हवन के मन्त्र निम्न हैं—

भूर्भुवःस्वः भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा,
भूर्भुवःस्व भुवः वायवे च अन्तरिक्षाय च महते च स्वाहा,
भूर्भुवःस्वः स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा,
भूर्भुवःस्वः भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यश्च महते स्वाहा।

भूर्भुवःस्वर्भूभुवःस्वः पूर्वं स्वाहान्तमेव च।
अग्नये च पृथिव्यै च महते च समन्वितम्।।
वायवे चान्तरिक्षाय महते च समन्वितम्।
आदित्याय च वै दिवे महते च समन्वितम्।।
चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यश्च महतेऽन्वितम्।
महाव्याहृतयस्त्वेताः सर्वशो देवतामयाः।। (वही, ६/९९-१०१)

(विशेष द्रष्टव्य—विवरण एवं दीपिका)

ब्रह्मार्पण-विधि

महाव्याहृति-हवन के अनन्तर साधक को चाहिये कि वह कर्म-बन्धन से छुटकारा पाने के लिये—'इतः प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना च यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा' इस ब्रह्मार्पण मन्त्र से आठ आहुतियां दे।

ब्रह्मार्पणाख्यमनुना पुनरष्टावथाहुतीः।
जुहुयान्मन्त्रवर्येण कर्मबन्धविमुक्तये।।
इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनामन्तेऽवस्थास्वितीरयेत्।।

ततश्च मनसा वाचा कर्मणेति प्रभाषयेत्।
हस्ताभ्यां च तथा पद्भ्यामुदरेणेति भाषयेत्।।
शिश्ना च यत्स्मृतं प्रोक्त्वा यदुक्तं यत्कृतं तथा।
तत्सर्वमिति संभाष्य ब्रह्मार्पणपदं वदेत्।।
भवत्वन्ते द्विठश्चाऽयं ब्रह्मार्पणमनुर्मतः।। (वही, ६/१०२-१०६)

नक्षत्रादि बलि

गुरु के निर्देशन में इस प्रकार हवन सम्पन्न कर लेने के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह मण्डल में स्थित कलश के पास नक्षत्रों, राशियों, दिनों, राशियों के स्वामियों, ग्रहों, करणों आदि को 'अश्विनी भरणी कृत्तिकापादनक्षत्रमेष-राशिदेवताभ्यो दिवानक्तचारिभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः' आदि मन्त्रों द्वारा बलि प्रदान करके उक्त देवताओं को नैवेद्य अर्पित कर अष्टांग या पंचांग अथवा दोनों प्रकार से प्रणाम करे।

हुते तु देशिकः पश्चान्मण्डले बलिमारभेत्।।
नक्षत्राणां सराशीनां सवाराणां यथाक्रमम्।
दद्याद् बलिं गन्धपुष्पधूपदीपकमादरात्।।
ताराणामश्विनादीनां राशिः पादाधिकं द्वयम्।
मेषादिमुक्त्वा नक्षत्रसंज्ञापूर्वमनन्तरम्।।
देवताभ्यः पदं प्रोक्त्वा दिवानक्तं पदं वदेत्।
चारिभ्यश्चाऽथ सर्वेभ्यो भूतेभ्यश्च नमो वदेत्।।
एवं राशौ तु सम्पूर्णे तस्मिंतद्वत्प्रयोजयेत्।
तथा राश्यधिपानां च ग्रहाणां तत्र तत्र तु।।
सप्तानां करणानां च दद्यान्मीनाद्वमेषयोः।।
अन्तराले बलिस्त्वेवं सम्प्रोक्तः कलशात्मकः।।
पुनर्निवेद्यमुद्धृत्य पुरावत्परिपूज्य च।
मुखवासादिकं दत्वा स्तुत्या तद्युक्तया पुनः।।
स्तुत्वा यथावत्प्रणमेद्भक्तियुक्तस्तु साधकः।
अष्टांगं वापि पंचांगमुभाभ्यां वा समाहितः।। (वही, ६/१०६-११३)

(विशेष द्रष्टव्य—विवरण एवं दीपिका)

अष्टांग एवं पंचांग प्रणाम

हाथों, पैरों, घुटनों, सिर, आंखों, वाणी तथा मन इन आठ अंगों से एक

साथ किया गया नमन अष्टांग प्रणाम कहा जाता है। जबकि बाहों, घुटनों, सिर, वचन और बुद्धि से किये गये नमन को पंचांग प्रणाम कहते हैं। देवादि की अर्चना में इन दोनों प्रकार के प्रणामों को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

दोर्भ्यां पद्भ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
वचसा मनसा चेति प्रणामोऽष्टांग ईरितः।।
बाहुभ्यां च सजानुभ्यां शिरसा वचसा धिया।
पंचांगकः प्रणामः स्यात्पूजासु प्रवराविमौ।। (वही, ६/११४-११५)

पूजा-कार्य में प्रणाम के नियम

यागादि कार्यों में गुरुपूजन से लेकर इन्द्रादि लोकेश पूजन पर्यन्त सभी नमस्कार मन्त्रों के आरम्भ में ओं तदनन्तर चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में नमः पद का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'ओं शिवाय नमः' आदि। हवनादि अग्निकार्यों में मन्त्र के अन्त में 'द्विठान्त' अर्थात् 'स्वाहा' पद का प्रयोग होता है। पूजन में बीज मन्त्रों का प्रयोग बिना विभक्ति के ही किया जाता है।

गुर्वाद्यास्तारादिका यागमन्त्रा लोकेशान्तास्ते चतुर्थी नमोऽन्ताः।
पूजायामग्निकार्ये द्विठान्ता बीजैः पूजा स्याद् विभक्तया वियुक्तैः।।
(वही, ६/११६)

दक्षिणा

हवन तथा बलिकर्म समाप्त कर लेने के बाद साधक को चाहिये कि वह उदार हृदय से अपने गुरु तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे। दक्षिणा ब्रह्मार्पण की भावना से देनी चाहिये। यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को वस्त्राभूषणादि प्रदान करना चाहिये। निर्धारित दक्षिणा में से आधा या चौथाई अथवा दशांश भाग गुरु को तथा शेष भाग दीक्षायज्ञ में भाग लेने वाले अन्य ब्राह्मणों को देना चाहिये। दक्षिणा स्वीकार करने के बाद गुरु और याज्ञिक ब्राह्मणों को चाहिये कि वे कलश में रखे गये उक्त औषधि-विपाचित जल से शिष्य का उसी प्रकार से अभिसिंचन करें, जिस प्रकार वर्णमन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित जल से कलश को भरा गया था।

वाससी च पुनरंगुलिभूषां होमकृत् सुमुखजप्रवरेषु।
ईश्वरार्पणमिति प्रति दत्वा वर्धितो द्विजमुखेरितवाग्भिः।।
नत्वा ततस्तनुभृते परमात्मने स्वं द्रव्यार्धमेव गुरवे चतुरंशकं वा।

दत्वा दशांशमथवापि च वित्तशाठ्यं हित्वाऽर्पयेन्निजतनुं तदधीनचेताः।।
अथ पटुरवमुख्यवाद्यघोषैर्द्विजमुखनिष्पतदाशिषां रवेण।
सुनियतमपि सुस्थितं च शिष्यं कलशजलैरभिषेचयेद् यथावत्।।
यथा पुरा पूरितमक्षरैर्घटैः सुधामयैः शिष्यतनौ तथैव तैः।
प्रपूरयन्मन्त्रिवरोऽभिषेचयेदवाप्तये मंक्षु यथेष्टसम्पदाम्।।

(वही, ६/११७-१२०)

मन्त्रदान

दक्षिणा अर्पण तथा अभिसिंचन के बाद शिष्य को चाहिये कि वह निर्मल वस्त्र धारण करके आचमन कर गुरु को नमस्कार कर उनके समीप बैठ जाय। गुरु अपने समीप बैठे हुए शिष्य के लिये निर्धारित मन्त्र को स्पष्ट रूप से तीन बार बोल कर मन्त्र-दीक्षा दे। शिष्य को चाहिये कि वह अपने गुरु, उपास्य देवता और गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र में अभेद की भावना करता हुआ उस मन्त्र को उसी समय सौ बार जपे।

विमले परिधाय वाससी पुनराचम्य गुरुं प्रणम्य च।
निकटे समुपासते वदेदपि शिष्याय मनुं त्रिशो गुरुः।।
गुरुणा समनुगृहीतं मन्त्रं सद्यो जपेच्छतावृत्त्या।
गुरुदेवतामनूनामैक्यं सम्भावयन् धिया शिष्यः।।
मन्त्रे मन्त्रगुरावपि मन्त्री मन्त्रस्य देवतायां च।
त्रिषु विहितसततभक्तिः प्रेत्येह निजेप्सितं फलं लभते।।

(वही, ६/१२१-१२३)

शंकर के अनुसार गुरु से विधिपूर्वक प्राप्त किये गये मन्त्र की साधना से साधक इहलोक तथा परलोक में अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। क्योंकि, संसार में मणियों, मन्त्रों और औषधियों का प्रभाव और शक्ति मानवीय चिन्तन से परे है।

संक्षेपादिति गदिता हिताय दीक्षा
जप्तॄणा प्रवरफलप्रदाऽचिराय।
प्राप्यैनां जपविधिरादरेण कार्यो
विद्वद्भिः सहुतविधिर्निजेष्टसिद्ध्यै।।
प्रोक्तेनैवं कलशविधिनैकेन वाऽनेककुम्भैः-
र्भक्त्या यो वा सुमतिरभिर्षिचेन्नरो मन्त्रजापी।

कामान् प्राप्नोत्ययमिह परत्रापि किं तत्र चित्रं
लोकैश्चिन्त्यो न खलु मणिमन्त्रौषधीनाम् प्रभावः।।

(वही, ६/१२४-१२५)

आचार्य शंकर ने प्रपंचसारतन्त्र के पांचवें तथा छठे पटल में विस्तारपूर्वक दीक्षा-विधान का सांगोपांग वर्णन करते हुए कहा है कि उनके द्वारा वर्णित दीक्षा विधि तान्त्रिक परम्परा की है—तान्त्रिकानामयं न्यायो हुतानां समुदीरितः।

सामान्यतया शंकरोक्त दीक्षा-विधान का यथावत् अनुसरण कर पाना सरल नहीं है। किन्तु, इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इस दीक्षा-विधि का अनुसरण किये बिना मन्त्रदीक्षा दी ही नहीं जा सकती। शक्तिपात आदि दीक्षा की कई ऐसी विधियां हैं, जिनमें बाह्य विधानों की आवश्यकता नहीं होती। अधिकारी शिष्य को समर्थ गुरु बिना किसी बाह्यपूजा-विधान के ही केवल स्मरण, दृष्टिपात या स्पर्शमात्र से अनुग्रहीत कर सकता है। ध्रुव, प्रह्लाद तथा वाल्मीकि सहित कई ऐसे योग्य साधक हुए हैं, जिन्हें महान् गुरुओं ने बिना किसी बाह्य दीक्षा-विधान के ही अनुग्रहीत किया है। जरूरी नहीं कि कोई मानव गुरु ही किसी शिष्य को मन्त्रदीक्षा दे। अनेक उदाहरण हैं जब दैवी शक्तियों ने प्रत्यक्ष या स्वप्न में साधक को मन्त्र-दीक्षा दी है। यदि शिष्य अपने भीतर शिष्यत्व की योग्यता लाये, तब महान् गुरु या दैवीशक्ति उसे अनुग्रहीत करने स्वयं आयेगी।

❋

8

वर्णाधिदेवता मातृका शक्ति

वर्णतनु शारदा

भर्तृहरि के अनुसार यह संसार घने अन्धकार में ही विलीन पड़ा रहता, यदि शब्द नामक ज्योति का प्रकाश न हुआ होता—

"इदमन्धस्तमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते"।। (वाक्यपदीयम्)

संसार को प्रकाशित करने वाली शब्दज्योति मातृका सरस्वती ही है। यही परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के रूप में अभिव्यक्त होती हुई अर्थ-प्रकाशन करती है। मातृकाएं मन्त्ररूप हैं और मन्त्र मातृकामय। मातृकाएं भगवती परा शक्ति का ही स्वरूप है। इन्हें 'अक्षर' भी कहा जाता है। समस्त संसार 'अक्ष' से वाच्य है, अर्थात् संसार का निर्वचन अ से लेकर क्ष पर्यन्त मातृकाओं द्वारा ही संभव है। 'अक्षर' शब्द का अन्तिम वर्ण 'र' अग्नि बीज है। इसका स्वभाव 'प्रकाशित करना और प्रकाशित होना' है। अ-क्ष मय संसार परा शक्ति के 'रकार' रूप तेजस् से प्रकाशित होता है। यह 'अक्ष' और उसे प्रकाशित करने वाला 'र' भगवती का अपना ही स्वरूप है, क्योंकि, जो कुछ भी प्रकाश्य एवं प्रकाश है, वह स्वयं परा ही है।

अक्षरात्मिका परा शक्ति को सरस्वती भी कहते हैं, क्योंकि वह रसस्वती, रस स्रवित करने वाली, विश्व-वृक्ष को जीवनरस देने वाली रसात्मिका शक्ति है। इसी का नाम 'शारदा' भी है, क्योंकि, यह 'शार+दा' है। क्षरणशील पदार्थ को 'शार' कहते हैं। समस्त सांसारिक कर्म 'शार' हैं। विनाशशील कर्मों के फल की प्रदात्री होने के कारण परा शक्ति को 'शारदा' कहा जाता है। परा शक्ति 'ब्रह्मविद्या' के रूप में कर्मों और कर्म फलों को खण्डित या नष्ट करके साधक को मोक्ष भी प्रदान करती है, इसलिये भी इसे 'शारदा' कहा जाता है।

"शीर्यते इति शारं स्थूलादिलक्षणं कर्मफलं ददातीति शारदा, तत्कारणं च ब्रह्मविद्याधिरूढा सती द्यति खण्डयतीति शारदे"ति विवरणे पद्मपादाचार्यः।

आचार्य शंकर के अनुसार पराशक्ति शारदा का शरीर मातृकामय है। अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग तथा यवर्ग में से 'अवर्ग की अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं तथा अः' इन सोलह मातृकाओं से भगवती परा शारदा के क्रमशः सिर, मुखमण्डल, दोनों नयन, दोनों कर्ण, दोनों नासापुट, दोनों कपोल, दोनों ओठ, दोनों दन्तपंक्तियां, मूर्धा, तथा मुख ये सोलह अंग निर्मित हैं। कवर्ग के क ख ग घ तथा ङ वर्णों से क्रमशः दांयीं बाहु के मूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल तथा अंगुलियों के अग्रभाग, चवर्ग के च छ ज झ तथा ञ से क्रमशः बायीं बाहु के मूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलियों के मूल तथा अग्रभाग, टवर्ग के ट ठ ड ढ तथा ण से क्रमशः दायें पैर का मूल, जानु, गुल्फ, अंगुलियों के मूल तथा अग्रभाग, तवर्ग के त थ द ध तथा न क्रमशः बांयें पैर के मूल, जानु, गुल्फ, अंगुलिमूल तथा अंगुलियों के अग्रभाग, पवर्ग के प फ ब भ तथा म से क्रमशः दायां पार्श्व, बायां पार्श्व, पीठ, नाभि तथा उदर, यवर्ग के य र ल व श ष स ह ळ तथा क्ष से क्रमशः हृदय, दायां कन्धा, ग्रीवा, बायां कन्धा, हृदय से लेकर दाएं हाथ का अन्त, हृदय से लेकर बाएं हाथ का अन्त, हृदय से लेकर दाएं पैर का अन्त, हृदय से लेकर बाएं पैर का अन्त, हृदय से लेकर उदर तथा हृदय से लेकर मुखान्त भाग निर्मित है।

अकचटतपयाद्यैः सप्तभिर्वर्णवर्गैर्विरचितमुखबाहापादमध्याख्यहृत्का।
सकलजगदधीशा शाश्वता विश्वयोनिर्वितरतु परिशुद्धिं चेतसः शारदा वः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १/१)

(द्रष्टव्य, प्रपंचसार १/१ पर विवरण तथा दीपिका)

पराशक्ति वर्णेश्वरी की उपासना

वर्णेश्वरी भगवती पराशक्ति की उपासना करते समय साधक शारदा के अंग रूप उक्त ५१ वर्णों को अपने शरीर के उक्त सिर आदि स्थानों में न्यास करके अपने शरीर को पराशक्ति का अधिष्ठान बनाता है। वर्णेश्वरी सरस्वती की साधना वर्णों या मातृकाओं के पूजन, जप तथा हवनादि द्वारा ही की जाती है। वर्णतनु सरस्वती की व्यष्टि रूप से प्रत्येक तथा समष्टि रूप से सभी ५१ मातृकाएं मन्त्रमय हैं। वर्णरूपा मातृका सरस्वती की उपासना में न्यासादि की क्रियाएं अन्य देवताओं की उपासना की भांति ही की जाती हैं।

मातृका सरस्वती के ऋष्यादि

मातृका सरस्वती के वर्णमय मन्त्रों के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् गायत्री, देवता स्वयं सरस्वती, (बीज अनुस्वार तथा शक्ति विसर्ग) हैं।

ब्रह्माऽस्या ऋषिरीरितः सुमतिभिर्गायत्रमुक्तं च त-
च्छन्दस्त्वेव सरस्वती निगदिता मन्त्रेषु तद्देवता ।। (वही, ७/२)

"बिन्दुविसर्गौ बीजशक्ती इति"। (वही, विवरण)

न्यास

तदनुसार मातृका सरस्वती के वर्णमय मन्त्रों की साधना में ऋष्यादि न्यास निम्न प्रकार से होगा—

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि), गायत्री छन्दसे नमः (मुखे)
सरस्वती देवतायै नमः (हृदये), अं बीजाय नमः (गुह्ये)
अः शक्तये नमः (पादयोः)

कुछ साधकों ने 'हं' को बीज तथा 'सः' को शक्ति माना है। इसमें हकार तथा सकार का लोप कर देने से अं तथा अः, अर्थात् बिन्दु और विसर्ग ही शेष रहता है। इस प्रकार दोनों पक्षों में कोई विरोध नहीं है।

"बिन्दुविसर्गौ बीजशक्ती, हसावित्यन्ये। ततो हमिति बीजं स इति शक्तिः। इत्युभयाविरोधेन सिद्धं भवति"। (इति विवरणे)

षडंगन्यास

आचार्य शंकर ने मातृका मन्त्रों की अंगन्यास की विधि में अ इ उ ए ओ तथा अं इन छह ह्रस्व तथा आ ई ऊ ऐ औ और अः इन छह दीर्घ स्वरों के मध्य क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग तथा यवर्ग के वर्णों को रख कर अंगन्यास सम्पन्न करने का निर्देश दिया है।

आद्यन्तस्वरषट्कलध्वपरयोरन्तःस्थितैः कादिभिः-
वर्गैर्यान्तगतैः क्रमेण कथिता न्यस्याः षडंगानि च।। (वही, ७/२)

इस निर्देश के अनुसार वर्णसरस्वती का षडंग न्यास निम्न प्रकार से किया जायगा—

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः,
इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा,
उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्,
एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं,

ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्,
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः अस्त्राय फट्।

वर्णन्यास (सृष्टिन्यास)

मातृका साधना में षडंग न्यास के उपरान्त शरीर के विभिन्न अंगों में अकार से क्षकार तक वर्णों का न्यास किया जाता है। इसे 'सृष्टिन्यास' भी कहा जाता है। सृष्टिन्यास निम्न प्रकार से सम्पन्न किया जाता है—

अं नमः (शिरसि), आं नमः (मुखवृत्ते),
इं नमः (दक्षनेत्रे), ईं नमः (वामनेत्रे),
उं नमः दक्षकर्णे, ऊं नमः वामकर्णे,
ऋं नमः दक्षनासापुटे, ॠं नमः वामनासापुटे,
लृं नमः दक्षगण्डे, ॡं नमः वामगण्डे,
एं नमः ऊर्ध्वौष्ठे, ऐं नमः अधरौष्ठे,
ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, औं नमः अधोदन्तपंक्तौ,
अं नमः मूर्ध्नि, अः नमः मुखे,
कं नमः दक्षबाहुमूले, खं नमः दक्षबाहुकूर्परे,
गं नमः दक्षबाहुमणिबन्धौ, घं नमः दक्षबाहु-अंगुलिमूले,
ङं नमः दक्षबाहु-अंगुल्यग्रे, चं नमः वामबाहुमूले,
छं नमः वामबाहुकूर्परे, जं नमः वामबाहुमणिबन्धौ,
झं नमः वामबाहु अंगुलिमूले, ञं नमः वामबाहु अंगुंल्यग्रे,
टं नमः दक्षपादमूले, ठं नमः दक्षपादजानुनि,
डं नमः दक्षपादगुल्फं, ढं नमः दक्षपादअंगुलिमूले,
णं नमः दक्षपादांगुल्यग्रे, तं नमः वामपादमूले,
थं नमः वामपादजानुनि, दं नमः वामपादगुल्फे,
धं नमः वामपादांगुलिमूले, नं नमः वामपादांगुल्यग्रे,
पं नमः दक्षिणपार्श्वे, फं नमः वामपार्श्वे,
बं नमः पृष्ठे, भं नमः नाभौ,
मं नमः उदरे, यं नमः हृदि,
रं नमः दक्षांसे, लं नमः ककुदि,
वं नमः वामांसे, शं नमः हृदयादिदक्षहस्तान्ते,
षं नमः हृदयादिवामहस्तान्ते,

सं नमः हृदयादिदक्षपादान्ते,
हं नमः हृदयादिवामपादान्ते,
ळं नमः हृदयादिजठरान्ते,
क्षं नमः हृदयादि-आननान्ते।

वर्णेश्वरी का ध्यान

वर्णेश्वरी के मातृका न्यासों के पश्चात् पचास वर्ण भेदों से निर्मित मुख, बाहु, पाद, कुक्षि तथा वक्ष के विभिन्न अंगों वाली, दिव्य केशराशि से सुशोभित, सिर पर चन्द्रमा धारण करने वाली, चन्द्रमा तथा कुन्द पुष्प के समान गौरवर्णा, हाथों में अक्षमाला, अमृत से पूर्ण कलश, चिन्तामणि तथा वरमुद्राधारिणी, तीन नेत्रों वाली, पद्मासन पर विराजमान, सुन्दर स्तन तथा जघनों वाली भगवती भारती का ध्यान करना चाहिये।

पंचाशद् वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणां पद्मसंस्था-
मच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि।। (वही, ७/३)

वर्णन्यास, जप एवं हवन

अपने शरीर को देवतामय बनाने के लिये शरीर के पूर्वोक्त अंगों में भगवती सरस्वती के वर्णमय शरीर की स्थापनारूपी वर्णन्यास-साधना गुरु एवं इष्टदेवता के प्रति अनन्य भक्ति के साथ आत्मानुशासन में रहते हुए करनी चाहिये। प्रतिदिन निश्चित संख्या में मातृकावर्णों का जप एवं न्यास करते हुए कुल १ लाख बार वर्णन्यास और इतना ही जप करना चाहिये। जप और न्यास पूर्ण हो जाने पर मधुर-त्रय (मधु, घृत तथा दुग्ध) से युक्त शुद्ध तिलों से १० हजार हवन करना चाहिये।

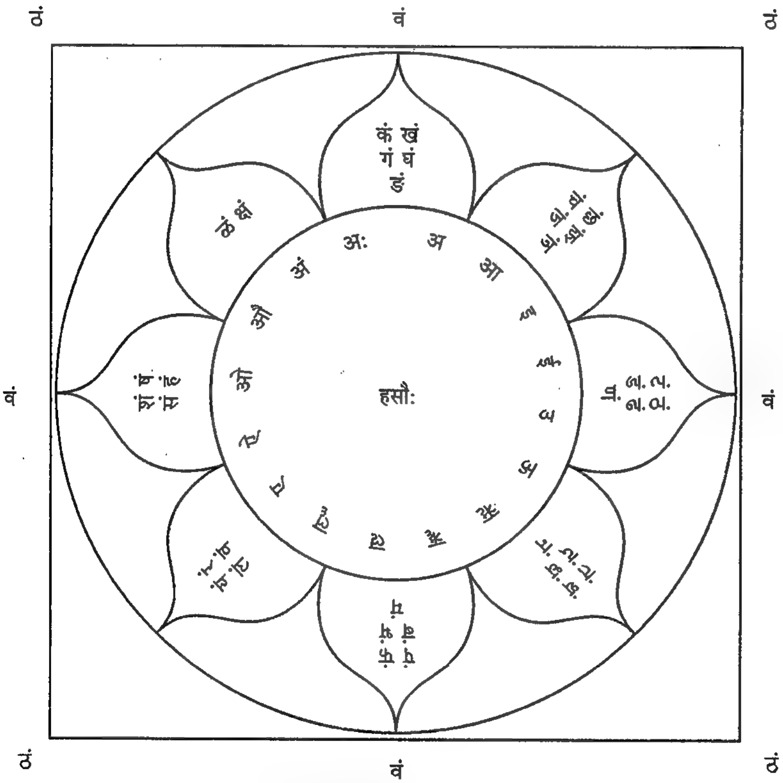
संदीक्षितो विमलधीर्गुरुणाऽनुशिष्टो,
लक्षं न्यसेत्सुनियतः प्रजपेच्च तावत्।
अन्तेऽयुतं प्रतिहुनेन्मधुरत्रयाक्तैः,
शुद्धैस्तिलैरपि यजेद् दिनशोऽक्षरेशीम्।। (वही, ७/६)

वर्णकमल में मातृका की आवरण-पूजा

न्यास एवं हवन की उक्त क्रिया सम्पन्न कर लेने के बाद साधक को चाहिये

कि वह मंण्डप में (आन्तरिक साधना में भावना द्वारा मस्तक में) 'वर्ण-कमल'रूपी पूजापीठ की रचना करे। शंकर के अनुसार वर्णकमल की रचना के लिये पहले आठ दलों वाले कमल की रचना करके उसकी कर्णिका में विसर्ग युक्त हसौ (हसौः) (व्योमाविः...विसर्गान्तःस्फुरत्) बीज, केसरों में क्रमशः कला (स्वर) युग्म अर्थात् दो-दो स्वर, आठ पंखुडियों में क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग तथा ळवर्ग के वर्ण लिखकर वर्णकमल की चारों उप दिशाओं में सप्तम वर्ण 'ठ', और मुख्य दिशाओं में 'वः' सहित 'भूपुर' बनाया जाना चाहिये।

वर्णाब्ज यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ७/६-७)

[मन्त्र - हसौः • जपसंख्या - १ लाख • हवनसंख्या - १० हजार हवनद्रव्य - मधुरत्रयसिक्त तिल]

व्योमाविःसचतुर्दशस्वरविसर्गान्तस्फुरत्कर्णिकम्,
किंजल्कालिखितंस्वरं प्रतिदलं प्रारब्धवर्गाष्टकम्।

क्ष्माबिम्बेन च सप्तमार्णवयुजास्राशासु संवेष्टितम्,
वर्णाब्जं शिरसि स्मृतं विषगदप्रध्वंसि मृत्युंजयम्।। (वही, ७/७)

"..ऋग्वेदादिगतवर्गप्रश्नादीनां च सप्तमार्णः ठकारः"इति विवरणे,
"चतुःषु अस्रिषु सप्तमार्णः ठः, दिक्षु वकारः"दीपिकायां द्रष्टव्यम्।

आवरण-पूजा की शंकर प्रतिपादित दूसरी विधि के अनुसार पूर्वोक्त प्रकार से पीठ में निर्मित अथवा मस्तक में अन्तर्भावित आठ पंखुडियों वाले कमल की कर्णिका में 'हसौः' बीज, केसरों में अंगदेवताओं, पंखुडियों की सन्धियों में क-च-ट-त-प-य-श तथा ळ इन आठ वर्गों के अक्षर, हसौः बीज के चारों ओर क्रमशः मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि तथा (हसौः बीज के नीचे) विद्येश्वरी नामक भारती की नवमी शक्ति, पंखुडियों के अग्रभाग में ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी नामक अष्ट माताओं, कमल दलों के बाहर स्वबीजयुक्त इन्द्रादि दस लोकपालों और उनके शक्त्यादि आयुधों सहित भगवती वाग्देवी की गन्ध-पुष्पादिकों से षोडशोपचार (भौतिक या मानसी) आवरण-पूजा की जानी चाहिये।

प्रविधाय पद्ममथ पीठमथो कथितक्रमेण विधिनाऽभिजयेत्।
नवभिश्च शक्तिभिरमुत्र सहावरणैः समर्चयतु वर्णतनुम्।।
मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः।
विद्येश्वरीति सम्प्रोक्ता भारत्या नवशक्तयः।।
अंगान्यादौ तदनु च कलायुग्मशश्चाष्टवर्गान्,
ब्रह्माण्याद्या शतमखमुखाद्यानथो लोकपालान्।
मुख्यैर्गन्धैः प्रवरकुसुमैर्धूपदीपैर्निवेद्यै-
वर्णान् जापी यजतु दिनशो भारतीं भक्तिनम्रः।।
ब्रह्माणी माहेशी कौमारी वैष्णवी च वाराही।
इन्द्राणी चामुण्डा समहालक्ष्मीश्च मातरः प्रोक्ताः।। (वही, ७/८-११)

इस प्रकार के वर्ण-कमल और उस पर विराजमान भगवती वाग्देवी की अर्चना करने से साधक में विषादि बाधाओं तथा विभिन्न रोगों को नष्ट करने की शक्ति आ जाती है और वह अकाल मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

अक्षरों के वर्ण (रंग)

आचार्य शंकर के अनुसार अकारादि ५१ अक्षरों में से सूर्यात्मक २५ स्पर्श अक्षर स्वर्ण वर्ण के, चन्द्रात्मक अकारादि १६ स्वर रजत वर्ण के तथा अग्न्यात्मक

यकारादि १० व्यापक वर्ण ताम्रवर्ण के हैं। इन तीनों धातुओं के १२:१६: तथा१० अंश के मिश्रण से निर्मित 'रुचक' आदि आभूषणों को 'वर्ग' (स्पर्श) स्वर तथा यकारादि वर्णमाला के जप से अभिमन्त्रित करके धारण करने से साधकों की समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं।

वर्गस्वरयाद्यंशाः क्रमेण कलधौतरजतताम्राः स्युः।
इति रचितं रुचकमिदं साधकसर्वार्थदायि स्यात्।। (वही, ७/१२)

उपर्युक्त श्लोक में पठित 'वर्ग' शब्द का तात्पर्य कचटतप वर्ग के स्पर्श वर्णों तथा 'रुचक' का अंगूठी से है।

"वर्गशब्देन स्पर्शग्रहणम्..रुचकमंगुलीयकम्" इति दीपिकायाम्
(वही, ७/१३)

शंकर के अनुसार इस विधि से अभिमन्त्रित जल प्रतिदिन प्रातः पीने के बाद अकारादि वर्णों के अपने मुख से उत्पन्न होकर शास्त्र आदि विभिन्न विद्याओं के रूप में अभिव्यक्त होने की भावना करने वाला जड तथा मूक व्यक्ति भी एक वर्ष के भीतर महाकवि बन जाता है तथा परलोक में महान् सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।

पद्मपाद-वर्णित वर्णकमल उपासना

पद्मपादाचार्य ने वर्णाब्ज में भगवती वर्णेश्वरी की पूजा तथा वर्णमन्त्रों से जल तथा अंगूठी आदि को अभिमन्त्रित करने की विधि का उल्लेख विस्तार किया है। उनके अनुसार वर्णाब्ज में वर्णेश्वरी की उपासना में पहले साधक पूर्वोक्त न्यासादि द्वारा अपने में देवत्व की भावना करता है। तदनन्तर वह वर्ण-कमल को अपनी अंजलि में कल्पित करता है। फिर संकल्पित वर्णाब्जवाली अंजलि में जलपात्र धारण करके—

ऐं क्लीं सौः अः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, अः सौः क्लीं ऐं,
ऐं क्लीं सौः आः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, आः सौः क्लीं ऐं,
ऐं क्लीं सौः इः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, इः सौं क्लीं ऐं,
ऐं क्लीं सौः ईः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, ईः सौः क्लीं ऐं,
ऐं क्लीं सौः उः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, ऊः सौं क्लीं ऐं

आदि अनुलोम क्रम से क्षकार पर्यन्त विसर्ग युक्त वर्णों का जप पूर्ण करना चाहिये।

इसके बाद विलोम क्रम से क्ष से लेकर अ तक वर्णों का अनुस्वार युक्त निम्न विधि से

ऐं क्लीं सौः क्षं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, क्षं सौं क्लीं ऐं,
ऐं क्लीं सौः ळं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा, ळं सौं क्लीं ऐं.....

जप क्रम से अकार पर्यन्त करना चाहिये।

इसके पश्चात् अनुलोम क्रम से अकार से क्षकार तक बिन्दु तथा विसर्ग दोंनों से युक्त—

'ऐं क्लीं सौः अंः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, अंः सौः क्लीं ऐं' आदि तथा पुनः विलोम क्रम में

'ऐं क्लीं सौं क्षंः वद वद वाग्वादिनी स्वाहा, क्षंः सौः क्लीं ऐं' क्रम से अकार पर्यन्त कुल तीन बार (सबिन्दु, सविसर्ग तथा बिन्दु-विसर्ग से युक्त) जप से कलश के जल को अभिमन्त्रित करना चाहिये।

पद्मपाद द्वारा बताई गयी विधि के अनुसार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा तथा सहस्रार चक्र में क्रमशः चार, छह, दस, बारह, सोलह तथा दो पंखुडियों वाले पद्म की भावना करते हुए पंखुड़ियों में वर्णेश्वरी के बिन्दु सहित मातृकामय शरीर को वादि (वं शं षं सं), बादि (बं भं मं यं रं लं), डादि (डं ढं णं मं थं दं धं नं पं फं), कादि (कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं), आदि (अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः) तथा हादि (हं क्षं) वर्णों की स्थापना करके इन्हें एक प्रज्ज्वलित दीपशिखा की भांति प्रकाशित होते हुए चिन्तन करना चाहिये। फिर, उक्त अभिमन्त्रित जल को दो बार पीते हुए भावना करनी चाहिये कि सभी मातृकाएं हमारे (साधक के) मुख में उत्पन्न होती हुई शास्त्रादि के रूप में बाहर निकल रही हैं। पद्मपाद के अनुसार यह साधना वर्णों के सप्तवर्ग (अकचटतपय), त्रिवर्ग (स्वर, स्पर्श और व्यापक) एवं एक वर्ग (अ से क्ष तक) के जप के रूप में तीन प्रकार से की जा सकती है। उनके अनुसार वर्णाब्ज पर विराजमान भगवती मातृका सरस्वती की इस प्रकार की उपासना से उपासक की समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं।

"अयमत्र प्रयोगक्रमः। स्वयं देवताविग्रहो भूत्वा। लिपिपद्मे हस्ते संकल्प्य। तस्मिन् जलमादाय। ऐं क्लीं सौः अः वद वद वाग्वादिनि स्वाहा अः सौः क्लीं ऐं एवं क्षकारान्तं जपित्वा। क्षाद्यकारान्तमेव

सबिन्दुकं जपित्वा। एवमेव सबिन्दुविसर्गम् अकारादिक्षान्तं जपित्वा पिबन्। मूलाधाराद्याधारेषु च तुःषड्दशद्वादशषोडशद्विदलपद्मेषु वर्णानां वादि बादि-डादि कादि आदि हादीनां दीपशिखावद्व्याप्तिं धयायेत्। पुनरप्येवं द्विवारं पिबन् वर्णानामास्यान्तरम् उद्गमनम् आस्याच्छास्त्राद्याकारेण निर्गमनं च ध्यायेत्। सप्तव्यैकवर्गैर्वा त्रिवार-जप इति"। (द्रष्टव्य—वही, ७/१३ पर विवरण)

मातृकाओं के कुछ प्रयोग

ब्राह्मी-वचा क्वाथ

मणिमन्त्रौषधियों के अद्भुत प्रभावों के प्रति विश्वास और आस्था रखने वाले आचार्य शंकर ने मातृकामन्त्रों से अभिमन्त्रित विभिन्न औषधियों एवं रत्नादिकों के उपयोग से प्राप्त होने वाली सिद्धियों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार ब्राह्मी के रस, वचा तथा दूध के साथ पकाये गये घी का क्वाथ बनाकर उसे वर्णमाला मन्त्र से १० हजार बार अभिमन्त्रित कर प्रतिदिन चाटने से वर्ष भर में ही व्यक्ति कवि हो जाता है।

कमलोद्भवरसेन वचसा पयसा च पक्वमथ सर्पिरपि।
अयुताभिजप्तममुना दिनशो लिहतां कवि र्भवति वत्सरतः।।

(वही, ७/१४)

दीपिकाकार ने शंकर के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इस प्रयोग में 'वचा' कल्क के रूप में विवक्षित है। दुग्ध सहित ब्राह्मी रस अथवा वचा की पिष्टी को दूध के साथ प्रयोग में लाना चाहिये।

"इह वचा कल्कत्वेन विवक्षिता। ब्राह्मीरसं पयोयुक्तं
वचापंकं वा पयोयुक्तं प्रतिदिनमयुतसंख्यं विभज्य जप्त्वा पिबेत्"।

(७/१४ पर दीपिका)

वर्णौषधियां

आचार्य शंकर के अनुसार परावाक् से उत्पन्न उक्त ५० वर्णों से ही १२ राशियों और बारह राशियों से सत्ताइस नक्षत्रों की उत्पत्ति हुई है। इन ५० वर्णों का सम्बन्ध चन्दन आदि ५० वर्णौषधियों तथा नक्षत्रों का सम्बन्ध कारस्करादि २७ नक्षत्र वृक्षों से है। इन वर्णौषधियों के नाम हैं—चन्दन, कुचन्दन (लाल चन्दन), अगुरु, कपूर, उषीर, रोगजल, घुसृण, कल्लोल, जाती, मासी, मुरा,

कच्चूर, ग्रन्थि, रोचिनी, पत्र, पिप्पल, बिल्व, गुहा (वर्चिल), अरुणतृण, लवंग, कुम्भी, गजवदनी, गूलर, काश्मरिका, भू-कमल, दरपुष्पी, मयूरशिखा, प्लक्ष, अग्निमन्थ, सिंही, कुशा, दर्भ, कृष्णपुष्पी, हरपुष्पी, रोहिण, लुण्डक, बृहती, पाटल, चित्रा, तुलसी, अपामार्ग, शतमूली लता, भृंगराज, विष्णुकान्ता, मुसली, अंजलिनी, दूर्वा, श्रीदेवी, सहा, लक्ष्मी तथा सदाभद्रा। (वही, ३/५३-५६)

वर्णौषधि क्वाथ का प्रयोग

उक्त ५० वर्णौषधियों का क्वाथ कलश में भर कर उसे वर्णमन्त्र से एक हजार बार अभिमन्त्रित कर उसका एक मास तक जिस भी व्यक्ति द्वारा सेवन या अभिसिंचन किया जाय, वह मेधावी, लक्ष्मीवान्, दीर्घायु, महान् कवि तथा सर्वप्रिय हो जाता है। इस कल्क का सेवन करने से बन्ध्या स्त्री भी महान् गुणवान् एवं पुत्र को जन्म देती है।

वर्णौषध्या श्रिताभिः कलशममलधीरद्भिरापूर्य नूनं,
प्रातस्तेनाऽभिषिंचेद् दशशतपरिजप्तेन यं वापि मासम्।
स स्यान्मेधेन्दिरायु प्रशमकवियशो विश्वसंवादयुक्तो
नारी बन्ध्यापि नानागुणगणनिलयं पुत्रवर्यं प्रसूते।। (वही, ७/१५)

पद्मपादाचार्य के अनुसार वर्णमन्त्र के साथ मेधा के लिये ह्लीं, धन के लिये श्रीं, आयुष् के लिये जुं (जुं सः योग इति मृत्युंजयोपादानम् इति दीपिकायां), शान्ति के लिये ओम्, कवित्व के लिये ऐं तथा यश-प्राप्ति के लिये हसौं या सोऽ-हम्, विश्व मैत्री के लिये ह्रीं तथा नाना गुणसम्पन्न पुत्र-प्राप्ति के लिये 'ह्लीं श्रीं जुं ओं ह्सौ तथा ह्रीं' इन सभी बीजमन्त्रों का एक साथ योग किया जाना चाहिये।

"मेधाकामस्य ह्लीर्योगः, इन्दिराकामस्य तद्योगः, आयुषि जुंसंयोगः, प्रशमे प्रणवयोगः, कवित्वे वाग्भवयोगः, यशसि अजपायोगः, विश्वसंवादे शक्तियोगः नानागुणाश्रयपुत्रकामे सर्वयोगः इति' विवरणे। 'जुंसः योग इति मृत्युंजयोपादनमिति" दीपिकायाम्।

त्रिलौहमुद्रिका प्रयोग

पद्मपादाचार्य के अनुसार विभिन्न कामनाओं की प्राप्ति के लिये रविवार को वर्ण औषधियों से विपाचित जल से भरे नौ कलशों में से एक को बीच में तथा अन्य आठ को पूर्व आदि आठ दिशाओं में स्थापित करना चाहिये। इसके बाद मोती, माणिक्य, वैडूर्य, गोमेद, हीरा, विद्रुम, पुखराज, मरकत तथा नीलम

इन नौ रत्नों को क्रमशः एक-एक कलश में एक-एक रत्न डाल कर मध्यवर्ती कलश में 'ह्लीः श्रीं जुं सं ओं ऐं ह्सौः ह्रीं' इन बीजमन्त्रों से वर्णेश्वरी का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में स्थापित आठ कलशों में क्रमशः उक्त ७ बीज मन्त्रों में से क्रमशः एक-एक से व्यापिनी, पालिनी, वाचिनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी तथा हासिनी नामक ७ शक्तियों की तथा दुर्गा बीज 'दुं' से आठवीं शक्ति शान्तिनी की पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये। कलश-पूजा होम सहित की जानी चाहिये

> "अथवा भानुवारे मध्यप्रागादि दिक्षु नवकलशान् मुक्तामाणिक्यवैडूर्यगोमेदवज्रविद्रुमपुष्परागमरकतनीलरत्नयुतान् सम्पूज्याभिषिंचेत्। तत्र मध्ये सर्वैः बीजै देवीं संपूज्य। दलकुम्भेषु ह्लीः इत्यादिभिःव्यापिन्याद्याः पूज्याः। शान्तिन्या दुर्गाबीजेन पूजा त्रिलोहमुद्रिका नवरत्नमुद्रिका वा कलितसंगता कार्या। कलशजपपूजा होमसहिता"।
>
> (वही, ७/१५ पर विवरण)

त्रिलौह मुद्रा धारण का फल

इस पूजा में त्रिलौह अर्थात् स्वर्ण, रजत तथा ताम्र धातुओं को मिला कर उनसे निर्मित और (या) नौ रत्नों से जडित अंगूठियां भी रखी जानी चाहिये। फिर अपने जन्म नक्षत्र, राशि तथा राशि के स्वामी नवग्रहों के अनुकूल अंगूठी धारण करनी चाहिये। इस प्रकार अभिमन्त्रित अंगूठी धारण करने से ग्रहादि बाधाएं नष्ट होकर साधक की कामनाएं पूर्ण होती हैं। प्रयोगक्रमदीपिका के अनुसार सुवर्ण, रजत तथा ताम्र से निर्मित अंगूठी (ताबीज, कंकण) आदि धारण करने से राक्षस (भूतप्रेतादि), सामान्य प्रसारी रोग, विषबाधा, ज्वर, सर्पभय, चौरभय, जंगली पशुओं से उत्पन्न भय आदि से रक्षा तथा युद्धादि विवाद में विजय प्राप्त होती है।

> "इयं रक्षःक्षुद्ररोगविषज्वरविनाशिनी। व्यालचौरमृगादिभ्यो रक्षां कुर्यात् विशेषतः। युद्धे विजयमाप्नोति धारयन् मनुजेश्वरः"।
>
> (वही, ७/१२ पर दीपिका)

वर्ण, ग्रह एवं रत्न

आचार्य शंकर की मान्यता है कि मणि, मन्त्र और औषधियों का प्रभाव मानव की बौद्धिक चेतना की सीमा से परे है—'लोकैश्चिन्त्यो न खलु मणिमन्त्रौ-

षधीनां प्रभावः।' मणि का तात्पर्य उक्त नवरत्नों से है। पूजा विशेष में नवग्रह न्यास के बाद सप्तग्रह न्यास और मण्डलत्रय न्यास भी सम्पादित किया जाता है। पीछे लिखा जा चुका है कि आचार्य शंकर के अनुसार ग्रह-नक्षत्र तथा रत्नादिकों की उत्पत्ति अकारादि वर्णों से हुई है। शंकर ने नवग्रहों का उल्लेख केतु, राहु, शनि, बृहस्पति, बुध, शुक्र, मंगल, सोम तथा सूर्य के क्रम से किया है। मरकत, गोमेद, नीलम, विद्रुम, वज्र (हीरा), पुखराज, वैडूर्य, मोती तथा माणिक्य नामक नौ रत्नों को क्रमशः केतु आदि ग्रहों का रत्न माना है। इसके साथ ही उन्होंने विपरीत क्रम में क्षवर्ग, षवर्ग, मवर्ग, नवर्ग, णवर्ग, ञवर्ग तथा ङवर्ग के पांच-पांच अक्षरों एवं सोलह स्वरों के आठ-आठ अक्षरों वाले दो वर्गों को मिलाकर वर्णों को कुल ९ वर्गों में विभाजित कर क्षवर्गादि क्रम से इन्हें नौ ग्रहों से सम्बन्धित माना है। शंकर ने इन नौ वर्ग के वर्णों के रंग बताते हुए कहा है कि वर्णों के रंग अपने से सम्बन्धित रत्नों के रंगों के समान ही हैं।

क्षाद्यास्ते सप्तवर्गा मरकतपशुमेदाह्वनीलाभ्रवर्णाः,
भूयः स्युर्विद्रुमाभाः कुलिशसमरुचः पुष्पवैदूर्यभासः।
सर्वे ते पंचशोऽभिस्रवदमृतमया व्यापकस्पर्शसंज्ञाः
मुक्तामाणिक्यरूपाः सुमतिभिरुदिताश्चाऽष्टशः स्युः स्वराख्याः।।
एतानि केतोरमृताकरारेर्मन्दस्य जीवस्य च सोमजस्य।
शुक्रारसोमांशुमतां क्रमेण नवैव रत्नानि विदुर्नवानाम्।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ८/५-६)

व्यक्ति जिस नक्षत्र में जन्म लेता है, उसका वर्ण या अक्षर, उसकी राशि, उसकी राशि का स्वामी ग्रह, उस ग्रह से सम्बन्धित रत्न, उसका नक्षत्र वृक्ष तथा वर्ण औषधियां परस्पर सम्बद्ध होती हैं। इनके साथ व्यक्ति के जीवन के तन्तु जुड़े होते हैं। इन्हें समझ कर अनुकूल ग्रहादिकों के साथ समुचित सम्बन्ध रखने से व्यक्ति के जीवन की बाधाएं दूर होती हैं तथा वह अभिलाषा के अनुरूप भौतिक तथा आध्यात्मिक सफलताएं प्राप्त करता है।

इस सम्बन्ध में जहां तक वर्णों, नक्षत्रों, राशियों, ग्रहों और उनसे सम्बद्ध नौ रत्नों का सम्बन्ध है आचार्य शंकर की मान्यताएं आजकल प्रचलित मान्यताओं से कुछ भिन्न हैं। यहां प्रश्न रत्नों का है। अतः इस बारे में ज्ञातव्य यह है कि आचार्य शंकर केतु, राहु, शनि, बृहस्पति, बुध, शुक्र, मंगल, चन्द्र तथा सूर्य इन

नौ ग्रहों के रत्न क्रमशः मरकत (पन्ना), गोमेद, नीलम, विद्रुम, वज्र (हीरा), पुष्पराग (पुखराज), वैदूर्य (विडूर), मुक्ता (मोती) तथा माणिक्य (रूबी) माना है। किन्तु, आज प्रचलित मान्यता के अनुसार सूर्य का रत्न माणिक्य, सोम का मुक्ता, मंगल का विद्रुम या मूंगा, बुध का मरकत (पन्ना), बृहस्पति का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नीलम, राहु का गोमेद तथा केतु का लहसुनिया माना जाता है। परा शक्ति के परम उपासक एवं निर्भ्रान्त ज्ञानसम्पन्न आचार्य शंकर ने केतु का रत्न पन्ना, बृहस्पति का विद्रुम या मूंगा, बुध का हीरा, शुक्र का पुखराज और मंगल का वैडूर्य माना है, यह अधिक तार्किक एवं विश्वसनीय है, यद्यपि प्रचलित मान्यता को अपनाने में कोई दोष नहीं। शेष ग्रहों और उनके रत्नों में कोई अन्तर नहीं है।

अग्नि-सोम बीज के साथ मातृका-हवन

समस्त रोगों से मुक्ति के लिये आचार्य शंकर ने मातृका सरस्वती का एक अन्य प्रयोग भी बताया है। उनके अनुसार मूलाधार चक्र के त्रिकोण के मध्य शक्ति का निवास है। साधक को भावना करनी चाहिये कि इस शक्ति-बिन्दु से ज्योति की एक धारा सहस्रार में स्थित चन्द्रमा की ओर उठ कर उसे ग्रसित (व्याप्त) कर रही है। साधक को चाहिये कि वह मूलाधार स्थित इस ज्योति-धारा के अग्रभाग में अग्नि बीज 'रं' तथा सोम बीज 'वं' से युक्त क्षकारादि अकारान्त वर्णों की आहुति 'ओं ह्रीं क्ष्रं क्ष्वं नमः, ओं ह्रीं ह्रं ळ्रं वं नमः ओं ह्रीं ह्रं ह्वं नमः, ओं ह्री स्रं स्वं नमः आदि विलोम क्रम से अकार पर्यन्त दे। इस प्रकार अग्नि तथा सोम बीज के साथ मातृकाओं की आहुति देने वाला साधक समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है।

आधारोद्यच्छक्तिबिन्दूत्थिताया वक्त्रे मूर्धेन्दुं ग्रसन्त्याः प्रभायाः।
क्षाद्यान्तार्णान् पातयेद् वह्निसोमप्रोतान्मन्त्री मुच्यते रोगजातैः।।

(वही, ७/१६)

मातृका सरस्वती की उपासना का फल

शंकर के अनुसार जो साधक उपर्युक्त विधि से मातृका सरस्वती के न्यास, जप, आहुति, अर्चना तथा ध्यानादि द्वारा भगवती भारती की उपासना करता है, वह शीघ्र ही कवि तथा धनवान बन जाता है। वह विषादि बाधाओं, वृद्धावस्था, अकालमृत्यु आदि भव रोगों से भी मुक्त हो जाता है।

विन्यासैरथ सजपैर्हुतार्चनाद्यैर्ध्यानेन प्रभजति भारतीं नरो यः।
स श्रीमान् पुनरचिरेण काव्यकर्ताक्ष्वेलादीन् जयति जरापमृत्युरोगैः।।

(ही, ७/१७)

मातृकादि न्यास के देवता

आचार्य शंकर ने मातृका न्यास के सन्दर्भ में 'विन्यासैः' शब्द का प्रयोग किया है। इसके सन्दर्भ में पद्मपाद का कहना है कि 'विन्यासैः' पद का तात्पर्य शुद्ध, सविसर्ग, सबिन्दुविसर्ग, सबिन्दु, सकल, केशवादिसहित, श्रीकण्ठादियुक्त, सशक्तिकमलामार, समारकमलाशक्ति, सशक्ति, सकमला तथा समार आदि विविध प्रकार के वर्णन्यासों से है। इनमें से शुद्धन्यास में अंगन्यासादि मातृकान्यासादि की तरह ही होंगे। इस साधना की देवता सरस्वती हैं। सविसर्गन्यास में अंगन्यासादि विसर्गान्त किये जाते हैं। सविसर्ग वर्णन्यास की देवता 'सृष्टिसरस्वती' हैं। ध्यानपूजनादि पूर्वोक्त ही हैं। बिन्दुविसर्ग न्यास की देवता 'स्थितिसरस्वती' हैं। ध्यान में किंचित् भेद है। इस न्यास में वर, अक्षमाला, मृग तथा पुस्तकधारी देव के ध्यान के साथ उसके पार्श्व में पुस्तक तथा अक्षमाला धारिणी भगवती सरस्वती का ध्यान किया जाता है। सबिन्दुन्यास की देवता रक्तवर्णा अक्षमाला, टंक, मृग तथा पुस्तकधारिणी 'संहारसरस्वती' हैं।

कलान्यास के ऋषि प्रजापति, छन्दस् गायत्री, देवता 'कला सरस्वती' हैं। छह ह्रस्व तथा छह दीर्घस्वर वर्णों के मध्य ओंकार द्वारा अंगन्यास किया जाता है। कला न्यास में मुक्ता, विद्युत्, मेध, स्फटिक तथा जपापुष्प की आभा वाले पांच मुखों वाली, पद्म, चक्र, शूल, मृग, अक्षसूत्र, पुस्तक, टंक, कपाल, कलश तथा शंखधारिणी भगवती सरस्वती का ध्यान किया जाता है। केशवादिसहित वर्णन्यास के ऋषि प्रजापति, छन्दस् गायत्री तथा देवता अर्धलक्ष्मीनारायण हैं। इसी प्रकार श्रीकण्ठादियुक्त न्यास के ऋषि अम्बरीश, छन्दस् गायत्री तथा देवता अर्धनारीश्वर हैं। शक्तिकमलामारयुत वर्णन्यास के ऋष्यादि शक्ति (ह्रीं) के ही हैं। समारकमलाशक्तिन्यास के ऋष्यादिक क्रमशः सम्मोहन, गायत्री एवं जगज्जननी हैं। सशक्ति न्यास में ऋष्यादि शक्ति के ही तथा सश्रीन्यास में श्रीबीज के ही ऋष्यादिक हैं। समार न्यास में ऋष्यादिक कामबीज 'क्लीं' के ही हैं।

(द्रष्टव्य-७/१७ पर विवरण)

पद्मपाद की मान्यता है कि वर्णन्यास के मन्त्रों में केशवादि का योग या पुट दिया जा सकता है। केशवादि से पुटित करने पर इन मन्त्रों के फलों में भिन्नता

और विविधता लायी जा सकती है। उनके अनुसार मन्त्रों में केशवादि एवं श्रीबीज के योग का फल श्री अर्थात् लक्ष्मी की प्राप्ति है तथा कलाओं के योग का फल कवित्व की प्राप्ति है। इसी प्रकार श्रीकण्ठादि के योग से ज्वरादि, वृद्धता, अपमृत्यु तथा रोगादि पर विजय प्राप्त होती है।

"केशवादि योगे श्रीबीजयोगे च श्रीरेव फलम्। कलायोगे काव्य-कर्तृत्वम्। श्रीकण्ठादियोगे क्ष्वेलादिजयः। जरामृत्युरोगादिजयोऽन्येषाम्। सर्वं सर्वत्र वा"। (वही, ७/१६ पर विवरण)

कलादि नाम एवं मन्त्रोद्धार

ओंकार की अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नादादि से उत्पन्न जिन ५१ कलाओं और उनसे सम्बन्धित अकारादि वर्णों, वैष्णव एवं शैव शक्तियों और मूर्तियों के जिन नामों का उल्लेख किया गया है, वे न्यासविधि में तो काम आती ही हैं, साधकों द्वारा मन्त्रों के उद्धार की प्रक्रिया में भी कलाओं, मूर्तियों अथवा शक्तियों के नामों के द्वारा उन-उन वर्णों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या आदि कलानामों, श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म आदि मूर्तिनामों के स्थान पर अ, आ, इ आदि वर्णों की स्थिति मानकर मन्त्रोद्धार किया जाता है।

मन्त्रोद्धारविधानेन वर्णव्यत्यासक्लृप्तिरुद्दिष्टा।
आभिः श्रीकण्ठादिप्रोक्तैर्वा नामभिर्वा विशेषज्ञैः।। (वही, ७/२०)

इस प्रकार देवताओं के नामों के स्थान पर उनके द्वारा अधिष्ठित वर्णों और वर्णों के स्थान पर वर्णों के अधिष्ठात्री देवताओं के नामों का व्यत्यास या विनिमय किया जाता है। मन्त्रोद्धार अर्थात् मन्त्रों के स्वरूप के निर्वचन में वर्णों या शब्दों का स्पष्ट उल्लेख भी किया जाता है। जैसे, वर्णों के स्थान पर नामों का प्रयोग—

तारो मायाऽमरेशोऽद्रिपीठो बिन्दुसमन्वितः ।
स एव च विसर्गान्तो गायै नत्यन्तिको मनुः ।। (वही, १४/२)

इस श्लोक में 'तार' नाम ओम् के लिये, 'माया' ह्री के लिये, 'बिन्दुसमन्वित अद्रिपीठ-अमरेश' 'दुं' के लिये तथा 'गायै' पद इसी शब्द के लिये प्रयुक्त हैं। इसी प्रकार अ, आ, इ, ई, उ तथा ऊ आदि स्वर वर्णों के लिये श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति तथा अमरेश्वर आदि नामों का भी प्रयोग मन्त्रों में किया जाता है।

श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः.. (वही, ३/३६)

न्यास एवं मन्त्रोद्धार आदि में इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिये। उदाहरण के लिये कलान्यास में 'निवृत्यै नमः' के स्थान पर 'अं नमः' या 'अं नमः' के स्थान पर 'निवृत्यै नमः' या 'श्रीकण्ठाय नमः' आदि का प्रयोग प्रसंगानुसार किया जाना चाहिये। वर्णाब्ज की रचना के समय वर्णाब्ज यन्त्र में 'अं आं इं ईं' आदि ही लिखा जाना चाहिये, लेकिन, अर्चना में इन वर्णों के लिये 'ओं निवृत्यै नमः, ओं प्रतिष्ठायै नमः' ..आदि ही बोला जाना चाहिये।

इसी प्रकार वैष्णव साधना के अष्टाक्षर मन्त्र—

"प्रणवहृदयनारावर्णतोऽन्ते यणार्णौं,
मपर इति समुद्दिष्टोऽयमिष्टार्थदायी"।

श्लोक में 'प्रणव' शब्द ओम् के लिये, हृदय शब्द नमः के लिये, 'नारा', 'यणा' तथा 'य' वर्ण अपने स्वरूप में ही प्रयुक्त हैं। इन सबके मिलने पर 'ओं नमो नारायणाय' रूपी अष्टाक्षर महामन्त्र बनता है। इस मन्त्र से उपलक्षित विशिष्ट मूर्ति वाले भगवान् विष्णु का स्मरण करके पहले केशवादि मूर्तियों और अकारादि वर्णों का न्यास ललाट से लेकर हृदयादि-आनन पर्यन्त करना चाहिये। इसी प्रकार शैव साधना में श्रीकण्ठादि मूर्तियों के न्यास में बीजयुक्त वर्णों का प्रयोग तथा य से लेकर ह पर्यन्त वर्णों का न्यास त्वचा आदि सात धातुओं के नामों के योग के साथ करना चाहिये।

रुद्रादीन् शक्तियुतान् न्यसेद् याद्यांस्त्वगादिसप्तधातुयुतान्।
श्रीकण्ठादौ विद्वान् वर्णान् प्राग्बीजसंयुतांश्चापि।। (वही, ७/२२)

विवरण के अनुसार श्रीकण्ठादिमूर्तियों के न्यास में उनके वर्णों के प्रारंभ में पंचाक्षरी विद्या 'श्रीं ह्रीं क्लीं हंसः सोऽहम्' का योग करना चाहिये। इसके अलावा इस श्लोक में पठित 'प्राग्बीजसंयुतान् वर्णान्' तथा 'अपि' का तात्पर्य यह है कि अकारादि वर्णों के न्यास प्रारम्भ में प्रणव, शक्ति तथा प्रासाद बीजों का योग किया जाना चाहिये ।

"श्रीकण्ठादिमूर्तीनामादौ वर्णानामुपरि पंचाक्षरीविद्यायोगः उक्तः। प्राग्बीजसंयुतानिति वर्णादौ प्रणवशक्तिप्रासादयोगः उक्तः। अपीत्य-जपादियोगः। (इति विवरणे द्रष्टव्यम्)

शक्तियुक्त श्रीकण्ठादि न्यास

आचार्यद्वय द्वारा निदर्शित विधि के अनुसार शक्तियुक्त श्रीकण्ठादि में अकारादि सृष्टिन्यास निम्न प्रकार से किया जायगा—

अं श्रीकण्ठपूर्णोदरीभ्याम् नमः (ललाटे)
आं अनन्तविरजाभ्याम् नमः (मुखवृत्ते)
इं सूक्ष्मशाल्मलीभ्याम् नमः (दक्षनेत्रे) .. आदि क्ष पर्यन्त।

सप्तधातुन्यास

श्रीकण्ठादि न्यास के इसी क्रम से अ से म पर्यन्त न्यासोपरान्त य से क्ष तक के १० वर्णों के न्यास में सात धातुओं का भी उल्लेख किया जायगा । जैसे—

यंत्वगात्मभ्यां कपालिसुमुखेश्वरीभ्याम् नमः (हृदि)
रं-असृगात्मभ्याम् भुजंगेशरेवतीभ्याम् नमः (दक्षांसे)
लं मासात्मभ्याम् पिनाकिमाधवीभ्याम् नमः (ककुदि)
वं मेदसात्मभ्याम् खड्गीशवासवीभ्याम् नमः (वामांसे)
शं अस्थ्यात्मभ्याम् बकवायवीभ्याम् नमः (हृदयादिदक्षकान्ते)
षं मज्जात्मभ्याम् श्वेतरक्षोपधारिणीभ्याम् नमः (हृदयादिवामकरान्ते)
सं शुक्रात्मभ्याम् भृगुसहजाभ्याम् नमः (हृदयादिदक्षपादान्ते)
हं प्राणात्मभ्याम् नकुलीलक्ष्मीभ्याम् नमः (हृदयादिवामपादान्ते)
ळं शक्त्यात्मभ्याम् शिवव्यापिनीभ्याम् नमः (हृदयादि-उदरान्ते)
क्षं क्रोधात्मभ्याम् संवर्तकमायाभ्याम् नमः (हृदादिमुखपर्यन्ते)।

पंचाक्षरी एवं त्र्यक्षरी विद्या न्यास

उक्त वर्णन्यास में पंचाक्षरी तथा त्र्यक्षरी विद्यामन्त्रों का पुट भी दिया जाता है। यह न्यासविधि शैव उपासना की है। वैष्णव उपासना में शक्ति सहित केशवादि न्यास किया जाता है। शंकर ने इस प्रसंग का वर्णन प्रपंचतन्त्रसार के तृतीय पटल में विस्तार से किया है।

शैवोपासना में ध्यान

आचार्य शंकर के अनुसार शैवोपासना की पद्धति में श्रीकण्ठादि न्यास में सिन्दूर तथा स्वर्ण की मिश्रित कान्ति से युक्त, पार्वती एवं शंकर के चिह्नों से

विभूषित पाश, अभय, अक्ष-वलय तथा वरद मुद्रा से युक्त हाथों वाले अर्धनारीश्वर का स्मरण करके पूर्वोक्त न्यास सम्पन्न किये जाने चाहिए।

सिन्दूरकांचनसमोभयभागमर्धनारीश्वरं गिरिसुताहरचिह्नभूषम्।
पाशाभयाक्षवलयेष्टदहस्तमेवं स्मृत्वा न्यसेत्सकलवांछितवस्तुसिद्ध्यै।।

(वही, ७/२३)

इसके अतिरिक्त वर्णन्यास-विधान में समृद्धि प्राप्ति के लिये शक्ति (ह्रीं), शक्ति-श्री (ह्रीं-श्रीं), शक्ति-श्री तथा क्लीं (ह्रीं श्रीं क्लीं), श्री तथा शक्ति (श्रीं-ह्रीं) युक्त अथवा श्री और शक्ति के प्रारम्भ में स्मर बीज (क्लीं श्रीं ह्रीं) लगाकर न्यास किया जाना चाहिये।

शक्त्या शक्तिश्रीभ्यां शक्तिश्रीक्लींभिरन्वितैर्वर्णैः।
श्रीशक्त्या युगस्मराद्यैरथवा विहितः समृद्धये न्यासः।। (वही, ७/२४)

सशक्तिकमलामारादि पंचन्यास

विवरणकार के अनुसार वर्ण न्यास पांच प्रकार का होता है—

१. सशक्तिकमलामार (ह्रीं श्रीं क्लीं),
२. समारकमलाशक्ति (लीं श्रीं ह्री),
३. सशक्तिकमला (ह्रीं श्रीं)
४. सशक्ति (ह्रीं) तथा
५. समार (लीं)।

"सशक्तिकमलामार-समारकमलाशक्ति-सशक्तिकमला-
सशक्ति-समारपंचन्यासभेदयुतये"ति विवरणे।

❋

9

प्रपंचयाग

आचार्य शंकर के अनुसार शक्ति, शक्ति-श्री, शक्ति-श्री-काम, श्री-शक्ति, एवं काम-श्री-शक्ति से युक्त वर्ण न्यास की पांच विधियों द्वारा बाह्यसाधन के बिना 'प्रपंचयाग' नामक एक ऐसा आन्तरिक यज्ञ सम्पन्न किया जाता है, जिससे साधक मोक्ष को प्राप्त करता है। आन्तर साधना में प्रपंचयाग का महत्त्व अनुपमेय है। इसका सम्बन्ध विशेष प्रकार के वर्णन्यास से है। यह एक प्रकार का मानसिक यज्ञ है, इसमें हवनादि बाह्य सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। इस याग द्वारा अकारादि मातृकाओं तथा 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहम्' आदि बीजों का न्यास आत्मन्, अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय आदि में करके परमात्म-तत्त्व तक पहुंचने के मार्ग का निर्वचन आचार्य शंकर ने किया है। परंज्योति तक पहुंचने की प्रक्रिया में इस न्यासविधि का महत्त्व सर्वोपरि है। क्योंकि न्यास के द्वारा ही साधक नरत्व से उठ देवत्व तक पहुंच कर 'देवो भूत्वा देवानप्येति' के अनुसार स्वयं परंज्योति बन जाता है।

अकारादि शुद्ध न्यास, अनुस्वार सहित न्यास, कला न्यास, केशवादि न्यास, श्रीकण्ठादि न्यास, शक्ति न्यास, शक्तिकमला न्यास, शक्तिकमलामार न्यास, कमलाशक्ति न्यास तथा मारशक्तिकमला न्यास इन दस प्रकार के न्यासों में से अन्तिम पांच का सम्बन्ध प्रपंचयाग से है। इन पांच प्रकार के न्यासों द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले 'प्रपंचयाग' से महान् साधक अक्षय्य मोक्षपद को प्राप्त करते हैं।

प्रपंचयाग में सबसे पहले भगवान् गणपति का पूजन किया जाता है।

गणनाथ पूजन-विधि

'प्रपंचयाग' में न्यासों को आरम्भ करने से पूर्व गणपति पटल (प्रपंचतन्त्रसार-१७) में विहित विधि के अनुसार भगवान् गणेश का पूजन अंगों तथा आवरणों सहित किया जाता है। गणपति की अर्चना में उनके मन्त्र बीज (गं) का ४४ बार जप करने के बाद १ बार

> ''गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं
> हवामहे। निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम।
> आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्''। (यजुर्वेद, २३/१९)

इस ऋचा का एक बार पाठ करते हुए इस प्रक्रिया को ४ बार पूर्ण करके मालामन्त्र का जप पूर्ण करना चाहिये।

सचतुश्चत्वारिंशद्वारं बीजं तथैकवारमृचम्।
प्रजपेच्चतुरावृत्या मालापूर्वं मनुं च मन्त्रितमः।। (प्रपंचसारतन्त्र, ७/२७)

सप्तग्रह न्यास

गणपति-पूजन के पश्चात् मातृकाओं के अवर्ग, कवर्गादि सात वर्गों के साथ उनके अधिष्ठाता क्रमशः सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि तथा सोम नामक सात ग्रहों का न्यास मुख, दोनों हाथों, पैरों, उदर तथा वक्षःस्थल में करना चाहिये।

वदने च बाहुपादद्वितये जठरे च वक्षसि यथावत्।
अर्काद्यान् विन्यसेत्क्रमेण मन्त्री स्वरादिवर्गेशान्।। (वही, ७/२८)

पद्मपाद के अनुसार शरीर के सात अंगों में सप्तग्रह न्यास निम्न प्रकार से किया जाता है।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं, लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः
स्वराधिपतये माणिक्यवर्णाय सूर्याय भगवते नमः (मुखे)
कं खं गं घं ङं कवर्गाधिपतये वैडूर्यवर्णाय मंगलाय
भगवते नमः (दक्षिणबाहौ)
चं छं जं झं' चवर्गाधिपतये पुष्परागवर्णाय शुक्राय
भगवते नमः (वामबाहौ)
टं ठं डं ढं णं टवर्गाधिपतये वज्रवर्णाय बुधाय भगवते
नमः (दक्षपादे)
तं थं दं धं नं तवर्गाधिपतये विद्रुमवर्णाय बृहस्पतये
भगवते नमः (वामपादे)
पं फं बं भं मं पवर्गाधिपतये नीलवर्णाय शनैश्चराय
भगवते नमः (उदरे)
यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं यवर्गाधिपतये
मुक्तावर्णाय सोमाय भगवते नमः (वक्षसि)।

"प्राणाग्निहोत्रार्थं सप्तग्रहन्यासस्थानमाह—वदन इति अयमत्र न्यासक्रमः। स्वरस्थाने स्वरान् विन्यस्य। तानुक्त्वा। स्वराधिपतये

सूर्याय भगवते नमः। इति स्वरस्थाने व्यापयेत्। कवर्गं न्यसित्वा। तानुक्त्वा। कवर्गाधिपतये मंगलाय भगवते नमः। चवर्गाधिपतये शुक्राय नमः। इत्यादयो व्यापकमन्त्रा। ज्ञातव्याः"।

(वही, विवरण)

मण्डल न्यास

सप्तग्रह न्यास के उपरान्त मण्डलन्यास करना चाहिये। विवरण के अनुसार मूर्धा से लेकर गले तक स्वर-वर्णों का न्यास सोममण्डल न्यास कहा जाता है। इसी प्रकार स्पर्शवर्णों का उच्चारण करके गले से लेकर नाभिपर्यन्त सूर्यमण्डल न्यास और नाभि से लेकर पादपर्यन्त यकारादि वर्णों का न्यास अग्निमण्डल न्यास कहा जाता है। जैसे, 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः सोममण्डलाय नमः' आदि। इसी प्रकार अ से लेकर ठ पर्यन्त २८ वर्णों का उच्चारण करते हुए मूर्धा से हृदयपर्यन्त न्यास को सोममण्डलन्यास तथा ड से क्ष पर्यन्त २३ वर्णों का उच्चारण करते हुए हृदय से पादपर्यन्त किये गये न्यास को अग्निषोमन्यास तथा अ से क्ष पर्यन्त वर्णों के उच्चारण के साथ 'हंसः पुरुषात्मने नमः' बोलते हुए किये गये सर्वांगन्यास को हंसन्यास या सूर्यमण्डलन्यास कहा जाता है।

"स्वरानुक्त्वा सोममण्डलाय नमः इति मूर्धादिगलपर्यन्तं व्याप्य। स्पर्शानुक्त्वा सूर्यमण्डलाय नम इति गलादिनाभिपर्यन्तं व्याप्य। यादिकमुक्त्वा अग्निमण्डलाय नम इति नाभ्यादिपादान्तं न्यसेदिति मण्डलत्रयन्यासः"।

(वही, विवरण)

मण्डल न्यास की अन्य विधि

मण्डलन्यास की अन्य विधि भी प्रयोग में लायी जाती है। इसके अनुसार 'अ से ठ तक के वर्णों का बिन्दु सहित (अनुस्वार युक्त) उच्चारण करके 'सोममण्डलाय नमः' बोलते हुए मूर्धा से लेकर हृदयपर्यन्त किए गये न्यास को सोममण्डल न्यास, सबिन्दु ड से क्ष तक उच्चारण कर 'अग्निमण्डलाय नमः' बोलते हुए हृदय से पादपर्यन्त किये जाने वाले न्यास को अग्निमण्डल न्यास तथा सबिन्दु अ से क्ष तक वर्णों का उच्चारण करके 'हंसः पुरुषात्मने नमः' बोलते हुए किए जाने वाले न्यास को हंसन्यास या सूर्यमण्डलन्यास कहा जाता है।

"आदिठान्तमुक्त्वा सोममण्डलाय नम इति मूर्धादिहृदयान्तं न्यसित्वा। डादिक्षान्तमुक्त्वाग्निमण्डलायेति हृदादिपादान्तं न्यसेदिति अग्नीषोमन्यासः। आदिक्षान्तमुक्त्वा हंसः पुरुषात्मने नम इति व्यापकत्वेन हंसन्यासः"।

(वही, विवरण)

इन न्यासों में पहले नवग्रहन्यास, फिर मण्डलत्रय न्यास और तब सप्तग्रह तथा मण्डलत्रय न्यास करना चाहिये।

"अतः प्रथमं नवग्रहमण्डलत्रयादिन्यासं
कृत्वा सप्तग्रहमण्डलत्रयादिन्यासः कर्तव्यः"।

(वही, ६/२६ पर विवरण)

नवग्रह न्यास

पद्मपाद के अनुसार विलोम क्रम से क्षवर्गादि ॠवर्गान्त नौ वर्ग के वर्णों का उनके रंगों के उल्लेख के साथ शरीर के मूलाधार, लिंगमूल, नाभि, हृदय, गल, लम्बिका, भ्रूमध्य, ललाट तथा ब्रह्मरंध्र में किये जाने वाले न्यास को नवग्रह न्यास कहा जाता है। इन ग्रहों के न्यास के मन्त्रों में साधक की कामना के अनुसार प्रणव, ह्रीं, क्लीं आदि शक्ति बीजों का योग भी विहित है। इस प्रकार प्रपंचयाग में नवग्रहादि न्यासों का स्वरूप निम्न होगा—

ओं क्षं ळं हं सं षं मरकतवर्णाय केतवे भगवते नमः (मूलाधारे)
ओं शं वं लं रं यं गोमेदवर्णाय राहवे भगवते नमः (स्वाधिष्ठाने)
ओं मं भं बं फं पं नीलवर्णाय शनैश्चराय भगवते नमः (मणिपूरे)
ओं नं धं दं थं तं विद्रुमवर्णाय बृहस्पतये भगवते नमः (अनाहते)
ओं णं ढं डं ठं टं वज्रवर्णाय बुधाय भगवते नमः (विशुद्धे)
ओं ञं झं जं छं चं पुष्परागवर्णाय शुक्राय भगवते नमः (आज्ञाचक्रे)
ओं ङं घं गं खं कं वैडूर्यवर्णाय अंगारकाय भगवते नमः (ललाटे)
ओं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं मुक्तावर्णाय सोमाय
भगवते नमः (ब्रह्मरंध्रे)
ओं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं माणिक्यवर्णाय सूर्याय भगवते नमः (सर्वांगे)

मण्डलत्रय न्यास

नवग्रह न्यास के बाद १६ स्वरों से सोममण्डल, २५ स्पर्श वर्णों से

सूर्यमण्डल तथा १० व्यापक वर्णों से अग्निमण्डल न्यास निम्न रूप से किया जाता है—

ओं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं
ओं औं अं अः सोममण्डलाय नमः (मूर्धा से गल पर्यन्त)
ओं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं टं ठं डं ढं णं
तं थं दं धं नं पं फां बं भं मं सूर्यमण्डलाय नमः (गले से नाभि तक)
ओं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अग्निमण्डलाय नमः (नाभि से पादपर्यन्त)।

प्रपंचयाग-मन्त्र

गणपति-अर्चना, नवग्रह, सप्तग्रह एवं तीन मण्डलों का न्यास तथा पूजन सम्पन्न हो जाने के बाद प्रपंचयाग की मुख्य विधि आरम्भ की जाती है। प्रपंचयाग में तार (ओं), शक्ति (ह्रीं), अजपा (हंसः), परमात्मबीज (सोऽहं) तथा अग्निप्रिया (स्वाहा) 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इन पांच मन्त्रों को 'पंचमन्त्र' कहा जाता है। प्रपंचयाग में उक्त पांच मन्त्रों में तीसरे स्थान पर क्रमशः अ से लेकर क्ष पर्यन्त लिपियों को रख, बोल या चिन्तन कर हवन किया जाता है। इस विधि से किया गया याग साधकों के समस्त मनोरथों की पूर्ति करता है।

तारश्च शक्तिरजपा परमात्मबीजं
वह्नेः प्रिया च गदिता इति पंचमन्त्राः।।
एभिस्तृतीयलिपिभिः कथितः प्रपंच-
यागाह्वयो हुतविधिः सकलार्थदायी। (वही, ७/३०)

पंचमन्त्रों द्वारा हवन-विधि

प्रपंचयाग में प्रयुक्त की जाने वाली इस हवन-विधि में उक्त पांच मन्त्रों के तृतीय स्थान पर अकारादि क्षकारान्त वर्णों का योग निम्नानुसार किया जाता है—

'ओम् ह्रीं अं हंसः सोऽहं स्वाहा'
'ओम् ह्रीं आं हंसः सोऽहं स्वाहा'
'ओम् ह्रीं इं हंसः सोऽहं स्वाहा'
'ओम् ह्रीं ईं हंसः सोऽहं स्वाहा'
'ओं ह्रीं उं हंसः सोऽहं स्वाहा'
....
'ओं ह्रीं क्षं हंसः सोऽहं स्वाहा' ।

अष्टाक्षर मन्त्र

इन पांच मन्त्रों की लिपियों (वर्णों) को अलग-अलग कर दिया जाय, तो यही पंचमन्त्र अष्टाक्षर मन्त्र कहलाता है। अष्टाक्षर मन्त्र समस्त जगत्प्रपंच का मूल कारण है।

यदा लिपिविभिन्नोऽयं तदात्माष्टाक्षरः स्मृतः।
एतत्सर्वप्रपंचस्य मूलमष्टाक्षरं स्मृतम्।। (वही, ७/४५)

पंचमन्त्रों के न्यासादि

ऋष्यादि तथा न्यास

प्रपंचयाग के 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इन पांच मन्त्रों के ऋषि परम ब्रह्मा, छन्दस् परम गायत्री तथा देवता परंज्योति हैं।

ब्रह्मा स्यादृषिरस्य च छन्दः परमन्विता च गायत्री।
सकलपदार्थसदर्थपरिपूर्णं देवता परं ज्योतिः।। (वही, ७/३१)

उपर्युक्तानुसार ऋष्यादि न्यास का रूप निम्न होगा—

परं ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि),
परं गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे)
परं ज्योतिषे देवतायै नमः (हृदि),
सोऽहं बीजाय नमः (गुह्ये)
परं ज्योतिषे शक्तये नमः (पादयोः)

षडंगन्यास

प्रपंचयाग के इन मन्त्रों में से 'स्वाहा' शब्द से हृदयन्यास, 'सोऽहं' से शिरोन्यास, 'हंसः' से शिखान्यास, 'ह्रीं' से कवच, 'ओम्' से नेत्रन्यास और 'हरिहर' शब्द से अस्त्र न्यास किया जाता है।

जायाऽग्नेर्हृदयमथो शिरश्च सोऽहं,
हंसात्मा त्वथ च शिखा स्वयं च।
ताराख्यं समुदितमीक्षणं तथाऽस्त्रं
प्रोक्तं स्याद् हरिहरवर्णमंगमेवम् ।। (वही, ७/३२)

इस प्रकार प्रपंचयागमन्त्र में षडंगन्यास निम्न प्रकार से होंगे—

स्वाहा हृदयाय नमः, सोऽहं शिरसे स्वाहा,

हंसः शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुम् ,
ओं नेत्रत्रयाय वौषट्, हरिहर अस्त्राय फट्।

विवरण के अनुसार प्राणाग्निहोत्र (उल्लेख आगे किया जायगा) याग में 'हंसः' शब्द से शिरोन्यास तथा 'सोऽहम्' शब्द से शिखा न्यास किया जाता है, शेष न्यास दोनों यागों में एक जैसे ही होते हैं।

"प्राणाग्निहोत्रे हंसस्य शिरस्त्वमुक्तम्। अथ च शिखेति।
प्राणाग्निहोत्रे सोऽहमित्यस्य शिखात्वम् सूचितम्"। (वही, विवरण)

पंचमन्त्रों के स्वरूप

'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इन पंचमन्त्रों में पहले के दो मन्त्र ओं और ह्रीं मूलमन्त्र हैं। इनमें से प्रथम मन्त्र 'ओम्' में अ, उ, म्, बिन्दु, नाद, शक्ति तथा शान्त एवं 'ह्रीं' में ह्, र्, ई, बिन्दु, नाद, शक्ति तथा शान्त नामक सात-सात मात्राएं हैं।

अत्राऽकारहकाराद्यावाद्यौ शान्तान्तिकौ मनू। (वही, ६/३३)

तृतीय मन्त्र 'हंसः' में हकार, अकार, बिन्दु (अनुस्वार) सकार, अकार एवं विसर्ग (अः) ये छह अक्षर हैं। 'हंसः' को आत्ममन्त्र कहते हैं और इसके उक्त छह वर्ण क्रमशः (श्रोत्र, त्वक्, चक्षुष्, जिह्वा, घ्राण तथा मनस्) नामक छह इन्द्रियों के स्वरूप हैं।

हकारश्चाप्यकारश्च बिन्दुः सर्गी च साक्षरः।
साकारश्चात्ममन्त्रः षडिन्द्रियात्मक उच्यते।। (वही, ७/३३-३४)

इस छह वर्णों वाले आत्ममन्त्र 'हंसः' का न्यास छह ज्ञानेन्द्रियों में निम्न प्रकार से किया जाता है—

ज्ञानेन्द्रिय न्यास

हं श्रोत्रात्मने नमः, अं त्वगात्मने नमः,
अं चक्षुषात्मने नमः, सं जिह्वात्मने नमः,
अं घ्राणात्मने नमः, अः मनसात्मने नमः।

चतुर्थ मन्त्र 'सोऽहं' में सकार, ओकार, हकार, अकार तथा बिन्दु ये पांच वर्ण हैं। पांच अक्षरों वाले मन्त्र सोऽहं के पांचों अक्षर क्रम से मनस्, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त नामक चार करणों तथा आत्मन् के प्रतीक हैं। 'सोऽहं' को परमात्ममन्त्र कहा जाता है।

सकारौकारहकारा बिन्दुः पंचार्णको मनुः।
करणात्मसमायुक्तः परमात्माह्वयो मनुः।। (वही, ७/३४-३५)

प्रपंचयाग विधि में 'सोऽहम्' स्वरूप परमात्म मन्त्र का न्यास उक्त करणों (अन्तःकरणों) तथा आत्मन् के साथ निम्न प्रकार से किया जाता है—

सं मनसात्मने नमः, ओं बुद्ध्यात्मने नमः,
हं अहंकारात्मने नमः, अं चित्तात्मने नमः,
अं (ं) आत्मनात्मने नमः ।

पंचम मन्त्र 'स्वाहा' सकार, वकार, आकार, हकार तथा दीर्घ अकार वाला 'स्वाहा' मन्त्र अग्निजाया मन्त्र कहलाता है। इस मन्त्र के 'स् व् आ ह् आ' वर्णों का सम्बन्ध क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ नामक पांच कर्मेन्द्रियों से है। प्रपंचयाग में इनका न्यास पंच कर्मेन्द्रियों में अवरोह क्रम से किया जाता है।

सवाकारैह्नदीर्घाभ्यां वह्निजायामनुर्मतः।
वागादीन्द्रियसाम्भिन्नः सोऽयं पंचाक्षरात्मकः।
तस्मादेभिः कृतो न्यासः विशेषादवरोहकृत्।। (वही, ७/३५-३६)

स्वाहा का कर्मेन्द्रियों में न्यास

सं वागात्मने नमः, वं पाण्यात्मने नमः,
आं पादात्मने नमः, हं पाय्वात्मने नमः,
आं उपस्थात्मने नमः।

अष्टाक्षर मन्त्र की साधना

ब्रह्मादि का अर्थ

अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' के ऋषि परम ब्रह्मा, छन्द परम गायत्री तथा देवता परंज्योति का निर्वचन करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि ब्रह्मा को 'ब्रह्मा' इसलिये कहा जाता है कि वे बृहत् हैं, वे 'प्रवर' इसलिये हैं कि परमपद को प्रकाशित करते हैं। छन्दस् गायत्री इसलिये है कि वह अपने गायक का त्राण या रक्षा करती है और देवता परंज्योति इसलिये है कि वह स्वयं से भिन्न अन्य सभी ज्योतियों से अतिशायी अर्थात् श्रेष्ठ है।

ब्रह्मा बृहत्तया स्यात्परमपदेन प्रकाशितः प्रवरः।
गायकसन्त्राणतो गायत्रं समुदीरितं छन्दः ।।

परमन्यदतिशयं वा ज्योतिस्तेजो निरूपितेऽन्यद् यत्।
अतिशायि च नितरामिति कथितैवं परंज्योतिः।।

(वही, ७/३७-३८)

मन्त्राक्षरों की निरुक्ति

स्वाहा

अष्टाक्षर मन्त्र में प्रयुक्त सभी वर्ण गहन अर्थ से परिपूर्ण हैं। आचार्य शंकर ने 'ओम् ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इस अष्टाक्षर मन्त्र के आठों वर्णों में निहित इन गहन अर्थों का निर्वचन विलोम क्रम से किया है। उनके अनुसार 'स्वाहा' शब्द के 'स्व' का अर्थ स्वर्ग और साधक की प्रत्यग् आत्मा है। इसी प्रकार 'ह' का अर्थ आहुति तथा गति है। तात्पर्य यह है कि प्रत्यग् आत्मा की गति स्वर्ग रूप परमात्मा तक कराने के कारण इसे 'स्वाहा' कहा जाता है। साधक की प्रत्यगात्मा का अन्तिम गन्तव्य चिदात्मा ही है। चिदात्मा का स्थान 'हृदय' है। अतः 'स्वाहा' का सम्बन्ध (स्वाहा हृदयाय नमः) हृदय के साथ किया जाता है।

स्वेति स्वर्गः स्वेति चात्मा समुक्तो हेत्याहुतिर्हेति विद्याद् गतिं च।
स्वर्गात्मावध्यातता धामशाखा वह्नेर्जाया यत्र हूयेत सर्वम्।।

(वही, ७/३९)

सोऽहम्

'सोऽहम्' मन्त्रांग के 'सः' का अर्थ परम तेजस् रूप परमात्मा है और 'अहम्' का अर्थ आत्मा में उदित मनस् है। 'तत्त्वमसि' महावाक्य का 'तत्' पद का अर्थ 'सकलपदार्थप्रकाशक चिद्' है। यह चिद् 'अहम्' का गन्तव्य है। तात्पर्य यह कि 'अहम्' और 'तत्' की अभेदानुभूति ही सोऽहं का लक्ष्यार्थ है। अंगन्यास में शरीर के सर्वश्रेष्ठ अंग 'शिरस्' के साथ (सोऽहं शिरसे स्वाहा) जोड़ा जाता है।

स इति परिततं परं तु तेजस्त्वहमिति मय्युदिते मनोऽस्य यत्र।
तदिति सकलचित्प्रकाशरूपं कथितमिदं शिरसोऽपि मन्त्रमेवम्।।

(वही, ७/४०)

हंसः

'हंसः' मन्त्रांग का निर्वचन करते हुए शंकर कहते हैं कि 'हं' का अर्थ 'अहम्' है तथा 'सः' का तात्पर्य अनुपमेय, शीतोष्ण रहित सम्पूर्ण पदार्थों का निर्वाण स्थल उपशान्त रूप आत्मा से है। अतः 'अहम् सः' से वाच्य 'जीवात्म-

परमात्मैक्य' ही 'हंसः' का वाच्यार्थ है। इसीलिये 'हंसः' शब्द से शिखामन्त्र (हंसः शिखायै वषट्) का विधान किया गया है।

हमिति प्रकाशितोऽहं स इति च सकलप्रकाशनिर्वाणम्।
अतुलमनुष्णमशीतं यत्तदितीत्थं प्रकाशितेह शिखा।। (वही, ७/४१)

ह्रीं

'ह्रीं' मन्त्रांग का उद्धार करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि 'जो अपने हकार, रेफ तथा ईं गुणों के द्वारा सत्त्व-रजस् तथा तमस् से युक्त स्थावर-जंगम समस्त संसार का प्रतिमथन करके स्वयं में समाहित करके गुणसाम्यरूप अपने बिन्दुमय रूप में ही सतत स्थित रहता है, वही तत्त्व 'ह्रीं' से वाच्य है। अतः 'ह्रीं' पदवाच्य परमात्मा ही कवच मन्त्र (ह्रीं कवचाय हुं) का वाच्यार्थ है।

प्रतिमथ्य गुणत्रयानुबद्धं सकलं स्थावरजंगमाभिपूर्णम्।
स्वगुणै निजबिन्दुसन्ततात्माखिललोकस्थितिवर्ममन्त्र उक्तः।।

(वही, ७/४२)

ओं

अकार, उकार तथा मकाररूपी अपने तीन भेदों द्वारा (अग्नि, सोम तथा सूर्य रूप से) जो इस जगत् के समस्त जीवों और पदार्थों का अनवरत सृजन (पालन और संहार) करता हैं, वही तेजस् रूप 'ओम्' वाच्य परब्रह्म इस अष्टाक्षर मन्त्र का नेत्रत्रय न्यास का वाच्यार्थ (ओं नेत्रत्रयाय वौषट्) कहा गया है।

आद्यैस्त्रिभेदैस्तपनादिकैर्यत् सृजत्यजस्रं जगतोऽस्य भावम्।
तेजस्तदेतन्मनुवर्यकस्य नेत्रत्रयं सन्त उदाहरन्ति।। (वही, ७/४३)

हरिहर

हरण के अर्थ में प्रयुक्त 'हृञ्' धातु से निष्पन्न शब्द 'हरिहर' मन्त्रांग से वाच्य तेजःस्वरूप जो परमात्मा साधकों के समस्त अनिष्टों का हरण करता है, वहीं कवचमन्त्र (हरिहर अस्त्राय फट्) से वाच्य है।

हृंकाराख्यो धातुर्हरणार्थे साधकानभीष्टान्।
संहरतीति यदेतत्तेजोरूपं तदस्त्रमन्त्रः स्यात्।। (वही, ७/४४)

जगन्मूल अष्टाक्षर मन्त्र

ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा इन पंचमन्त्रों के वर्ण-विभाजन से 'ओं, ह्रीं, हं,

सः, सः, हं, स्वां, हां' इन आठ अक्षरों वाला अष्टाक्षर मन्त्र बनता है। शंकर के अनुसार आठ अक्षरों वाला यह मन्त्र समस्त जगत् प्रपंच का मूल है।

यदा लिपिविभिन्नोऽयं तदात्माष्टाक्षरः स्मृतः।
एतत्सर्वप्रपंचस्य मूलमष्टाक्षरं स्मृतम् ।। (वही, ७/४५)

अष्टाक्षर मन्त्र से हवन-विधि

प्रपंचयाग में न्यासादि क्रियाओं को सम्पन्न करने के बाद इन आठ अक्षरों से भी हवन-विधि सम्पन्न की जाती है। अष्टाक्षर मन्त्र से हवन की दो विधियां हैं—पहली वर्णों द्वारा शरीर के मूलाधार चक्र में स्थित अग्निकुण्डों में हयरों आदि अग्निमन्त्रों द्वारा भावना से अग्नि प्रज्ज्वलित करके आहुति देना तथा दूसरी विभिन्न हवनीय द्रव्यों द्वारा बाह्य अग्नि में आहुति देना। पूर्वोक्त मातृका न्यास के साथ ही अष्टाक्षरों का पचास बार न्यास करके अष्टाक्षरों से प्रपंचयाग सम्पन्न करना चाहिये।

प्रपंचयागस्त्वमुना कृतो न्यासविधिर्मतः।
वर्णैर्देहेऽनले द्रव्यैर्विद्याद् हुतविधिं द्विधा।।
मातृकान्यासवत्सार्धं लिपिनाष्टाक्षरेण तु।
नित्यं न्यसेत्संयतात्मा पंचाशद् वारमुत्तमम्।। (वही, ७/४६-४७)

वर्ण हवन द्वारा प्रपंचयाग की प्रथम विधि के सन्दर्भ में पद्मपादाचार्य का कहना है कि 'प्राणाग्निहोत्र तथा प्रपंचयाग दोनों में ऋष्यादिकों का पूर्ववत् विन्यास करके, साधक स्वयं में शक्ति के स्वरूप की भावना करते हुए अष्टाक्षर मन्त्र का आठ बार उच्चारण करके 'हयरोम् ययरोम् रयरों वयरोम् लयरोम्' बोलते हुए मूलाधार चक्र स्थित त्रिकोण के मध्यवर्ती शक्तिबिन्दु के बीच में एक कुण्ड तथा इसके चारों ओर पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशा में एक-एक हवन-कुण्ड की रचना भावना से करे। फिर मूलाधार स्थित त्रिकोण के मध्य स्थित शक्ति-बिन्दु और उसके चारों ओर के कुण्डों में मन्त्र द्वारा भावना से ही अग्नि प्रज्ज्वलित करके क्ष से अ पर्यन्त (विलोम क्रम से) वर्णों का उच्चारण करते हुए उन वर्णों द्वारा अपने शरीर के पैर से लेकर मस्तक पर्यन्त व्याप्त होने की भावना करे। तदनन्तर अपने तन-मनरूपी वर्णमय समस्त संसार को परमामृत स्वरूप परमात्मा में मिलाने की भावना करता हुआ—

ओं ह्री क्षं परं ज्योतिषि जुहोमि सोऽहं हंसः स्वाहा,

ओं ह्रीं ळं परंज्योतिषि जुहोमि सोऽहं हंस स्वाहा,
ओं ह्रीं हं परंज्योतिषि जुहोमि हंसः सोऽहं स्वाहा,
ओं ह्रीं सं परंज्योतिषि जुहोमि हंसः सोऽहं स्वाहा,
ओं ह्रीं षं परंज्योतिषि जुहोमि हंसः सोऽहं स्वाहा।

इन मन्त्रों से क्रमशः मूलाधार में कल्पित मध्य तथा पूर्वादि कुण्डों में क्ष से आ तक वर्णों को दस-दस वर्णों का पांच भाग करके प्रत्येक भाग को विलोम क्रम से उक्त कुण्डों में क्रम से हवन कर 'अकार' को शेष रखे। इसके बाद आं तथा ह्रीं इन दो बीजों से पुनः नवीन शरीर उत्पन्न कर शुद्धन्यास (अकारादि क्षान्त) से उसका सकलीकरण तथा अमृतीकरण करके याग समाप्त करना चाहिये।

(वही, विवरण में विशेष द्रष्टव्य)

ब्रह्माग्नि में वर्ण-हवन

सभी वर्ण (वर्णों से निर्मित शब्द और उन शब्दों के अर्थों द्वारा) पांच ज्ञानेन्द्रियों से सम्बद्ध हैं। अतः आध्यात्मिक-आधिदैवत दूर या पास के जो भी पदार्थ हैं, उन्हें उनके वाचक वर्णों के साथ ही समस्त लोकों में व्याप्त ईश्वरीय तेजस् रूप ब्रह्माग्नि में ब्रह्मार्पण मन्त्र से हवन कर देनी चाहिए। ब्रह्मज्ञानियों द्वारा 'ब्रह्मात्मा (गीता ४/२४) आदि महामन्त्रों से ब्रह्मरूप हवि से ब्रह्मरूपी अग्नि में किया गया हवन 'ब्रह्मार्पण' कहा जाता है।

प्रपंचयागी को चाहिये कि वह मांस, अस्थि तथा मज्जादि से बने हुए अपने विनाशशील शरीर को भी भावना से निर्मल, सर्वव्यापी अक्षरपरमात्मरूपी ब्रह्माग्नि में हवन करके स्वयं को तेजः स्वरूप ब्रह्म की अनुभूति करते हुए ही पूर्वोक्त मन्त्रों का जप, यजन, ध्यान तथा हवन-तर्पणादि सम्पन्न करते हुए 'देवो भूत्वा देवानप्येति' की सूक्ति को सार्थक करे।

पंचज्ञानेन्द्रियाबद्धाः सर्वास्तु लिपयो मताः।
ताभिराराप्तनं सर्वं तत्तदिन्द्रियगोचरम्।।
स्मर्तव्याशेषलोकान्तर्वर्ति यत्तेज ऐश्वरम्।
ब्रह्माग्नौ जुहुयात् तस्मिन् सदा सर्वत्र वर्तिनि।।
ब्रह्मात्माभिर्महामन्त्रैर्ब्रह्मविद्भिः समाहितैः।
ब्रह्माग्नौ ब्रह्महविषा हुतं ब्रह्मार्पणं स्मृतम्।।
एवं वर्णविभेदभिन्नमदृढं मांसास्थि(न्त्र)मज्जावृतं

देहं तत् क्षरमक्षरे सुविशदे सर्वत्र वर्तिन्यथ।
हुत्वा ब्रह्महुताशने विमलधीस्तेजःस्वरूपी स्वयं
भूत्वा सर्वमनून् जपेदभियजेद् ध्यायेत् तथा तर्पयेत्।।

(वही, ७/४८-५१)

दस प्रकार के न्यासों का फल

आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्मयाग में जो अकारादि शुद्धन्यास, बिन्दु अर्थात् अनुस्वार सहित न्यास, कलान्यास, केशवादिन्यास, श्रीकण्ठादिन्यास, शक्ति न्यास, शक्तिकमलान्यास, शक्तिकमलामारन्यास, कमलाशक्तिन्यास तथा मारशक्तिकमला न्यास ये दस प्रकार के न्यास कहे गए हैं, वे सभी साधना में सिद्धि की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं।

शुद्धश्चापि सबिन्दुकस्त्वथ कलायुक्केशवाद्यैर्युतः।
श्रीकण्ठादियुतश्च शक्तिकमलामारैश्च चैकैकशः।
न्यासास्ते दशधापृथङ् निगदिताः स्युर्ब्रह्मयागान्तिकाः।
सर्वे साधकसिद्धिसाधनविधौ संकल्पकल्पद्रुमाः।। (वही, ७/५२)

मोक्षप्रद प्रपंचयाग

उक्त दस प्रकार के न्यासों के सम्पादन से अनेक प्रकार की भौतिक समृद्धियां प्राप्त होती हैं। किन्तु प्रपंचयाग तो प्रपंच अर्थात् संसाररूपी जन्ममरणादि विपत्तियों का यापक (विपत्प्रपंचयापने विलापनं मोक्ष इत्यर्थः इति विवरणे) अर्थात् विनाश करके मोक्ष तक प्रदान करता है। इसी प्रकार प्राणाग्नि-होत्र याग साधकों को परंपद (मोक्ष) तथा इस संसार में समस्त कामनाओं को देने वाला है। तात्पर्य यह है कि ये दोनों ही याग यजनकर्ता के लिए भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं।

प्रपंचयागस्तु विशेषतो विपत्प्रपंचसंसारविशेषयापकः।
परं च नित्यं भजतामयत्नतः परस्य चार्थस्य निवेदकः सदा।।

(वही, ७/५३)

प्रपंचयाग में आहुति संख्या, द्रव्य एवं समिधाएं

प्रपंचयाग जिन द्रव्यों से और जिस प्रकार से किया जाता है, इससे जो भी फल प्राप्त होता है, उनका उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया कि यज्ञ के आरम्भ में पूर्वोक्त विधि से विघ्नविनाशक भगवान् गणपति की पूजा करके उन्हें घृत की

आहुति देनी चाहिये। उसके बाद मातृका के प्रत्येक वर्ण से एक-एक आहुति देकर प्रपंचयाग सम्पन्न करना चाहिये । हवन के लिए पीपल, गूलर, पाकर तथा वट की समिधाओं एवं तिल, सरसों, खीर तथा घी इन आठ द्रव्यों का विधान किया गया है। इन द्रव्यों का उक्त मन्त्रों से जो साधक एक लाख १० हजार, अथवा ५५ हजार, या साढ़े २७ हजार आहुतियां देता है, वह अभिलाषा से भी अधिक भौतिक समृद्धि प्राप्त करता है तथा शरीर छोड़ने के बाद मोक्ष को प्राप्त करता है। शंकर के अनुसार क्षुद्र ज्वर, प्रतिकूल ग्रह, भूत, यक्ष, पिशाच आदि से उत्पन्न बाधाओं को दूर करने के लिये उन बाधाओं की तीव्रता को ध्यान में रख आवश्यकता के अनुसार उक्त मन्त्रों से एक, दो, तीन, चार, सौ अथवा १२ हजार, २४ हजार या ४८ हजार आहुतियां देनी चाहिये।

द्रव्यैर्यथा यैः क्रियते प्रपंचयागक्रिया तानि तथैव सम्यक्।
यास्वप्यवस्थासु च ताश्च कृत्वा प्राप्नोति यत् तत्कथयामि सर्वम्।।
प्रोक्तक्रमेण विघ्नान्तिकमपि हुत्वा घृतेन मन्त्रितमः।
एकावृत्या जुहुयात्प्रपंचयागाह्वयं घृतेन ततः।।
अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षन्यग्रोधसम्भवाः समिधः।
तिलसर्षपदौग्धघृतान्यष्टद्रव्याणि सम्प्रदिष्टानि।।
एतैर्जुहोतिअ(नि) युताधिकलक्षसंख्यं मन्त्री ततोऽर्धमथवापि तदर्धकं यः।
स त्वैहिकीं सकलसिद्धिमवाप्य वांछायोग्यां पदं परतरं च परत्र याति।।
(वही, ७/५४-५७)

विभिन्न प्रयोग

क्षुद्र ज्वरादि से मुक्ति

क्षुद्र ज्वर, प्रतिकूल ग्रह, भूत, यक्ष, राक्षस तथा पिशाचादि अतिमानवीय प्राणियों द्वारा उत्पन्न किये गये विकारों की तीव्रता के अनुपात में एक, दो, तीन, चार, बारह, चौबीस, छियानबे अथवा सौ बार हवन करना चाहिये।

एकद्विकत्रिकचतुष्कशताभिवृत्या
तां तां समीक्ष्य विकृतिं प्रजुहोतु मन्त्री।
क्षुद्रज्वरादिविषमग्रहभूतयक्ष
रक्षःपिशाचजनिते महति प्रकोपे।।
द्वादशसहस्रमथवा तद्विगुणं वा चतुर्गुणं वाथो।
जुहुयात् क्षुद्रग्रह रिपु ज्वरविषमभूतसम्भवे कोपे।। (वही, ७/५८-५६)

विस्मृति आदि से मुक्ति

मन्त्रों का यदि यथार्थ रूप में जप न किया जाये, तो साधक को 'विस्मृति' नामक रोग हो जाता है। इन मन्त्रों के द्वारा एक या दो हजार हवन करने से विस्मृति, अन्यथा-स्मृति और गुरु-देवता आदि के शाप तथा अप्रसन्नता आदि से उत्पन्न विकारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जो साधक उक्त मन्त्रों द्वारा मधुरत्रय से उक्त आठ द्रव्यों का १ लाख हवन करता है, उसकी समृद्धि इतनी बढ़ती है कि उसकी तुलना में देवाधिपति इन्द्र की सम्पत्ति भी तिनके के समान तुच्छ हो जाती है।

अयथाप्रतिपत्ति मन्त्रकाणां प्रजपात् स्यादिह विस्मृतिर्नराणाम्।
शमयेदचिरात् सहस्रवृत्या मतिमान् वस्तुभिरेभिरेव जुह्वन्।
एतैः सहस्रद्वितयाभिवृत्या जुहोति यस्तु क्रमशो यथावत्।
जयेत् क्षणेनैव स विस्मृतिं च सापस्मृतिं शापभवांश्च दोषान्।।

(वही, ७/६०-६१)

अतुल समृद्धि-प्राप्ति

जो साधक मधुरत्रय से सिक्त पीपल, गूलर, पाकर तथा वट की समिधाओं एवं तिल, सरसों, खीर तथा घी इन आठ द्रव्यों से १ लाख हवन करता है उसकी सिद्धि की वृद्धि की तुलना में इन्द्र की सम्पदा भी तृण के समान प्रतीत होती है।

मधुरत्रयावसिक्तैरेतैर्लक्षं जुहोति यो मन्त्री।
तस्य सुराधिपविभवो महद्वृद्ध्या तृणलवायते न चिरात्।। (वही, ७/६२)

वशीकरण

मधुरत्रय से युक्त पूर्वोक्त आठ द्रव्यों से १ लाख या ५० हजार हवन करने से तीन वर्ष या इससे भी पहले सभी को वश में किया जा सकता है। वशीकरण आदि प्रयोगों के लिए पूर्वोक्त आठ द्रव्यों से उद्देश्य की गुरुता या लाघवता अर्थात् कार्य के महत्त्व के अनुरूप उचित संख्या में हवन करना चाहिये।

लक्षं तदर्धकं वा मधुरत्रयसंयुतैर्हुनेदेतैः।
अव्दत्रयाऽदर्वाक् त्रिभुवनमखिलं वशीकुरुते।।
वश्यादिकानि कर्माण्यभिकांक्षन्नेभिरेव सद्रव्यैः।
जुहुयाच्च कार्यगुरुतालाघवमभिवीक्ष्य योग्यपरिमाणम्।।

(वही, ७/६३-६४)

भिन्न उद्देश्य भिन्न हवन-द्रव्य

पापों की निवृत्ति के लिए तिलों से, धन की प्राप्ति के लिये कमलों से, पुष्टि के लिए खीर से, कीर्ति के लिये घी से, वशीकरण के लिये जातीपुष्प और नमक से एक-एक लाख आहुति देनी चाहिये।

लक्षं तिलैर्वाजुहुयादघानां शान्त्यै श्रियेऽथो नलिनैर्यथावत्।
दौग्धेन पुष्ट्यै यशसे घृतेन वश्याय जातीकुसुमैश्च लोणैः।।
(वही, ७/६५)

वशीकरण के लिये पुत्तलिका-प्रयोग

त्रिमधुर से युक्त शाली नामक धान के चूर्ण अर्थात् आटे से अपने साध्य (जिसे वश में करना है) की आकृति बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर, पूर्वोक्त न्यासविधि आदि सम्पन्न करके उसे पचास खण्डों में विभाजित कर अष्टमी से चतुर्दशी ७ रातों तक विधिपूर्वक १०८ हवन करने से नर हो या नारी, वह अतिशीघ्र वश में हो जाता है।

शालीतण्डुलचूर्णकैस्त्रिमधुरासिक्तैः स्वसाध्याकृतिं
कृत्वाऽष्टोर्ध्वर्धशताख्यमस्य शितधीः प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च।
न्यासोक्तक्रमतो निशासु जुहुयात् तां सप्तरात्रं नरो
नारी वा वशमेति मंक्षु विधिना तेनैव लोणेन वा।। (वही, ७/-६६)

मन्त्रसिद्ध वर्णौषधि भस्म

एक कलश को पंचगव्य से भर दिया जाय । इसके बाद पूर्वोक्त पचास वर्ण औषधियों के नाम के प्रथम वर्ण में अनुस्वार तथा नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर (जैसे, चं चन्दनाय नमः, कं कंकोलाय नमः आदि) इनकी पूजा करते हुए इन्हें पंचगव्य वाले कलश में डाल कर उस घट को पूर्वोक्त अग्निकुण्ड में रखकर औषधियों को तब तक पकाना चाहिये, जब तक कि उसमें अग्नि की ज्वाला उत्पन्न नहीं हो जाती। वर्ण औषधियों की उस अग्नि में पूर्वोक्त विधि से अष्टाक्षर मन्त्र से सौ या हजार आहुतियां दी जानी चाहिये। हवन-क्रिया के साथ ही अन्य समस्त अर्चनादि कार्य पूर्वोक्त रूप से ही सम्पन्न किये जाने चाहिये। इसके बाद जब तक उक्त औषधियों भस्म के रूप में परिणत न हो जायं, तब तक अष्टाक्षर मन्त्र का जपार्चनादि करते रहना चाहिये। अग्नि शान्ति हो जाने पर वह भस्म मन्त्रसिद्ध हो जाती है। उस सिद्ध भस्म को इकट्ठा कर लेना

चाहिये। यह भस्म अभ्युदय करने वाली होती है। इस भस्म को यथावसर और उद्देश्यानुसार प्रतिदिन शरीर में लेप करने, अल्प मात्रा में भक्षण करने, तिलक लगाने और सिर पर लगाने से समस्त पाप, अपस्मार, भूत-बाधा, अपमृत्यु, ग्रह तथा विष आदि से उत्पन्न बाधाएं दूर होती हैं।

पंचाशदोषधिविपाचितपंचगव्य-
जाते घृतेन शतवृत्ति हुनेद् घटाग्नौ।
तावत्प्रजप्य विधिनाऽभिसमर्च्य सिद्धं
भस्माददीत सकलाभ्युदयावहं तत्।।
अनुदिनमनुलिम्पेत् तेन किंचित्समद्यात्,
तिलकमपि विदध्यादुत्तमांगे क्षिपेच्च।
अनुततदुरितापस्मारभूतापमृत्यु-
ग्रहविषरहितः स्यात्प्रीयते च प्रजाभिः।। (वही, ७/६७-६८)

प्रपंचयाग में दक्षिणा एवं फल

आचार्य शंकर के अनुसार मुनियों ने प्रपंचयाग के सहस्र होम में तीन प्रकार की दक्षिणाएं बताई हैं—एक, शुद्ध स्वर्ण की साढ़े ग्यारह कणिका, दूसरी साढे पांच कणिका और तीसरी ढाई कणिकावाली। 'कणिका' प्राचीन भारत में शुद्ध स्वर्ण भार की एक इकाई थी। आजकल साढ़े ग्यारह, साढ़े पांच या ढाई इकाई के रूप में दक्षिणा दी जा सकती है।

एकादशार्धकणिकां वरकांचनस्य
दद्यात् तदैव गुरवेऽथ सहस्रहोमे।
अर्धोर्ध्वकणिका द्विकणा च सार्धा
स्याद् दक्षिणेह कथिता मुनिभिस्त्रिधैवम्।। (वही, ७/६९)

आचार्य शंकर के अनुसार जिस प्रकार देवगण कल्पवृक्ष से अपने समस्त इच्छित पदार्थों को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार प्रपंचयाग करने से साधक द्वारा अभिलषित समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

निजेप्सितं दिव्यजनैः सुरद्रुमात् समस्तमेव प्रतिलभ्यते यथा।
प्रपंचयागादपि साधकैस्तथा क़रप्रचेयाः सकलार्थसिद्धयः।।
(वही, ७/७०)

❋

प्राणाग्निहोत्र साधना

प्राणाग्निहोत्र और प्रपंचयाग में बहुत समानता है। कुछ अन्तर है, तो केवल कुछ मन्त्रों और आहुति के लिये प्रयुक्त होने वाले पदार्थों में। प्राणाग्निहोत्र याग में वर्णाहुति तथा अन्नाहुति के रूप में दो प्रकार की आहुतियां दी जाती हैं। योग की साधना के समय वर्णों की आहुतियां मूलाधार में कल्पित पांच कुण्डों में प्रज्ज्वलित हो रही पंचाग्नियों में दी जाती हैं तथा भोजन के समय अन्न की आहुतियां जठर में कल्पित पंचाग्नियों में दी जाती हैं।

पंचाग्नि-भावना

योग-साधना के समय प्राणाग्निहोत्र करने के लिये योगी को 'ओं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से आसन की पूजा करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके पद्मासन में बैठना चाहिये। साधना के समय मूलाधार अर्थात् लिंग के दो अंगुल नीचे (भोजन के समय उदर में नाभि से दो अंगुल नीचे) पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं में प्रज्ज्वलित हो रहे चार अग्निकुण्डों के बीच पूर्व, नैर्ऋत्य तथा वायव्य दिशा वाले एक ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण की तथा इस त्रिकोण के बीच में प्रज्ज्वलित हो रहे पांचवें अग्निकुण्ड की भावना करनी चाहिये। जठर तथा मूलाधार में स्थित इस पांचवें अग्निकुण्ड के बीच में पराशक्ति त्रिगुणात्मिका हृल्लेखा के सत्त्वांश (ह्), माया अर्थात् तमस् अंश (ई) तथा रजस् अंश रेफ (र्) (ह्रीं) बीज का ध्यान करना चाहिये।

शक्तेः सत्त्वनिबद्धमध्यमथ तन्मायारजोवेष्टितम्,
प्राग्रक्षोऽनिलदिग्गताश्रिजठरं मध्ये च नाभेरधः।
मध्ये प्राग्वरुणेन्द्रयाम्यलसितैः कुण्डैर्ज्वलद्वह्निभि-
र्मूलाधारमनारतं समतलं योगी स्मरेत्सिद्धये।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ८/२)

प्राणाग्निहोत्र की अभिकल्पना में उक्त पांच कुण्डों में से मध्यवर्ती कुण्ड को आवसथज, पूर्व दिशा के कुण्ड को सभ्य, पश्चिम दिशा के कुण्ड को आहवनीय, उत्तर के कुण्ड को अन्वाहार्य तथा दक्षिण दिशा वाले कुण्ड को गार्हपत्य कहा जाता है।

मध्येन्द्रवरुणशशियमदिग्भवानि क्रमेण कुण्डानि।
आवसथजसभ्याहवनीयान्वाहार्यगार्हपत्यानि।। (वही, ८/३)

कल्पान्त एवं कल्पार्काग्नि

मूलाधार एवं जठर में भावित इन कुण्डों में प्रज्ज्वलित हो रही अग्नि भगवती चिद्शक्ति कुण्डलिनी के प्रकाश से प्रकाशित होती है। इस अग्नि को 'कल्पान्ताग्नि' कहा जाता है। इसी प्रकार सहस्रार चक्र में भी एक दिव्याग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है, जिसे 'कल्पार्क' कहा जाता है। सहस्रार स्थित यह कल्पार्क प्रकृत्यात्मक 'चिद्' है। अकारादि समस्त वर्णों की उत्पत्ति इसी चिद् से होती है। प्राणाग्निहोत्र का साधक इस चिद् रूप कल्पार्क से प्रस्रवित हो रही अमृतमयी अकारादि वर्णमाला की आहुति एक-एक करके मूलाधार में स्थित कल्पाग्नि से प्रज्ज्वलित हो रहे उक्त पांच कुण्डों में देता है। यही 'प्राणाग्निहोत्र' है।

वर्णों का पंचाग्नियों में हवन-क्रम

प्राणाग्निहोत्र यज्ञ में विलोम क्रम में पठित क्ष से लेकर अ तक के वर्णों का हवन किया जाता है। मूलाधार में स्थित पूर्वोक्त आवसथज आदि पंचाग्नियों वाले कुण्डों में से किस कुण्ड में किन-किन वर्णों का हवन किया जाय, इसका स्पष्ट उल्लेख भी आचार्य शंकर ने किया है। उनके अनुसार वर्णमाला के अन्तिम अक्षर (क्ष) एवं श, वर्गान्त्य (म न ण ञ ङ), अस् (विसर्ग), ए तथा वाम-श्रवण (ऊ) की आहुति मूलाधार के मध्य में स्थित आवसथज नामक अग्नि में देनी चाहिये।

इसी प्रकार असिता (ल) एवं व, वर्गों के चतुर्थ वर्ण (भ ध ढ झ घ), अं, सूक्ष्म (लृ), तथा श्रोत्र (उ) की आहुति सभ्य नामक पूर्व दिशा की कुण्डाग्नि में, ह एवं ळ, वर्गों के तृतीय वर्ण (ब द थ ज ग), औ, परा (लॄ) तथा शान्ति (ई) की आहुति पश्चिम दिशा की आहवनीय अग्नि में, भृगु (स), रेफ (र) फादिपंचक (फ थ इ छ ख), सद्या (ओ) अतिथि (ॠ) तथा लोचन (इ) की आहुति उत्तर की अन्वाहार्य अग्नि में तथा मज्जा (व), त्वक् (य), वर्गों के आदि पांच वर्ण (प त ट च क), भौतिक (ऐ), भाव (ऋ) तथा प्रतिष्ठा (आ) की आहुति दक्षिण दिशावर्ती गार्हपत्य नामक अग्नि में देनी चाहिये।

अन्त्यशवर्गान्त्यासेवामश्रवणान्यथावसथजाते।
असितावावर्गचतुर्थांसूक्ष्माः सत्याह्वये च सश्रोताः।।
हळयुतवर्गतृतीयौपराः सशान्तीश्च पश्चिमे वह्नौ।

भृगुरेफफादिपंचकसद्योऽतिथिलोचनानि सभ्येऽग्नौ।।
मज्जात्वग्वर्गादिकभौतिकभावाह्वयप्रतिष्ठाश्च।
गार्हपत्ये जुहुयादित्युक्तं होमकर्म वर्णानाम्।। (वही, ८/८-१०)

पंचभूत-हवन

आचार्य शंकर के अनुसार जो साधक वर्णों के हवन के साथ ही पंचभूत मन्त्रों से तन्मात्रा सहित आकाश के साथ शब्द को मूलाधार के मध्य में स्थित आवसथज नामक अग्नि में, तन्मात्रा सहित वायु के साथ स्पर्श को पूर्व दिशा में स्थित सभ्य नामक अग्नि में, तन्मात्रा सहित अग्नि के साथ रूप को आहवनीय नामक पश्चिमाग्नि में, तन्मात्रा सहित जल के साथ रस को अन्वाहार्य नामक उत्तराग्नि में, तन्मात्रा सहित पृथ्वी के साथ गन्ध को गार्हपत्य नामक दक्षिणाग्नि में (कल्पाग्नि तथा द्वादशान्तर्गत आनन्दात्मक कल्पार्क के तेज से उल्लसित उक्त कुण्डों में) हवन करता है, वह समस्त वेद्य पदार्थों के विश्लेषण में सक्षम हो जाता है और इस प्रकार भौतिक जगत् के प्रतिमथन या विश्लेषण से परमतत्त्व की उपलब्धि करके वह अपने स्वरूप को प्राप्त कर स्वयं 'हंस' हो जाता है।

व्योम्नामध्योत्थितेऽग्नावखिलमविरतं शब्दमैन्द्रेऽनिलेन
स्पर्शं स्वेनैव रूपं पुनरपरभवे सोमजेऽद्भी रसं च।
याम्ये गन्धंपृथिव्योभयरुचिरुचिरेष्वक्षरौघैर्हुनेद् यो
मन्त्री स्यात्सर्ववेद्यप्रतिमथनसमुद्भासितप्रत्यगात्मा।। (वही, ८/११)

वर्णाहुति का फल

आचार्य शंकर के अनुसार आरम्भ में तार (ओम्), फिर शक्ति (ह्रीं), इसके पश्चात् आद्य (परमात्ममन्त्र हंसः), फिर अजपा (सोऽहं) और अन्त में स्वाहा (अजपास्वाहाकारौ प्रयोक्तव्यौ इति विवरणे) अर्थात् 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इस अष्टाक्षर मन्त्र के तृतीय स्थान पर क्रमशः अ से क्ष पर्यन्त वर्णों को संयुक्त करके ५० आहुतियां देने तथा इतनी ही संख्या में शरीर के विभिन्न अंगों में न्यास करने वाला साधक समस्त वेद्यपदार्थों में व्याप्त परमात्मा को जानकर तद्रूप, नित्यतनुष् अर्थात् अविनाशी हो जाता है। प्राणाग्निहोत्र करने के फल का उल्लेख करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि 'प्राणाग्निहोत्र साधक इस यागविधि तथा न्यास के फलस्वरूप सहस्रार में प्रज्ज्वलित कल्पार्क रूप ही हो जाता है। मूलाधार में प्रकाशमान कल्पानल से जिस साधक का अन्तःकरण प्रकाशित हो जाता है,

वह चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहमय, पंचभूत, चतुर्दश भुवन, ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुरूप, अव्यक्त, अविनाशी तथा अमृतमय हो जाता है। वह सहस्रारस्थित कल्पादित्य की ओर उन्मुख मूलाधार स्थित कल्पानल और सहस्रार स्थित कल्पादित्य की प्रभा से द्युतिमान होकर आनन्दस्वरूप अनादि-अनन्त 'हंस' रूप ही हो जाता है।

सतारशक्त्याद्यजपान्तमेवं हुत्वा महात्माऽथ शतार्धसंख्यम्।
विन्यस्य तावच्च तथैव सूत्रमात्राकृतिनित्यतनुश्च भूयात् ।।
कल्पादित्यमुखः स्वमूलविलसत्कल्पानलान्तःस्फुरत्-
चन्द्रार्कग्रहकालभूतभुवनब्रह्मेशविष्ण्वादिकः।
अव्यक्तोऽक्षरसंज्ञकोऽमृतमयस्तेजोद्वयोद्यत्प्रभो-
नित्यानन्दमयस्त्वनादिनिधनो यः स्यात्स हंसात्मकः।। (वही, ८/१२-१३)

भोजन-क्रिया द्वारा प्राणाग्निहोत्र

आचार्य शंकर के अनुसार मन्त्रवेत्ता साधकों के लिये उनकी भोजन-क्रिया ही प्राणाग्निहोत्र रूप हो जाती है तथा उनके लिये प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान वायु गार्हपत्यादि कुण्डस्वरूप हो जाते हैं। भोजन में ही प्राणाग्निहोत्र सम्पन्न करने की क्रिया में पहले एक-एक करके गार्हपत्य, अन्वाहार्य, आहवनीय, सभ्य तथा आवसथज नामक कुण्डों के उच्चारण के साथ क्रमशः प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान नामक पांच प्राणों का उच्चारण सप्तमी विभक्ति में करना चाहिये। इनके बाद प्रत्येक के साथ क्रमशः हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा तथा सुप्रभा नामक अग्नि की पांच जिह्वाओं का उच्चारण करते हुए प्रत्येक के साथ 'शुचयः पावकाः' शब्द जोड़ा जाना चाहिये। इसके बाद 'अग्निं विहत्य, फिर 'आत्मानम् उपचर्य उर्ध्वाधः तिर्यग्' एवं 'ऊर्ध्वाधःतिर्यक्समं', तथा 'गच्छतु स्वाहा' बोलकर एक-एक अग्नि का स्मरण करके अन्नरूपी आहुति को एक-एक करके उक्त पांच कुण्डों (की भावना करता हुआ अपने मुख में) में हवन (डालना) करना चाहिये। तदनन्तर उक्त हवि की आहुति से प्रज्ज्वलित शिखा वाले उक्त पांचों अग्नियों (भावना से उक्त पांचों कुण्डों की अग्नियों का एकीकरण करके) का नाम लेते हुए उक्त समस्त मन्त्र को एक साथ ही उच्चरित और अग्नियों की पांचों जिह्वाओं का स्मरण करते हुए उस बहुरूपा अग्निशिखाओं में **'अहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधं। अहं वैश्वानरो भूत्वा पंचाम्यन्नं चतुर्विधं'।।** बोलते हुए 'स्वाहा' कहना चाहिये। इस हवन-क्रिया के पश्चात् तृप्ति-पर्यन्त उक्त अन्न को (उदर-कुण्ड) में हवन (भोजन) करना चाहिये।

भोजन से तृप्ति के बाद जल पीकर उदरकुण्डवर्ती अग्नियों को शान्त कर गंडूषा (कुल्ला) आचमन आदि करके अपने मूलाधार से मस्तक (सहस्रार) पर्यन्त व्याप्त आत्मस्वरूप का अनुस्मरण करते हुए इस प्राणाग्निहोत्र याग की समाप्ति करनी चाहिये।

अनुदिनममुना भजतां विधिनाहारक्रियासु मन्त्रविदाम्।
प्राणाद्याः स्युर्मरुतो गार्हपत्यादिकानि कुण्डानि।।
सप्तम्यन्ता च कुण्डाख्यामाख्यां च मरुतामपि।
हिरण्यागगनारक्ताकृष्णाभिर्वर्णमीरयेत्।।
ससुप्रभाभिः सहितं शुचयः पावका इति।
अग्निं विहृत्य चेत्येवमात्मानमुपचर्य च।।
ऊर्ध्वाधस्तिर्यगूर्ध्वाधस्तिर्यक्सममथो वदेत्।
गच्छतूक्त्वा ठयुग्मं च पंचाग्नीन् संस्मरेत् ततः।।
हुताहुतिसमुद्दीप्तशिखासंयुक्तरोचिषः।
गार्हपत्यादिकं भूय उपचर्यान्तमेव च।।
मन्त्रं सर्वमनुक्रम्य जिह्वाः संस्मृत्य सर्वशः।
बहुरूपां तु संकल्प्य पंचानलशिखायुताम्।।
अहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधम्।
पचाम्येवं विधानेनेत्यापूर्णं संयतेन्द्रियः।।
तूष्णीं हुत्वा पिधायाद्भिरुपस्पृश्य विधानतः।
आरभ्य मूलाधारं स्वमामस्तकमनुस्मरेत्।। (वही, ८/१४-२१)

प्राणाग्निहोत्र मन्त्रों का स्वरूप

आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित उक्त विधि के अनुसार भोजन की क्रिया द्वारा प्राणाग्निहोत्र सम्पन्न करने में मन्त्रों का रूप निम्न प्रकार से होगा—

'ओं गार्हपत्ये प्राणे हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्य आत्मानमुपचर्योर्ध्वं गच्छतु स्वाहा'।

(अन्नाहुति को उदरवर्ती दक्षिणाग्नि की भावना करते हुए मुख में डालना चाहिये)

'ओं अन्वाहार्ये अपाने गगनवर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्य आत्मानमुपचर्यऽधो गच्छतु स्वाहा' (उत्तराग्नि में)

'ओं आहवनीये व्याने रक्तवर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्य आत्मानमुपचर्य तिर्यग् गच्छतु स्वाहा' (पश्चिमाग्नि में)

'ओं सभ्ये उदाने कृष्णवर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्य आत्मानमुपचर्य ऊर्ध्वस्तिर्यग् गच्छतु स्वाहा' (पूर्वाग्नि में)

'ओं आवसथीये समाने सुप्रभावर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्य आत्मानमुपचर्य समम् गच्छतु स्वाहा' (मध्यवर्ती अग्नि में)

इसके बाद भावना से ही सभी अग्नियों का एकीकरण करके

'ओं गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीयसभ्यावसथजेषु हिरण्यागगनारक्ता कृष्णसुप्रभावर्णाः प्राणापानव्यानोदानसमानेषु हिरण्यगगनरक्तकृष्ण सुप्रभावर्णाः शुचयः पावकाः अग्निं विहृत्य आत्मानमुपचर्य ऊर्ध्वाध-स्तिर्यगूर्ध्वाधस्तिर्यक्समं गच्छतु स्वाहा'

'अहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधं। अहं वैश्वानरो भूत्वा पंचाम्यन्नं चतुर्विधं स्वाहा'

बोलकर आत्मस्वरूप का अनुस्मरण करते हुए याग की समाप्ति करनी चाहिये।

प्राणाग्निहोत्र से मोक्ष की प्राप्ति

भोजन के समय आदिप्रकृति में स्थित होते हुए भी चौदह भुवनों में परिव्याप्त, एक एवं अनन्य, पांच अग्नियों की प्रज्ज्वलित ज्वाला में विशुद्ध हवि देने से संतृप्त, तर्क से परे क्षेत्रज्ञ रूप आत्मस्वरूप का चिन्तन करने वाला तथा वर्ण होम में सहस्रार से क्षरित होने वाले अमृत से संसिक्त मातृका के पचास अक्षरों का मूलाधार में स्थित पांच कुण्डों में सायं-प्रातः हवन करने वाला अग्निहोत्री साधक मृत्यु के बाद दुबारा फिर कभी नारी के गर्भ में प्रवेश नहीं करता अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

क्षेत्रज्ञसंज्ञकममुं प्रकृतिस्थमाद्यं,
व्याप्तद्विसप्तभुवनान्तमनन्यमेकम् ।
पंचाननाग्निरसनापरिदत्तशुद्ध-
सान्नाय्यतर्पितमतर्कितमात्मरूपम्।
संचिन्त्य क्षरितामृताक्षरशतार्धाम्भोऽवसिक्तं हवि-
स्तौर्जप्त्वाऽकुटिलान्तराधिरधिकं संदीप्तपंचानलः।

सायं प्रातरनेन होमविधिना भोज्यानि नित्यं भजन्,
प्राणी न प्रमदोदरं प्रविशति प्राणाग्निहोत्री पुनः।। (वही, ८/२२-२३)

वर्णमालिका (अक्षमाला) का स्वरूप

आचार्य शंकर के अनुसार षडंगवेद सहित समस्त संसार की जननी वर्णशरीर वाली भगवती मातृका शक्ति का मूलस्वरूप 'ह' है। इस हकार वर्ण के विकार-विस्तार से प्रादुर्भूत अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्णमालिका के न्यास, जप, हवन तथा इसकी अर्चना से साधक के समस्त अभीष्टों की सिद्धि होती है। आचार्य शंकर ने साधकों को निर्देश दिया है कि वे अनुपम कवित्व, आयु, कीर्ति, कान्ति तथा लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये पूर्वोक्त ५१ अक्षरों वाली वर्णमाला का जप, अपने शरीर में न्यास तथा वर्णों की आहुति (मूलाधार स्थित पूर्वोक्त अग्निकुण्ड में) करें। उन्होंने वर्णमाला के निर्माण की विधि का भी निरूपण किया है। वर्णमाला को आचार्य ने 'अक्षमाला' कहा है। अक्षमाला का अर्थ अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्ण समूह है। शंकर के अनुसार वर्णमाला के ५० वर्णों का गुणन अर्थात् ग्रथन क्रमोत्क्रम (ळकार से ळकार एवं ळकार से अकार) विधि से 'गुणित' एवं मन्त्र से प्रपुटित होना चाहिये। यदि हम अष्टाक्षर मन्त्र का प्रतिपुटन वर्णमाला में करना चाहें, तो उसका स्वरूप होगा-'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा **अं** नमः, ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा **इं** नमः, ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा **उं** नमः', ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा ऊं नमः'....आदि।

इति जगदनुषक्तां तामिमां वर्णमालाम्
न्यसत जपत भक्त्या जुहुवताऽभ्यर्चयीत।
निरुपमकवितायुःकीर्तिकान्तीन्दिराप्त्यै
सकलदुरितदुःखोच्छित्तये मुक्तये च।।
इतीरिता सकलजगत्प्रभाविनी क्रमोत्क्रमक्रमगुणितार्णमालिका।
अभीष्टसाधनविधये च मन्त्रिणां भवेन्मनुप्रतिपुटिताक्षमालिका।

(वही, ८/२५-२६)

वर्णमालिका (अक्षमाला) का स्वरूप

पदम्पाद के अनुसार क्रमोत्क्रम विधि से निर्मित १०० अक्षरों वाली अक्षर माला में ५१वां अक्षर 'क्ष' माला के मध्य में मेरु के रूप में ग्रथित करना चाहिये। किसी भी मन्त्र के जप में मेरु के साथ मन्त्र का योग नहीं करना चाहिये।

"अक्षमालाया मध्यस्थः क्षकारो मेरुत्वेन ज्ञेयः। अतस्तेन मन्त्रयोगो न कार्यः"। (वही, ८/२५-२६ पर विवरण)

प्रयोगक्रमदीपिका के अनुसार 'गुणन' का अर्थ वर्णों की दो बार पुनरावृत्ति है। तात्पर्य यह कि पहले पचास वर्णों (क्षकार को छोड़कर) को अकारादि क्रम से संयोजन करके फिर उन्हें क्षकारादि विलोम क्रम से ग्रथित किया जाना चाहिये। 'मनुप्रतिपुटित' के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए दीपिकाकार ने बताया है कि 'प्रतिपुटन' का तात्पर्य यह नहीं कि वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के पश्चात् अभिमत या अपने इष्टमन्त्र का दो बार संयोजन किया जाय। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि प्रत्येक अर्थात् एक-एक वर्ण में एक-एक बार ही मन्त्र का संयोजन किया जाय। स्पष्ट रूप से कहें तो पहले मन्त्र फिर वर्ण, फिर मन्त्र और तब वर्ण।

"गुणनमिह द्विरावर्तनम्। तत्प्रथमं क्रमात् पुनरुत्क्रमाच्च क्रमेण भवेदिति। मनुप्रतिपुटितेति प्रत्यक्षरं मन्त्रेणाभिमतेन प्रतिपुटनं च कर्तव्यम्। प्रतिपुटनं चैतद् वर्णद्वयापेक्षया सकृतप्रयोगरूपमेव न प्रति-वर्णापेक्षया द्विःप्रयोगरूपमिति ज्ञेयम्, यथा मन्त्राकारो मन्त्र इकार इत्यादि।" (वही, ८/२६ पर दीपिका)

जप के लिये रुद्राक्ष आदि से भी वर्णमाला निर्मित की जा सकती है। ध्यान यह रखना चाहिये कि वर्णमाला के मध्य में मेरु तथा दोनों ओर केवल ५०-५० कुल १०१ मनके ही होने चाहिये।

❋

11

सरस्वती की साधना

भगवती मातृका सरस्वती अपने मूल अभिधान 'ह' से समस्त अभिधान और अभिधेय अर्थात् वाचक-वाच्य रूप समस्त विश्व की जननी हैं। अनुपमेय कवित्व, तेजस्, सौन्दर्य, आयुष् तथा सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये भगवती के वर्णमय शरीर की वर्णमन्त्रों से उपासना की विधि के निरूपण के अतिरिक्त वर्णेश्वरी सरस्वती की उपासना से सम्बन्धित अन्य कई अमोघ मन्त्रों का आविर्भाव ऋषियों की कालातीत चेतना में हुआ था। ऐसे मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में कण्व प्रमुख हैं। कण्व ने सरस्वती के जिस 'दशाक्षरी मन्त्र' का साक्षात्कार किया था, उसका उल्लेख भगवान् शंकराचार्य ने प्रपंचसारतन्त्र में निम्नरूप से किया है—

मध्ये वद्यक्षरयोः सदवदवाग्वार्णका निचन्द्रयुगे ।
प्रोक्ता दशाक्षरीयं कण्वविराजौ च वागृषिप्रमुखाः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ८/२७)

अर्थात् 'व' तथा 'दि' अक्षरों के बीच 'द वद वाग् वा' तथा नि अक्षर, इनके बाद चन्दयुग्म (ठ) अर्थात् 'स्वाहा' (वद वद वाग्वादिनि स्वाहा) यह वागीश्वरी का दशाक्षरी मन्त्र है।

दशाक्षरी मन्त्र के ऋष्यादि

वागीश्वरी के इस दशाक्षर मन्त्र 'वद वद वाग्वादिनि स्वाहा' के ऋषि कण्व, छन्दस् विराट्, देवता स्वयं वागीश्वरी सरस्वती, ऐं बीज तथा स्वाहा शक्ति हैं।

"चन्द्रविराजौ च वागृषि प्रमुखाः। ऐं बीजं स्वाहा शक्तिरिति"।

(वही, विवरणे)

ऋष्यादिन्यास में इन्हीं का उपयोग निम्नांकित रूप किया जाना चाहिये—

ऋष्यादिन्यास

ओं कण्वर्षये नमः (शिरषि), ओं विराट् छन्दसे नमः (मुखे)
ओं वाग्देवतायै नमः हृदि, ओं ऐं बीजाय नमः (गुह्ये),
ओं स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)

मन्त्रवर्णन्यास

वागीश्वरी के उक्त मन्त्र के दस वर्णों का न्यास मुखमण्डल, कानों, नेत्रों, नासापुटों, मुख, लिंग तथा गुदा में करके स्वरपुटित हल् (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग के छह वर्गाक्षरों) वर्णों से षडंगन्यास करना चाहिये।

कश्रोत्रनयननासावदनान्धुगुदेषु विन्यसेद् वर्णान्।
स्वरपुटितैरथ हल्भिः कुर्यादंगानि षट् क्रमान्मन्त्री।। (वही, ८/२८)

तदनुसार दशाक्षरी मन्त्र के विभिन्न न्यास निम्न प्रकार से होंगे—

अंगन्यास

ओं वं नमः (मुखमण्डले), ओं दं नमः (दक्षिणकर्णे),
ओं वं नमः (वामकर्णे), ओं दं नमः (दक्षनेत्रे),
ओं वाग् नमः (वामनेत्रे), ओं वां नमः (दक्षनासिकायां)
ओं दिं नमः (वामनासिकायां), ओं निं नमः (मुखे)
ओं स्वां नमः (लिंगे) ओं हां नमः (पायौ)।

स्वरपुटित हल् वर्णों से षडंगन्यास

स्वरपुटित हल् वर्णों से षडंगन्यास मातृका सरस्वती के षडंगन्यास की भांति ही निम्नांकित रूप से होंगे—

अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः,
इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा,
उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्,
एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं,
ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्,
अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः अस्त्राय फट्।

"स्वरपुटितैरथ हल्भिरिति मातृकांगान्येव अस्याप्यंगानि इत्युक्तम्"
(वही, दीपिका)

पद्मपाद के षडंगन्यास का स्वरूप

ओम् वद हृदयाय नमः, ओम् वद शिरसे स्वाहा,
ओम् वाक् शिखायै वषट्, ओम् वादिनि कवचाय हुम्,
ओम् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओम् वद वद वाग्वादिनि स्वाहा अस्त्राय फट् । (वही, विवरण)

दीपिका के अनुसार करन्यास

दीपिका के अनुसार सरस्वती मन्त्र की साधना में करन्यास इस मन्त्र के दस वर्णों में से प्रत्येक में ओं का पुट देते हुए दाएं तथा बाएं हाथ के अंगूठे से कनिष्ठिका पर्यन्त किया जाता है।

इस निर्देश के अनुसार करन्यास का स्वरूप निम्न होगा—

ओम् वं दक्षांगुष्ठाय नमः, ओम् दं दक्षतर्जन्यैः नमः,
ओम् वं दक्षमध्यमायै नमः, ओम् दं अनामिकायै नमः,
ओम् वां दक्षकनिष्ठिकायै नमः, ओम् वां वामांगुष्ठाय नमः,
ओम् दिं वामतर्जन्यै नमः, ओम् निं वाममध्यमायै नमः
ओम् स्वां वामानामिकायै नमः, ओम् हां वामकनिष्ठिकायै नमः,
ओम् वद वद वाग्वादिनि स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

"प्रणवपुटितैः दशभिर्वर्णैः दक्षिणांगुष्ठादिकनिष्टिकान्तःन्यासः"।

(वही, दीपिका)

अंगन्यास का एक अन्य प्रकार

क्लीब स्वरों को छोड़कर १२ स्वरों में से क्रमशः ह्रस्व और दीर्घ दो-दो स्वरों के बीच 'हल्' अर्थात् व्यंजन वर्णों को वर्गशः रखकर भी अंगन्यास किया जा सकता है। सभी वर्ण अनुस्वारान्त होने चाहिये।

'क्लीबहीनशशांकाढ्यह्रस्वदीर्घान्तरस्थितैः।
सानुस्वारैर्जातियुक्तैर्ध्यायेद् देवीं हृदम्बुजे'।।

दीपिका के अनुसार ही अंगन्यास का स्वरूप निम्नानुसार होगा--

ओम् अं कं खं गं घं ङं आं वद हृदयाय नमः,
ओम् इं चं छं जं झं ञं ईं वद शिरसे स्वाहा,
ओम् उं टं ठं डं ढं णं ऊं वाग् शिखायै वषट्,
ओम् एं तं थं दं धं नं ऐं वादिनि कवचाय हुम्,
ओम् ओं पं फं बं भं मं औं स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओम् अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः
वद वद वाग्वादिनि स्वाहा, करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

"अंगेषु मन्त्रयोगः सूचित इत्युपरि सम्बन्धः। यथा अंकखगघङआं वदहृदयायनम" इत्यादि। (वही, ८/२८ पर दीपिका)

भगवती सरस्वती का ध्यान

न्यासादि की क्रिया द्वारा अपने शरीर को देवतामय बनाकर निर्मल श्वेत कमल पर विराजमान, करकमलों में लेखनी तथा पुस्तकधारिणी, कुन्द तथा पारिजात पुष्प के समान गौरवर्णा, चन्द्रकला से प्रकाशमान मुकुट से सुशोभित मस्तकवाली भगवती भारती का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आप और हम सबके जन्म-मरणरूपी भवभय को दूर करें।

अमलकमलसंस्थालेखनीपुस्तकोद्यत्-
करयुगलसरोजा कुन्दमन्दारगौरी।
धृतशशधरखण्डोल्लासिकोटीरचूडा,
भवतु भवभयानां भंजिनी भारती वः।। (वही, ८/२६)

सरस्वती की आवरण-पूजा

भगवती सरस्वती की आवरण-पूजा के लिये वर्णकमल का निर्माण कर उसमें पहले अंगमन्त्रों और उसके बाद योगा, सत्या, विमला, ज्ञाना, बुद्धि, स्मृति, मेधा तथा प्रज्ञा नामक भारती की आठ शक्तियों, ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों और आयुधों सहित लोकपालों की षोडशोपचार से पीठ पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। दीपिका के मत में मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति, बुद्धि तथा विद्येश्वरी नामक भारती की ६ शक्तियां हैं।

जप तथा हवन

भगवती भारती की आवरण-पूजा सम्पन्न हो जाने के बाद समस्त महिलाओं में भगवती सरस्वती की भावना रखते हुए ब्रह्मचर्यपूर्वक उक्त सरस्वती मन्त्र (वद वद वाग्वादिनि स्वाहा) का एक लाख जप करने के बाद शुद्ध दुग्ध से सिक्त १० हजार कमलों से अथवा मधुरत्रय से युक्त तिलों से १० हजार आहुतियां देनी चाहिये। इस प्रकार प्रयोग सम्पन्न करने के बाद प्रतिदिन प्रातःकाल न्यास आदि करने के बाद इस मन्त्र का १ हजार जप करना चाहिये तथा इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीना चाहिये। इस विधि से मन्त्र के न्यास, जप, ध्यान तथा हवनादि साधना से एक वर्ष के भीतर ही मन्त्र सिद्ध हो जाने से

साधक की वाणी सिद्ध हो जाती है। वाणी की सिद्धि हो जाने पर साधक की वाणी से जो भी निकलता है, वह पूर्णरूप से सत्य और साकार हो जाता है।

अक्षरलक्षजपान्ते जुहुयात्कमलैः सितैः पयोऽभ्यक्तैः।
त्रिमधुरयुतैः सुशुद्धैरयुतं नियतात्मकस्तिलैरथवा।।
मातृकोक्तविधिनाऽक्षराम्बुजे शक्तिभिश्च विनियुज्य पूर्ववत्।
पीठमत्र वचसां महेश्वरीं पूजयेत्प्रथममंगमन्त्रकैः।।
योगा सत्या विमला ज्ञाना बुद्धिः स्मृतिस्तथा मेधा।।
प्रज्ञेत्यष्टाभिर्मातृभिरपि लोकेशैः प्रपूजयेत्क्रमशः।।
इति सिद्धमनुर्मनोजदूरो न चिरादेव कविर्भवेन्मनस्वी।
जपहोमरतः सदावगच्छन् वनितां वागधिपतिर्गौरवेण।।
न्यासान्वितं निशितधीः प्रजपेत्सहस्रमह्नो मुखेऽनुदिनं प्रपिबेत्तथापः।
तन्मन्त्रिताः पुनरयन्त्रितमेव वाचां सिद्धिर्भवेदभिमता परिवत्सरेण।।

(वही, ८/३०-३४)

सरस्वती मन्त्र के कुछ प्रयोग

सरस्वती-साधना के एक अन्य प्रयोग का निरूपण करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि छाती तक गहरे जल में खड़े होकर सूर्य के बिम्ब में भगवती सरस्वती की भावना करते हुए उक्त मन्त्र का प्रतिदिन तीन हजार जप से साधक कवियों के मध्य शीघ्र ही प्रभुता प्राप्त कर लेता है। शंकर निरूपित एक अन्य प्रयोग के अनुसार त्रिमधुर सहित पलाश तथा बिल्व वृक्ष के पुष्पों तथा फलों का इन्हीं दोनों वृक्षों की समिधाओं से प्रज्ज्वलित अग्नि में हवन करने से साधक को कवित्व की शक्ति, सौभाग्य, लक्ष्मी तथा आनन्द की प्राप्ति होती है।

हृदयद्वयसे स्थितोऽथ तोये रविबिम्बे प्रतिपद्य वागधीशाम्।
जपतस्त्रिसहस्रसंख्यमर्वाक् कवितामण्डलतो भवेत् प्रभुता।।
पलाशबिल्वप्रसवैस्तयोश्च समिद्वरैः स्वादुयुतैश्च होमः ।
कवित्वसौभाग्यकरः समृद्धिलक्ष्मीप्रदो रंजनकृच्चिराय।।

(वही, ८/३५-३६)

अग्रगण्य कवि बनने के लिये

जो साधक चतुरंगुलज (अमलतास) के पुष्पों को मधुरत्रय के साथ इसी वृक्ष की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में वाग्वादिनी मन्त्र से उक्त संख्या में हवन करता है, वह कवियों में अग्रगण्य बन जाता है।

चतुरंगुलजैः समित्प्रसूनैर्जुहुयाद् यो मधुरत्रयावसिक्तैः।
मनुजः समवाप्य धीविलासानचिरात्काव्यकृतां भवेत्पुरोगः।। (वही, ८/३७)

सरस्वती के साधक को चाहिये कि वह अपने नख, दन्त, हाथ, पैर सर्वदा स्वच्छ रखे, सदा प्रसन्न रहे, दूसरों के दोषों का बखान न करे तथा भगवान् विष्णु, शंकर तथा ब्रह्मा के चरणों में भक्ति रखे। ऐसे साधक के ही हृदय में भगवती सरस्वती का शाश्वत निवास होता है।

सुविमलनखदन्तपाणिपादो मुदितमनाः परदूषणेषु मौनी।
हरिहरकमलोद्भवांघ्रिभक्तो भवति चिराय सरस्वतीनिवासः।।
(वही, ८/३८)

वाग्देवी का एकादशाक्षरी मन्त्र

भगवती वाग्देवी की साधना के लिये एकादशाक्षरी मन्त्र का भी उल्लेख भगवत्पाद शंकराचार्य ने किया है। उनके अनुसार आदि तथा अन्त में प्रणव (ओं), बीच में शक्ति (ह्रीं), फिर वाग्बीज (ऐं), पुनः शक्ति (ह्रीं), तदनन्तर नति (नमः) से युक्त चतुर्थ्यन्त सरस्वती (सरस्वत्यै) अर्थात् 'ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः'। भगवती सरस्वती का यह एकादशाक्षरात्मक महामन्त्र जप करने वालों के लिये संसार में कल्पवृक्ष के समान फलदायक है—

आद्यन्तप्रणवशक्तिमध्यसंस्था वाग्भूयो भवति सरस्वती च ङेऽन्ता।
नत्यन्तो मनुरयमीशसंख्यवर्णः सम्प्रोक्तो भुवि भजमानपारिजातः।।
(वही, ८/३९)

पद्मपादाचार्य के अनुसार शंकर के इस श्लोक में पठित पदावलि 'आद्यन्तप्रणवशक्तिमध्यसंस्थावाग्' का अर्थ आदि तथा अन्त में प्रणव मन्त्र ओं के बीच में स्थित 'वाक् बीज' अर्थात् 'ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं' है।

"आदिप्रणवगायाः अन्तप्रणवगायाश्च शक्तेर्मध्यसंस्थिता वाग्भव ऐकारः तारशक्तिवाग्भवशक्तितारा इत्यर्थः"। (वही, विवरण)

मन्त्रन्यास तथा अंगन्यास

सुषुम्ना के अग्रभाग, दोनों भौहों के मध्य (आज्ञा) तथा शरीर के नौ (दोनों आंखों, दोनों कानों, दोनों नासिका-छिद्रों, मुख, पायु, तथा लिंग) छिद्रों में क्रमशः मन्त्र के ११ वर्णों से अंगन्यास करना चाहिये तथा 'वाचा' अर्थात् वाग्बीज 'ऐं' से षडंगन्यास करना चाहिये।

सौषुम्नाग्रे भ्रूयुग्मध्ये नवके तथैव रन्ध्राणाम्।
विन्यस्य मन्त्रवर्णान् कुर्यादंगानि षट् क्रमाद् वाचा।। (वही, ८/४०)

'वाचा से षडंग न्यास करना चाहिये—'कुर्यादंगानि षट् वाचा' शंकर के इस कथन का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए पद्मपाद ने बताया है कि 'षडंग न्यास 'वाचा' से करना चाहिये। आचार्य शंकर के इस कथन का तात्पर्य 'ऐं ह्रां हृदयाय नमः' आदि से है, जबकि दीपिकाकार का कहना है कि इसका अर्थ वाग्भव मन्त्र से षडंगन्यास करना चाहिये है।

"अंगानि षट् क्रमाद्वाचेति ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि क्रमेणेत्यर्थः"।
(वही, विवरण)

पद्मपाद के 'ऐं ह्रां हृदयाय नमः' स्वरूप वाली षड़ंगन्यास विधि को दीपिकाकार पद्मपाद द्वारा स्पष्ट किया गया 'अभिप्रायभेद' कह कर गौण मानते हैं, मुख्य नहीं।

"अभिप्रायभेदमाह ऐं ह्रामिति" (वही, दीपिका)

ऋष्यादिन्यास

भगवती सरस्वती के इस एकादशाक्षरी मन्त्र के ऋष्यादिन्यास के सम्बन्ध में पद्मपाद का कहना है कि इसके ऋष्यादि पूर्व (दशाक्षरी मन्त्र) की ही भांति हैं । बीज ऐं तथा शक्ति ह्रीं है।

"ऐं बीजं। ह्रीं शक्तिः। ऋष्यादिकं पूर्ववत्"। (वही, विवरण)

इस प्रकार सरस्वती के इस एकादशाक्षरी मन्त्र के ऋष्यादिन्यास षडंगन्यास तथा वर्णन्यास के स्वरूप निम्न होंगे—

ऋष्यादिन्यास

ओं कण्वर्षये नमः, ओं विराट् छन्दसे नमः,
ओं वाग्देवतायै नमः, ओं ऐं बीजाय नमः,
ओं ह्रीं शक्तये नमः।

षडंगन्यास

(पद्मपादाचार्य के मतानुसार)

ओं ऐं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ऐं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ऐं ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ऐं ह्रैं कवचाय हुं,
ओं ऐं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ऐं ह्रः अस्त्राय फट्।

मन्त्रवर्णन्यास

ओं ओं नमः सहस्रारे, ओं ह्रीं नमः आज्ञायाम्,
ओं ऐं नमः दक्षिणनेत्रे, ओं ह्रीं नमः वामनेत्रे,
ओं ओं नमः दक्षकर्णे, ओं सं नमः वामकर्णे,
ओं रं नमः दक्षनासापुटे, ओं स्वं नमः वामनासापुटे,
ओं त्यैं नमः मुखे, ओं नं नमः लिंगे,
ओं मं नमः पायौ।

सरस्वती का ध्यान एवं स्तुति

न्यासादि पूर्ण कर लेने के पश्चात् हंस पर आसीन, भगवान् शिव के हास, मुक्ताहार, इन्दु तथा कुन्द के पुष्प के समान गौरवर्णा, मन्दस्मित से सुशोभित मुख वाली, मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये हुए, पुस्तक, वीणा, अमृत घट एवं अक्षमाला से सुशोभित करों वाली, श्वेत कमल पर विराजमान भगवती सरस्वती का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हम सब के मनोरथों को पूर्ण करने वाली हों।

हंसारूढा हरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता,
वाणी मन्दस्मितयुतमुखी मौलिबद्धेन्दुरेखा।
विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्रगादीप्तहस्ता,
शुभ्राब्जस्था भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात्।। (वही, ८/४१)

जप, हवन तथा आवरण-पूजा

संयतेन्द्रिय मन्त्र-साधक को चाहिये कि वह भगवती सरस्वती के 'ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः' इस ग्यारह अक्षरों वाले मन्त्र का १२ लाख जप करके इसी मन्त्र द्वारा श्वेत कमलों अथवा नागचम्पा के पुष्पों की १२ हजार आहुतियां दे।

दिनकरलक्षं प्रजपेन्मन्त्रमिमं संयतेन्द्रियो मन्त्री ।
द्वादशसहस्रकमथो सितसरसिजनागचम्पकैर्जुहुयात् ।। (वही, ८/४२)

सरस्वती की अर्चना के समय साधक को चाहिये कि वह अपने दोनों पार्श्वों में वाग्देवी के वाङ्मयरूप संस्कृत तथा प्राकृत की पुस्तकें रखकर पूर्वोल्लिखित कमलदल चक्र में अंगमन्त्रों, तदनन्तर प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, शक्ति, स्मृति, वागीशी, सुमति तथा स्वस्ति नामक आठ शक्तियों, ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों तथा दिग्पालों सहित आवरण-पूजा सम्पन्न करे।

पूजायां पार्श्वयुगे ससंस्कृता प्राकृता च वाग्देव्याः।
केवलवाङ्मयरूपे संपूज्यांऽगैश्च शक्तिभिस्तदनु।।
प्रज्ञा मेधा श्रुतिरपि शक्तिः स्मृत्याह्वया च वागीशी।
सुमतिः स्वस्तिरिहाभिर्मातृभिराशेश्वरैः क्रमात्प्रयजेत्।। (वही,८/४३-४४)

पद्मपादाचार्य के अनुसार वाग्देवी के ध्यान-श्लोक में पठित 'हंसारूढा... वाणी...संयतेन्द्रियो मन्त्री ' का तात्पर्य है कि एकादशाक्षरी मन्त्र में पठित वाग्भव बीज 'ऐं' के अनन्तर (वाग्भवानन्तरमितरयोर्बीजयोरपि योग इति भावः इति दीपिकायाम्) 'हंसः' बीज तथा 'संयतेन्द्रिय' का तात्पर्य यह है कि इसके साथ बाला मन्त्र 'ऐं क्लीं सौः' का योग किया जाय। इसके अलावा पापों से मुक्ति के लिये नृसिंह बीज 'ह्रां', लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये लक्ष्मी बीज 'श्रीं', यश के लिये अजपा बीज 'सोऽहं' का योग भी किया जाना चाहिये।

> "हंसारूढा वाणीति वाग्भवे हंसयोगः उक्तः। संयतेन्द्रियो मन्त्रीति बालायोगः उक्तः। दुरितमोक्षे नृसिंहस्य लक्ष्म्यास्तद्बीजस्य यशसेऽजपाया योगः"इति (वही, विवरण)

वागीश्वरी की अर्चना का फल

आचार्य शंकर का कहना है कि इस प्रकार प्रतिभा, लक्ष्मी और यश की प्राप्ति के लिये मातृका के भेदों सहित वागीश्वरी सरस्वती के इन मन्त्रों के प्रतिदिन जप, होम तथा पूजन से साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा सर्वोच्च शक्ति प्राप्त करके दोनों लोकों में आनन्द का उपभोग करता है।

इति निगदितो वागीश्वर्याः सहोमजपार्चना-
विधिरनुदिनं मन्त्री त्वेनां भजन् परिमुच्यते।
सकलदुरितैर्मेधालक्ष्मीयशोभिरवाप्यते
परमपरमां भक्तिं प्राप्योभयत्र च मोदते।। (वही, ८/४५)

भगवती सरस्वती के पूर्वोक्त मन्त्रों के जप, हवन तथा वाग्देवी सरस्वती के षोडशोपचार पूजन के बाद भगवती की स्तुति के लिये भगवान् शंकराचार्य ने मन्त्रगर्भित निम्नांकित अनुपम सिद्धस्तोत्र की रचना की है—

शंकर विरचित वाग्देवी स्तोत्र

अमलकमलाधिवासिनि मनसो वैमल्यदायिनि मनोज्ञे।
सुन्दरगात्रि सुशीले तव चरणाम्भोरुहं नमामि सदा।।४७।।

निर्मल कमल पर निवास करने वाली, मन को निर्मलता प्रदान करने वाली, मनोरम सुन्दर शरीरवाली, सुशीलस्वभाव वाली, भगवति सरस्वति! मैं तुम्हारे चरणकमलों में नमन करता हूं ।

अचलात्मजा च दुर्गा कमला त्रिपुरेति भेदिता जगति।
या सा त्वमेव वाचामीश्वरि सर्वात्मना प्रसीद मम ।।४८।।

हे वाणी की स्वामिनि ! हिमात्मजा, पार्वती, दुर्गा, कमला और त्रिपुरा ये आपके नामभेद हैं, वास्तव में संसार में केवल आप एक ही हैं।

त्वच्चरणाम्भोरुहयोः प्रणामहीनः पुनर्द्विजातिरपि ।
भूयादनेडमूकस्त्वद्भक्तो भवति देवि सर्वज्ञः ।।४९।।

हे भगवति! आपके चरणों में नमन न करने वाला द्विजाति व्यक्ति भी महामूर्ख है। लेकिन, आपको नमन करने वाला किसी भी जाति का हो, वह सर्वज्ञ हो जाता है।

मूलाधारमुखोद्गतविसतन्तुप्रभानिभप्रभाप्रभावतया ।
विसृतलिपिव्राताहितमुखचरणादिके प्रसीद मम ।।५०।।

मूलाधार चक्र के मुख से निकलते हुए कमलतन्तु के समान सूक्ष्म प्रभा के समान कान्ति के प्रभाव से विस्तृत लिपि समूह से जिसके मुख तथा चरणादि बने हैं, ऐसी हे भगवति! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

वर्णतनोऽमृतवर्णे नियतमतिभिर्वर्णितेऽपि योगीन्द्रैः।
निर्णीतिकरणदूरे वर्णयितुं देहि देवि सामर्थ्यम् ।।५१।।

हे वर्णमयि! हे अमृतवर्णे! परम बुद्धिमान् योगियों द्वारा वर्णित होने पर भी 'इदमित्थं' इस प्रकार के निर्णय से परे हे देवि ! आप मुझे अपने स्वरूप के वर्णन करने की क्षमता प्रदान करें।

ससुरासुरमौलिलसन्मणिप्रभादीपितांघ्रियुगनलिने।
सकलागमस्वरूपे सर्वेश्वरि सन्निधिं विधेहि मयि ।।५२।।

देवों और असुरों के मस्तक पर सुशोभित होने वाली मणियों की कान्ति से सुदीप्त चरणकमल वाली, समस्त आगमस्वरूपे, सर्वेश्वरि ! हे देवि! आप मुझमें निवास करें।

पुस्तकजपवटहस्ते वरदाभयचिह्नचारुबाहुलते।
कर्पूरामलदेहे वागीश्वरि विशोधयाशु मम चेतः ।।५३।।

पुस्तक, जपमाला, वर तथा अभयमुद्रा धारण करने वाली, कर्पूर की भांति निर्मल श्वेतवर्णा हे वागीश्वरि! आप हमारे चित्त को शीघ्र ही विशुद्ध कीजिये।

क्षौमाम्बरपरिधाने मुक्तामणिविभूषणे मुदावासे ।
स्मितचन्द्रिकाविकसितमुखेन्दुबिम्बेऽम्बिके प्रसीद मम ।।५४।।

कौशाम्बरधारिणि! मुक्ता एवं मणियों से सुशोभित! स्मितरूपी चन्द्रकला से प्रफुल्लित मुखवाली! मा अम्बिके! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

विद्यारूपेऽविद्याविनाशिनि विद्योतितेऽन्तरात्मविदाम्।
गद्यैः सपद्यजातैराद्यैर्मुनिभिः स्तुते प्रसीद मम।।५५।।

विद्यास्वरूपिणि! अविद्याविनाशिनि! आत्मतत्त्व को जानने वालों के हृदय को प्रकाश देने वाली! वसिष्ठादि मुनियों द्वारा पद्य तथा गद्यों से अर्चित भगवति शारदे! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

त्रिमुखि त्रयीस्वरूपे त्रिपुरे त्रिदशाभिवन्दितांघ्रियुगे।
त्रीक्षणविलसितवक्त्रे त्रिमूर्तिमूलात्मिके प्रसीद मम।।५६।।

तीन मुखों वाली ! वेदत्रयरूपे ! देवताओं द्वारा अभिवन्दित चरणों वाली ! तीन नेत्रों से सुशोभित मुखमण्डल वाली ! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपी त्रिमूर्तियों की आदिकारणे ! हे मातः ! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

वेदात्मिके निरुक्तज्योतिर्व्याकरणकल्पशिक्षाभिः।
सछन्दोभिः सन्ततक्लृप्तषडंगेन्द्रिये प्रसीद मम।।५७।।

वेदस्वरूपे! निरुक्त, ज्योतिष्, व्याकरण, कल्प, शिक्षा तथा छन्दस् रूप छह अंगेन्द्रियों से युक्त हे भगवति! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

त्वच्चरणसरसि जन्मस्थितिमहितधियां न लिप्यते दोषः।
भगवति भक्तिमत स्त्वयि परमां परमेश्वरि प्रसीद मम।।५८।।

हे देवि! आपके चरणरूपी सरोवर में ही संसार का जन्म, स्थिति और लय मानने वाले साधक ज्ञानियों को सांसारिक दोष कभी भी दूषित नहीं करते। हे परमेश्वरि! आपमें परम भक्ति रखने वाले मुझ पर आप प्रसन्न हों।

बोधात्मिके बुधानां हृदयाम्बुजचारुनटनपरे।
भगवति भवभंगकरीं भक्तिं भद्रार्थदे प्रसीद मम।।५९।।

हे ज्ञानस्वरूपे! ज्ञानियों के हृदयकमलों में नृत्य करने वाली! कल्याणकारी धन-सम्पदा प्रदान करने वाली हे भगवति! आप मुझ पर प्रसन्न हों तथा जन्म-मरणरूपी संसारभय को दूर करने वाली भक्ति प्रदान करें।

वागीशीस्तवमिति यो जपार्चनहवनवृत्तिषु प्रजपेत् ।
स तु विमलचित्तवृत्तिर्देहापदि नित्यशुद्धमेति पदम्।।६०।।

(वही, ८/४७-६०)

निर्मल चित्तवृत्तिवाला जो साधक भगवती वाग्देवी के मन्त्रों के जप, पूजन तथा हवन आदि साधना के समय वागीश्वरी की इस स्तुति का जप करता है, वह इस शरीर को त्यागने पर नित्य शुद्ध परम पद को प्राप्त करता है।

❋

12
त्रिपुरा साधना

त्रिगुणात्मिका भगवती पराशक्ति ज्ञान, क्रिया तथा इच्छा नामक तीन शक्तियों वाली हैं। सरस्वती परा शक्ति की ज्ञानात्मिका, त्रिपुरा क्रियात्मिका तथा भुवनेश्वरी इच्छाशक्ति रूपा है। पद्मपाद के अनुसार मातृका मन्त्र तथा सरस्वती देवी के दशाक्षरी आदि सभी सारस्वत मन्त्र ज्ञानशक्तिप्रधान हैं, जबकि भगवती त्रिपुरा के मन्त्र क्रियाप्रधान हैं।

"एवं ज्ञानशक्तिप्रधानान्मन्त्रानभिधाय क्रियाशक्तिप्रधानान् त्रैपुरान्मन्त्रान् प्रस्तौति"। (प्रपंचसारतन्त्र, ९/१ पर उपोद्घात)

त्रिपुरा विद्या की साधना जितनी सुलभ उतनी ही दुर्लभ है। त्रिपुरा विद्या के विवेचन का आरम्भ करते हुए शंकर ने इसे 'सुदुर्लभाप्ति', 'विशिष्टा विद्या' तथा 'त्रिदशाभिवन्द्या' कहा है। शंकर के अनुसार सामान्यतया त्रिपुरा विद्या तीन बीजों वाली है। लेकिन, इन तीन बीजों को आदि, मध्य एवं अन्त्य स्थानों में परस्पर स्थानान्तरित कर देने पर यह ३० प्रकार की हो जाती हैं। त्रिपुरा विद्या वर्णों तथा मूल बीजाक्षरों के विभिन्न प्रयोगों से अनेक भेदोपभेदों में विभक्त होकर अनन्त और अनगिनत भेदों वाली भी हो जाती है।

अथ प्रवक्ष्यामि सुदुर्लभाप्तिं विद्यां विशिष्टां त्रिपुराभिधानाम्।
या सा त्रिभेदाऽपि जगत्यवाप्तत्रिंशत्प्रकारा त्रिदशाभिवन्द्या।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ९/१)

त्रिपुरा को शंकर ने विद्येश्वरी कहा है। ये सृष्टि के पहले भी वर्तमान थीं, ये त्रिमूर्तियों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की उत्पत्ति से पूर्व भी थीं। सृष्टि से पहले भगवती त्रिपुरा वेदत्रयी (ऋग्यजुःसाम) के रूप में वर्तमान थीं और त्रिलोकी के विलयन के बाद भी ये अपने पूर्णत्त्व के साथ सर्वत्र विद्यमान रहेंगी। इन्हीं कारणों से भगवती अम्बिका को 'त्रिपुरा' कहा जाता है।

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्त्वात्त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरणत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।।

(वही, ९/२)

पद्मपाद के अनुसार बीजत्रय के रूप में त्रिपुरा के तीन भेद हैं। इसके ३० भेद तद्गत बीज तथा बिन्दु आदि के क़ारण होते हैं। शंकरोक्त 'सुदुर्लभाप्ति' शब्द का निर्वचन करते हुए पद्मपाद ने बताया कि 'आप्ति' का अर्थ व्याप्ति या उच्चारण है। त्रिपुरा अपने केवला, बिन्दु-अन्ता और विसर्गान्ता के रूप में सुलभा है, अर्थात् त्रिपुरा के अनुस्वारान्त और विसर्गान्त रूपों का उच्चारण सरल है, लेकिन बिन्दु-विसर्गान्त संयुक्तरूप त्रिपुरा विद्या दुर्लभा या दुर्वचा है, क्योंकि, बिन्दु और विसर्गान्त वाले त्रिपुरा मन्त्रों का उच्चारण सरल नहीं है।

"बीजत्रयरूपेण त्रिभेदत्वम्। त्रिंशत्प्रकारत्वं तु तद्गतबीजबिन्द्वादिभिः। अथवा सुलभा दुर्लभा चाप्तिर्व्याप्तिरुच्चारणं यस्याः सा तथोक्ता। तत्र केवला बिन्द्वन्ता मकारान्ता विसर्गान्ता च सुवचा। बिन्दुविसर्गान्ता दुर्वचा। कूटस्थपृथग्गतौ सुदुर्वाच्यौ मन्त्राविति कूटाकूटपक्षयोरपि पंचपंचमप्रकारौ सिद्धौ"। (वही, ८/१ पर विवरण)

विद्येश्वरी त्रिपुरा के त्रिबीजात्मक स्वरूप को उद्घाटित करते हुए आचार्य शंकर बताते हैं कि त्रिपुरा विद्या के तीन भेदों में से पहला भेद व्योम, इन्दु वह्नि, अधर तथा बिन्दु से युक्त, दूसरा रक्त, अच्छ, क, इन्द्र शिखी युक्त सर (या र) सहित मा और अर्धचन्द्र वाला तथा तीसरा द्यु, शीतकर, पावक, मनु और अम् अन्तवाला (अथवा अम् के अन्तवाले वर्ण विसर्ग) से युक्त है।

व्योमेन्दुवह्न्याधरबिन्दुभिरेकमन्यद्रक्ताच्छकेन्द्रशिखिभिः सरमार्धचन्द्रैः।
अन्यद् द्युशीतकरपावकमन्वमन्तैर्बीजैरमीभिरुदिता त्रिपुरेति विद्या।।
(वही, ८/३)

त्रिपुरा के बीज

प्रथम बीज

आचार्य शंकर ने भगवती त्रिपुरा के मन्त्रात्मक स्वरूप का यह निर्वचन भी कूटभाषा में किया है। शंकर के निरूपित उक्त त्रिपुरा विद्या के मन्त्रों का उद्धार या स्पष्ट करते हुए दीपिकाकार ने बताया है कि त्रिपुरा विद्या के तीन बीजों में से प्रथम बीज व्योम अर्थात् 'ह', इन्दु 'स', वह्नि 'र', अधर 'ऐ', बिन्दु 'अनुस्वार' वाला 'हस्रैं' रूप है।

द्वितीय बीज

दूसरा बीज रक्त अर्थात् 'ह', अच्छ 'स', 'क', इन्द्र 'ल', शिखी अग्निबीज 'र' से युक्त स अर्थात् 'ह' अर्थात् ह (सकाररूपिणी शक्तिर्यस्मिन् रमते स

हकारः सरः), मा 'ई' तथा अर्धचन्द्र 'अनुस्वार' वाला (ह्रीं) से युक्त अर्थात् 'हसकलह्रीं' है।

तृतीय बीज

त्रिपुरा का तीसरा बीज द्यु 'ह', शीतकर 'स', पावक 'र' मनु 'औ' तथा अमन्त 'अनुस्वारान्त' 'हस्रौं' है (अथवा) अनुस्वार के अन्त के वर्ण विसर्गान्त वाला अर्थात् 'हस्रौः' है। इस प्रकार त्रिपुरा के तीनों बीजों का रूप 'हस्रैं हसकलह्रीं हस्रौं' (या और 'हस्रौः') है।

> "व्योमेन्देवह्नयाधरबिन्दू चेति समासः। इन्दुः सकारः, एकमिति प्रकरणाद् बीजमिति लभ्यते। एवमन्यदित्यपि रक्तो हकारः। अच्छः सकारः। क इति स्वरूपग्रहणम्। इन्द्रो लकारः। रमा ईकारः। अन्यदित्यपि बीजम्। द्युशीतकरौ मन्वमन्तौ चेति समासः। द्यौ- ईकारः। शीतकरः सकारः। मनुरौकारः। अमन्तो विसर्जनीयः। बीजैरमीभिरिति कूटस्थतया पृथग्गततया वायोजितैरिति भावः।... अत्रामन्तेति बिन्दुविसर्गयो र्वा ग्रहणम्। विकल्पाभिप्रयमेतत् तेन तृतीयबीजमृतभेदेन बिन्द्वन्तमप्युक्तं भवति"। (वही, ६/३ पर दीपिका)

त्रिपुरा का द्वितीय बीज 'हसकलरीं' भी माना जाता है। इसका उद्धार उक्त श्लोक में पठित 'सरमा' पद की व्याख्या में निहित है। इस सन्दर्भ में 'सरमा' का अर्थ होगा 'र सहित मा'। यहां 'मा' का अर्थ माया बीज 'इ' है। इस प्रकार र सहित मा का अर्थ होगा ईकार सहित 'र' अर्थात् 'री'। इस प्रकार पूर्व वर्णबीजों को मिला देने पर त्रिपुरा का द्वितीय बीज 'हसकलरीं होगा। इसी प्रकार 'अमन्त' शब्द की व्युत्पत्ति से इसके अर्थ भी दो प्रकार से निकाले जा सकते हैं। जैसे 'अम्' अर्थात् अनुस्वार है जिसके अन्त में ' हस्रौं ' रूप और 'अम्' के अन्त में है जो वर्ण (विसर्ग) उसके अन्त वाला अर्थात् विसर्गान्त 'हस्रौः' रूप। आचार्य पद्मपाद ने विसर्गान्त बीज को ही त्रिपुरा का तृतीय बीज माना है, यद्यपि बिन्दु-विसर्गान्त इन दोनों के संयुक्त रूप की दुर्वचता का उल्लेख कर उन्होंने अनुस्वारान्त त्रिपुरा के स्वरूप को भी मान्य किया है। त्रिपुरा के ये तीन भेद तीस प्रकार के कैसे हो जाते हैं, इसका कारण बताते हुए पद्मपाद कहते हैं कि त्रिपुरा के तीस भेद तद्गत बीजबिन्दु आदि के कारण होते हैं। त्रिपुरा के तीन बीजों में से प्रत्येक के बीज, बिन्दु, कला, निरोधिका, नाद, नादान्त, स्पर्श, व्यापिनी, समनी तथा उन्मनी इन दस तत्वों में विभक्त होने से इसके तीस रूप होते हैं।

त्रिंशत्प्रकारत्वे तु तद्गत बीजबिन्द्वादिभिः, इति विवरणे।

'सुदुर्लभाप्तिं विद्यां विशिष्टां त्रिपुराभिधानाम् ' कहकर आचार्य त्रिपुरा को सुलभा और दुर्लभा दोनों ही मानते हैं। शंकर के इस कथन का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए दीपिकाकार कहते हैं कि त्रिपुरा के केवला, बिन्द्वन्ता, विसर्गान्ता, कूटा तथा अकूटा (पृथग्गता) इन पांच भेदों में 'केवला' मध्यम-पंचकूटा (हसकलरीं) को कहते हैं। मध्यमपंचकूटा त्रिपुरा के पांचों कूट स्वरान्त होने के कारण सुलभ उच्चारण वाले हैं। 'कूट-अकूट' के स्वरूप के सम्बन्ध में दीपिकाकार का कहना है कि यदि (एक स्वर वर्ण के साथ) दो या तीन व्यंजन (उक्त स्वर के ऊपर या नीचे संयुक्त रूप से मिले हों) वर्णों का उच्चारण एक साथ किया जा सके, तो ऐसा मन्त्र 'कूट' कहा जाता है, जैसे 'हस्रै'। लेकिन, जब इस कूट के ही वर्णों का अलग-अलग उच्चारण किया जा सके, वह सुवाच्य हो, तो यह मन्त्र अकूट या पृथग्गत कहा जाता है, जैसे 'हसूरै'। इस प्रकार दुर्वाच्यता और सुवाच्यता ही कूट और अकूट की या सुलभा और दुर्लभा की पहचान है।

> "केवलेति मध्यमपंचकूटाया विवक्षितत्वात् सैव गृह्यते। स्वरान्ततयावस्थानात् केवला सा भवति। कूटस्थपृथग्गतौ वेति। द्वित्र्यादिव्यंजनमुपर्यधोभावेन संपिण्डितं कूटो व्यपदिश्यते। कूटे सकृदुच्चार्यतया वर्णानां स्थितो स मन्त्रः कूटस्थो भवति। यथा हस्रै इति। कूट एव पृथगुच्चार्यतया वर्णानां स्थितौ स मन्त्रः पृथग्गतो भवति, यथा हसूरै इति। कूटस्थो दुर्वाच्यः। पृथग्गतः सुवाच्य इत्यर्थाद् भवति"।
>
> (वही, ६/१ पर दीपिका)

त्रिपुरा के बीजों का निर्वचन

त्रिपुरा के उक्त बीजों के उल्लेख के बाद न्यासादि की चर्चा के प्रसंग में आचार्य शंकर ने त्रिपुरा के मूल बीज वाग्भव बीज (ऐं), कामराजबीज (क्लीं) तथा शाक्तबीज (सौः) के महत्त्व का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार वाक् या वाणी का ऐश्वर्य अप्रतिम है। यह 'अतिशयद' अर्थात् सर्वोत्तीर्ण मोक्ष तत्त्व को देने वाली है। इसलिये इसके मन्त्र 'ऐं' को 'वाग्भव' कहा जाता है। इसी प्रकार कामराज बीज 'क्लीं' त्रिलोकी को आन्दोलित तथा वशीकरण करने वाला तथा शाक्त बीज 'ह्रीं' ज्वरादि समस्त रोगों को दूर करने वाला, कवित्व शक्ति, धन-सम्पत्ति तथा भोग-मोक्ष देने वाला है।

वागैश्वर्यातिशयदतया वाग्भवं बीजमुक्तं
त्रैलोक्यक्षोभणसवशताकृष्टिदं कामराजम्।
शाक्तं क्ष्वेळापहरकविताकारकं मन्त्रमेतत्
प्रोक्तं धर्मद्रविणसुखमोक्षप्रदं साधकानाम्।। (वही, ६/४)

विविध न्यास

त्रिखण्ड न्यास

त्रिपुरा के 'हस्त्रैं हसकलह्रीं हस्त्रौं' इन तीन बीजों का क्रमशः नाभि से चरणपर्यन्त, हृदय से नाभि तक तथा सिर से हृदय तक न्यास करना चाहिये। फिर बायें और दायें करतलों में क्रम से दो बीजों और करतल एवं करपृष्ठ दोनों में केवल तृतीय बीज का न्यास करना चाहिये।

इस प्रकार के न्यास को त्रिखण्ड न्यास कहा जाता है। त्रिखण्डन्यास संहार, सृष्टि तथा स्थिति क्रम से किया जाता है। उपर्युक्त न्यासों में से नाभि से चरणपर्यन्त के क्रम वाले इस न्यास को संहार-न्यास कहा जाता है। यदि इसी न्यास को मूर्धा से हृदय, हृदय से नाभि तथा नाभि से चरणपर्यन्त किया जाय, तो यह सृष्टि-न्यास कहा जायगा। इसी प्रकार नाभि से चरण, मूर्धा से हृदय तथा हृदय से नाभिपर्यन्त वाले न्यास को स्थिति-न्यास कहा जाता है।

नाभेरथाचरणमाहृदयाच्च नाभिं मूर्ध्नस्तथा हृदयमित्यमुना क्रमेण।
बीजैस्त्रिभिर्न्यसतु हस्ततले च सव्ये दक्षाह्वये द्वितयमप्युभयोस्तृतीयम्।।
(वही, ६/५)

एवं

"मूले नाभेरथाचरणमिति मूलबीजन्यास उक्तः। बीजै स्त्रिभि र्न्य-सत्वितिसंबध्यते। सव्ये दक्षाह्वये च हस्ततले द्वितयमपीति संबन्धः। बीजद्वयन्यासोऽयमुक्तः। तृतीयं बीजमुभयोर्हस्ततलयोः सह न्यसत्विति योजनीयम्। त्रिखण्डन्यासोऽयमुक्तः"। (वही, दीपिका)

इन न्यासों का स्वरूप निम्नांकित होगा—

ओं हस्त्रैं हसकलह्रीं हस्त्रौं नमः (नाभि से चरणपर्यन्त),
ओं हस्त्रैं हसकलह्रीं हस्त्रौं नमः (हृदय से नाभिपर्यन्त),
ओं हस्त्रैं हसकलह्रीं हस्त्रौं नमः (मूर्धा से हृदयपर्यन्त),

यह त्रिखण्ड न्यास निम्नरूप से भी किया जा सकता है—

ओं ऐं नमः (नाभि से चरणपर्यन्त),
ओं क्लीं नमः (हृदय से नाभिपर्यन्त),
ओं सौः नमः (मूर्धा से हृदयपर्यन्त)

पंचावृत्ति न्यास

त्रिखण्डन्यास के अनन्तर पंचावृत्ति न्यास करना चाहिये। पंचावृत्ति न्यास त्रिपुरा के मूल त्रिबीजों से मूर्धा, लिंग, हृदय में प्रथमावृत्ति, दक्षिण, वाम तथा ऊर्ध्व नेत्रत्रय में द्वितीयावृत्ति, दोनों कानों तथा मुख में तृतीयावृत्ति, दोनों स्कन्धों तथा पीठ में चतुर्थावृत्ति एवं दोनों कूपरों तथा नाभि में पंचमावृत्ति के रूप में किया जाता है। इसके बाद केवल वाग्भव मन्त्र से अंगुलिन्यास किया जाना चाहिये।

मूर्धनि गुह्यहृदोरपि नेत्रत्रितये च कर्णयोरास्ये।
अंसद्वये च पृष्ठे कौर्परयोर्नाभिमण्डले न्यसेत्।।
वाग्भवेन पुनरंगुलीष्वथो विन्यसेच्च पुनरुक्तमार्गतः।
अंगषट्कममुना विधाय तद्देवतां विशदधीर्विचिन्तयेत्।।

(वही, ६/६-७)

आचार्य शंकर ने त्रिपुरा-पूजन के प्रसंग में कुछ ही न्यासों का उल्लेख किया है, लेकिन, पद्मपाद ने पीठन्यास के अन्तर्गत आधारशक्ति, मूलप्रकृति, अनन्त, पृथिवी, अमृतार्णव, रत्नदीप, रत्नमण्डप, कल्पतरु, श्वेतछत्रादि का न्यास हृदय में, धमार्दिकों का न्यास दक्षिण कर्णादि में, अधर्मादि का वाम कर्णादि में करने के बाद इच्छाज्ञानाक्रियादि, नवशक्तिन्यास, नवयोनिन्यास आदि अनेक न्यासों का उल्लेख किया है, जो विवरण में द्रष्टव्य है।

(द्रष्टव्य—वही, ६/५-६ पर विवरण)

त्रिपुरा शक्ति का ध्यान

उक्त न्यासों के सम्पादन के पश्चात् रक्ताभ सूर्य के समान कान्ति वाली, चन्द्रकला से सुशोभित जटाओं वाली, त्रिनयना, पूर्ण चन्द्र के समान मुखमण्डलवाली, माणिक्य की अक्षमाला, पुस्तक, अभय एवं वरद मुद्राओं से सुशोभित हाथों वाली, स्थूल तथा उन्नत उरोजों के भार से नत अतः त्रिबलित मध्यभाग (कटि) वाली, कुंकुम के गाढ़े लेप से रंजित कपाल-माला तथा रक्ताम्बरधारिणी भगवती त्रिपुरा का ध्यान तथा नमन करना चाहिये।

आताम्रार्कायुताभां कलितशशिकलारंजितप्तां त्रिनेत्रां
देवीं पूर्णेन्दुवक्त्रां विधृतजपवटीपुस्तकाभीत्यभीष्टाम्।
पीनोत्तुंगस्तनार्तां बलिलसितविलग्नामसृक्पंकराज-
न्मुण्डस्रङ्मण्डितांगीमरुणतरदुकूलानुलेपां नमामि।। (वही, ६/८)

त्रिपुरा मन्त्र का जप एवं हवन

भगवती त्रिपुरा के ध्यान के अनन्तर विशिष्ट लक्षणों से युक्त अपने साम्प्रदायिक गुरु से विधिवत् दीक्षा के उपरान्त प्राप्त त्रिपुरा के पूर्वोक्त मन्त्र का १२ लाख जप करना चाहिये। जप पूर्ण होने के बाद भलीभांति प्रज्ज्वलित अग्नि में त्रिमधुर युक्त पलाश-पुष्पों अथवा करवीर-पुष्पों से १२ हजार हवन सम्पन्न करना चाहिये।

दीक्षां प्राप्य विशिष्टलक्षणयुजः सत्सम्प्रदायाद् गुरो-
र्लब्ध्वा मन्त्रममुं जपेत्सुनियतस्तत्त्वार्थलक्षावधि।
स्वाद्वक्तैश्च नवैः पलाशकुसुमैः सम्यक् समिद्धेऽनले
मन्त्री भानुसहस्रकं प्रतिहुनेदश्वारिसूनैरपि।। (वही, ६/६)

त्रिपुरा की आवरण-पूजा

भगवती त्रिपुरा का ध्यान, जप तथा हवन पूर्ण हो जाने के बाद उनकी आन्तर तथा बाह्य आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। आन्तर-पूजा के लिये प्राणायाम करके गुदा और लिंग के बीच में स्थित मूलाधार चक्र को योनिमुद्रा से सम्पीडित करके वहां स्थित त्रिकोणरूपी योनि में जाग्रत् भगवती त्रिपुरा कुण्डलिनी की मानस-अर्चना लाल रंग के कल्पित पूजा-द्रव्यों से तथा बाह्यपूजा पीठ पर निर्मित नवयोनि चक्र में की जानी चाहिये। आवरण-पूजा में उनकी वामा, ज्येष्ठा, रौद्रिका, अम्बिका, इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कुब्जिका, प्रह्वी, विषघ्नी, दूती तथा सर्वानन्दा नामक शक्तियों की भी पूजा भगवती के साथ 'नवयोनि चक्र' के अन्तर्गत ही करनी चाहिये।

प्राणायामैः पवित्रीकृततनुरथ मन्त्री निजाधारराज-
द्योनिस्थां दिव्यरूपां प्रमुदितमनसाऽभ्यर्च्चयित्वोपचारैः।
बद्ध्वाऽसौ योनिमुद्रामपि निजगुदलिंगान्तरस्थां प्रदीप्ताम्
भूयो द्रव्यैस्तु शुद्धैररुणरुचिभिरित्यारभेद्बाह्यपूजाम्।।

वामादिशक्तिसहितं परिपूज्य पीठं तत्र प्रकल्प्य विधिवन्नवयोनिचक्रम्।
योनौ निधाय कलशं त्वथ मध्यगायामावाह्य तां भगवतीं प्रयजेत्क्रमेण।।

(वही, ६/१०-११)

नवयोनि चक्र

तान्त्रिक शाक्त उपासना में 'नवयोनि चक्र' का महत्त्व अप्रतिम है। आचार्य शंकर के अनुसार नवयोनि चक्र अत्यन्त दुर्लभ है। इसकी रचना मुनियों ने बहुत पहले भगवती त्रिपुरा की अर्चना के लिये ही की थी। नवयोनि चक्र के निर्माण की विधि की ओर संकेत करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि 'दो वह्नि पुरों से सम्पन्न वासव (आग्नेय) योनि के बीच में आग्नेय, पश्चिम तथा ईशान कोणों से निर्मित तृतीय पुर (त्रिकोण) (षट्कोण के भीतर निर्मित त्रिकोण) में भगवती त्रिपुरा की अर्चना की जानी चाहिये।

वह्नेः पुरद्वितयवासवयोनिमध्यसम्बद्धवह्निवरुणेशसमाश्रितास्रि ।
देव्यर्चनाय मुनिभिर्विहितं पुरैव लोकेऽतिदुर्लभतरं नवयोनिचक्रम्।।

(वही, ६/१२)

दीपिका के अनुसार नवयोनि चक्र के निर्माण की विधि निम्नांकित है—

१. सर्वप्रथम अष्टदल कमल का निर्माण,

२. फिर उसकी कर्णिका को सोलह सम भागों में विभक्त करना,

३. फिर कर्णिका के पूर्व सिरे से पश्चिम सिरे तक एक रेखा खींचना,

४. फिर पूर्व की ओर से आरम्भ करके चौथे, सातवें तथा बारहवें भाग के बिन्दुओं से कर्णिका के सीमान्त तक दक्षिण से उत्तर की ओर तीन रेखाएं खींचना,

५. फिर दूसरी रेखा के दोनों सिरों से रेखाएं खींच कर उन्हें कर्णिका के पश्चिमी सिरे पर मिलाना,

६. उसके बाद तीसरी रेखा के दोनों सिरों से रेखाएं खींच कर उन्हें कर्णिका के पूर्वी सिरे तक फैलाना।

इस विधि से दो मुख्य त्रिकोण बनेंगे, जिनसे छह योनियों या त्रिकोणों का निर्माण होगा। इन्हें 'द्वितयवह्निपुर' कहा जाता है। इस स्थिति में पहले खींची गई प्रथम रेखा पूर्व दिशा वाले त्रिकोण के बीच में होगी। इसे 'वासव योनिसम्बद्ध' कहा गया है। तब इस प्रथम रेखा के दोनों सिरों से रेखाएं खींच कर उन्हें जहां

तीसरी रेखा मिली हुई है, उस बिन्दु तक ले जाने से पहले बने दक्षिण तथा उत्तर त्रिकोणों के सामने अन्य दो त्रिकोण तथा बीच में पश्चिम दिशा की ओर अग्रभाग वाला योनि के आकार का नवम त्रिकोण निष्पन्न होगा। शंकर ने इस नौवें त्रिकोण को ही 'वह्निवरुणेशसमाश्रितास्रि' कोण कहा है। इसी त्रिकोण में भगवती त्रिपुरा की अर्चना की जाती है।

"अष्टदलपद्मकर्णिकायां पूर्वापरं सूत्रमास्फाल्य तत्षोडशधा समं भंक्त्वा प्रागारभ्य चतुःसप्तद्वादशभागान्तसीमासु दक्षिणोत्तराणि सूत्राण्यास्फालयेत्। तत्र द्वितीयसूत्राग्रद्वयात् पूर्वापरसूत्रपश्चिमाग्रावधि सूत्रद्वयं, तृतीयसूत्राग्रद्वयात् तत्पूर्वाग्रावधि च सूत्रद्वयमास्फालयेत्। तदा पुटितं वह्निपुरद्वितयं संपद्यते। यत्तु प्रथमं सूत्रं तत्पूर्व-दिग्गतत्रिकोणमध्यगतमेवं भवति। तद्वासवयोनिसम्बद्धेत्युक्तम्। पुनः तदग्रद्वयात् पूर्वापरसूत्रे यत्र तृतीयसूत्रं संलग्नं तदवधिसूत्रद्वयमा-स्फालयेत्। पूर्वनिष्पन्नदक्षिणोत्तरगतत्रिकोणपुरोभागे परं त्रिकोणद्वयं मध्यभागेपश्चिमाग्रं योन्याकारं नवमं त्रिकोणं च सम्पद्यते। तद् वह्निवरुणेशसमाश्रितास्रीत्युक्तम्"। (वही, ६/१२ पर दीपिका)

नवयोनि चक्र में आवरण-पूजा

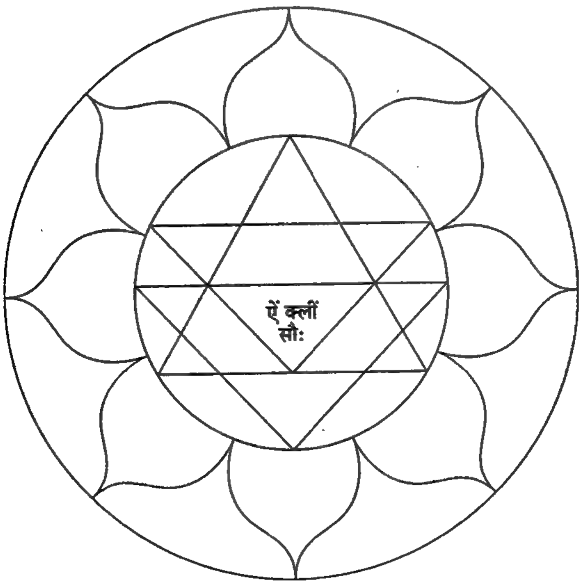
नवयोनि चक्र की नव योनियों में से पूर्व तथा मध्य योनि (त्रिकोण) के बीच में 'ऐं' बीज मन्त्र से पादुका सप्तक एवं परा, अपरा तथा परापरा का न्यास और पूजन सम्पन्न करना चाहिये। इसके बाद वाग्भव मन्त्र से ही चक्र की उप दिशाओं में षडंग पूजन करना चाहिये। फिर मध्य योनि के दोनों ओर देवी के पांच बाणों, अग्र भाग में सुभगा, भगा, सर्पिणी, भगमालिनी, अनंगा, अनंगकुसुमा, मदनमेखला, मदनमदना नामक शक्तियों, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा चण्डिका नामक अष्ट माताओं की पूजा करनी चाहिये। शेष अष्ट योनियों के आठ दलों में क्रमशः असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार नामक आठ भैरवों की धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजा सम्पन्न करके मन्त्रदाता गुरु की पूजा एवं दक्षिणा से उसका सत्कार करके आवरणार्चना पूरी करनी चाहिये।

वामा ज्येष्ठा रौद्रिका साम्बिकेच्छा, ज्ञानाभिख्या सक्रियाकुब्जिकाह्वा।
प्रह्वी चान्या स्याद् विषघ्नी सदूतिः सर्वानन्दा शक्तयः स्युः क्रमेण।।

प्राङ्मध्ययोन्योः पुनरन्तराले सम्पूजयेत् पाग्गुरुपादपंक्तिम्।
पराभिधानाममराहृवयां च परापराख्यामपि वाग्भवादिम्।
तेनैव चांऽगानि विदिग्दिशासु मन्त्री यथोक्तक्रमतः प्रपूज्य।
तन्मध्ययोनेरभितः शरांश्च सम्पूजयेत्पंचममग्रभागे।।
सुभगां भगां भगान्ते सर्पिणीं भगमालिनीमनंगाहृवाम्।
तत्पूर्वकुसुमसंज्ञां तदादिके चाथ मेखलामदने।।
ब्राह्मीमाहेश्वर्यौ कौमारी वैष्णवी च वाराही।
इन्द्राणी चामुण्डा सचण्डिका चेति मातरः प्रोक्ताः।।
सम्पूज्य योनिषु च मातृगणं सचण्डिकान्तं दलेष्वभिजयेदसितांगकाद्यैः।
तैर्भैरवैः सह सुगन्धकपुष्पधूपदीपादिकैर्भगवतीं प्रवरैर्निवेद्यैः।।
असितांगाख्यो रुरुरपि चण्डक्रोधाहृवयौ तथोन्मत्तः।
सकपालिभीषणाख्यौ संहारश्चाष्ट भैरवाः कथिताः।।
इति क्रमाप्त्या विहिताभिषेकः सम्पूजयित्वा द्रविणैर्गुरुश्च।
जप्त्वाऽर्चयित्वोक्ततयाऽथ हुत्वा युंजीत योगांश्च गुरूपदिष्टान्।।

(वही, ६/१३-२०)

त्रिपुरा का सावरण नवयोनि यन्त्र



(सन्दर्भ—प्रपञ्चसारतन्त्र ९/१२-१९ - विवरण एवं दीपिका)

[मन्त्र - 'ऐं क्लीं सौः' • जपसंख्या - १२ लाख • हवन संख्या - १२ हजार
हवनद्रव्य - त्रिमधुरयुक्त नवपुष्पित पलाश और हयमार (कनेर) के पुष्प]

त्रिपुरा बीजों के प्रयोग

वशीकरण के लिये वाग्भवबीज

शंकर ने भगवती त्रिपुरा के वाग्भव (ह्स्रैं), कामराज (हसकलह्रीं) तथा शाक्त (ह्स्रौं) मन्त्रों के पृथक्-पृथक् जप, हवन तथा अर्चनादि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों की चर्चा भी की है। उनके अनुसार जो साधक तन, मन और वस्त्राभूषणों को स्वच्छ रखते हुए गुफा आदि में धरती पर आसन-शयन आदि करते हुए भगवती त्रिपुरा के वाग्भव मन्त्र का एक लाख जप करके उसका दसवां भाग (दस हजार) पलाश पुष्पों (होमः पलाशैरेव इति विवरणे) का हवन इस मन्त्र से करता है, वह संसार भर को अपनी काव्य-रचनाओं से आह्लादित करता हुआ सर्वांग सुन्दर कामिनियों को आकर्षित करने में सक्षम हो जाता है।

अच्छाभः स्वच्छभूषो धरणिमयगृहे वाग्भवं लक्षमेकं,
यो जप्यात्तद्दशांशं विहितहुतविधिर्मन्त्रजप्तांजनादिः।
काव्यैर्नानार्थवृत्तैर्भुवनमखिलमापूरयेत्स स्वकीयैः-
र्मारार्त्या विह्वलाभिः पुनरयमनिशं सेव्यते सुन्दरीभिः ।। (वही, ६/२१)

वशीकरण के लिये कामराज बीज

जो साधक रक्त वर्ण के स्वच्छ वस्त्राभूषण तथा लाल रंग के ही आलेपनादि का उपयोग करता हुआ मौन धारण करके धरती पर ही आसन-शयनादि करता हुआ भगवती त्रिपुरा के कामराज मन्त्र 'हसकलह्रीं' का १ लाख जप करके करवीर पुष्पों (होमोऽश्वारिजैर्दशांशः इति विवरणे) का १० हजार हवन करके षोडशोपचार से भगवती का पूजनादि करता है, वह देवों तथा मनुष्यों का पूज्य बन जाता है तथा सुर, असुर, सिद्ध, यक्ष, विद्याधर, गन्धर्व, नाग तथा चारणादि की सुन्दरियां उसकी इच्छा का अनुगमन करने के लिये सर्वदा तैयार रहती हैं।

रक्ताकल्पारुणतरदुकूलार्तवालेपहृद्यो
मौनी भूसद्मनि सुखनिविष्टो जपेल्लक्षमेकम्।
बीजं मन्त्री रतिपतिमयं प्रोक्तहोमावसाने
योऽसौ लोके स सुरमनुजैः सेव्यते पूज्यते च।।
ससुरासुरयक्षसिद्धयक्षविद्याधरगन्धर्वभुजंगचारणानाम्।
प्रमदा मदवेगतो विकीर्णाभरणाः स्रस्तदुकूलकेशजालाः।।

(वही, ६/२२-२३)

अतिदुःसहमन्मथव्यथाभि र्व्यथितान्तःपरितापवेपितांग्यः।
घनघर्मजतोयबिन्दुमुक्ताफलसक्तोरुकुचान्तबाहुमूलाः।।
रोमांचकंचुकितगात्रलताघनोद्यदुत्तुंगपीनकुचकुम्भनिपीडितांग्यः।
औत्सुक्यभारपृथुवेपथुखेदखिन्नपादारविन्दचलनस्खलिताभिघाताः।।
मारसायकनिपातदारिता रागसागरनिमग्नमूर्तयः।
श्वासमारुततरंगिताधरा वाष्पपूरभरविह्वलेक्षणाः।।
मस्तकारचितदोर्द्वयांजलिप्राभृताहरिणशावलोचनाः।
वांछितार्थकरणोद्यताश्च तद् दृष्टिपातमपि सन्नमन्ति ताः।।

(वही, ६/२३-२७)

वशीकरण के लिये शाक्त बीज

आचार्य शंकर के अनुसार जो साधक श्वेतपुष्प के समान वस्त्राभूषण तथा श्वेत वर्ण के ही आलेपनों को प्रयोग में लाते हुए, भूमि पर आसन-शयनादि करते हुए भगवती त्रिपुरा के अन्त्य मन्त्र 'हस्रौं' का एक लाख जप करके इस मन्त्र से दस हजार पलाश पुष्पों (मूले पलाशपुष्पैरिति समस्तस्य प्रयोगप्रकरणारम्भः इति दीपिकायाम्) का दस हजार हवन करता है, उसके मुख से निरन्तर सरस्वती प्रवाहित होती है और उसके वश में समस्त लोग हो जाते हैं।

धरापवरके तथा जपतु लक्षमन्त्यं मनुं
सुशुक्लकुसुमांशुकाभरणलेपनाढ्यो वशी।
अमुष्य वदनादनारततयोच्चरेद् भारती
विचित्रपदपद्धतिर्भवति चास्य लोको वशे।। (वही, ६/२८)

त्रिकूटोपासना

सरस्वती, सौभाग्य तथा लक्ष्मी के लिये

जो साधक मधुरत्रय से सिक्त पलाश के पुष्पों से उक्त त्रिकूटरूप त्रिपुरा मन्त्र से १० हजार हवन करता है, वह सरस्वती, सौभाग्य और लक्ष्मी का निवास बन जाता है।

पलाशपुष्पैर्मधुरत्रयाक्तैर्होमं विदध्यादयुतावधिं यः।
सरस्वतीमन्दिरमाशु भूयात्सौभाग्यलक्ष्मीश्च स मन्त्रजापी।।

(वही, ६/२९)

आकर्षण

त्रिपुरा के त्रिकूट मन्त्र से त्रिस्वादुयुक्त राजी, करंज, शमी तथा बड़ की समिधाओं, बिल्व के पत्रों और पुष्पों का जो १० हजार हवन करता है, वह राजा एवं प्रजा सभी को आकर्षित कर लेता है।

वाजीकरंजाह्वशमीवटोत्थैः समिद्वरैर्विल्वभवप्रसूनैः।
त्रिस्वादुयुक्तैर्हवनक्रियाऽऽशु नरेन्द्रनारीनररंजनी स्यात्।।(वही, ६/३०)

सम्पत्ति तथा कवित्व

चन्दन के गाढ़े लेप से युक्त जल में सिक्त मालती-पुष्पों और वकुल की विकसमान कलियों का इस मन्त्र से हवन सम्पत्तिकारक तथा व्यक्ति में कवित्व शक्ति जगाने वाला होता है।

मालतीवकुलजैर्दलद्दलैश्चन्दनाम्भसि घने निमज्जितैः।
श्रीकरी कुसुमकैर्हुतक्रिया सैव चाशु कविताकरी मता।। (वही, ६/३१)

वशीकरण

त्रिपुरा मन्त्र के तृतीय कूट के अनन्तर अनुलोम क्रम से साध्य का नाम लिख कर प्रतिलोम क्रम से इस मन्त्र का जप करके चन्दनयुक्त राजी का हवन करने से नर, नारी तथा नृपति आदि सभी साधक के वश में हो जाते हैं।

अनुलोमविलोममन्त्रमध्यस्थितसाध्याह्वयुतं प्रजप्य मन्त्री।
पटुसंयुतया जुहोतु राज्या नरनारीनरपान् वशे विधातुम्।। (वही, ६/३२)

लोकप्रियता

मधुरत्रय से संसिक्त बिल्वफलों के हवन से साधक को समृद्धि, प्रभूत सम्पत्ति तथा जनप्रियता प्राप्त होती है।

मधुरत्रयेण सह विल्वजैः फलैर्हवनक्रियाऽऽशु जनतानुरंजनी।
अपि सैव साधकसमृद्धिदायिनी दिनशो विशिष्टकमलाकरी।।

(वही, ६/३३)

जरादि रोगों से मुक्ति

सुधा (अमृता अर्थात् गिलोय) नामक लता के त्रिमधुर युक्त खण्डों का हवन जरा (बुढापा), अपमृत्यु तथा अन्य सभी शारीरिक उपद्रवों को समाप्त करता है।

खण्डैः सुधालतोत्थैस्त्रिमधुरसिक्तैर्जुहोतु मन्त्रितमः।
सकलोपद्रवशान्त्यै जरापमृत्युप्रणोदनाय वशी।। (वही, ६/३४)

लक्ष्मी की प्राप्ति

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये खिले हुए बिल्व-पुष्पों, उसके नये-नये पत्तों, लाल कमल, बन्धुजीव, कमल, कैरव (श्वेत कमल), नन्द्यावर्त (तगर), कुन्दपुष्प, राजवृक्ष (अमलतास), पाटली तथा नागपुष्पों से घृत और दुग्ध के साथ हवन करना चाहिये।

फुल्लैर्विल्वप्रसूनैस्तदभिनवदलैः रक्तकल्हारपुष्पैः
प्रत्येकं बन्धुजीवैररुणसरसिजैरुत्पलैः कैरवाह्वैः।
नन्द्यावर्तैः सकुन्दैर्नृपतरुकुसुमैः पाटलीनागपुष्पैः
स्वाद्वक्तैरिन्दिरायै प्रजुहुत दिनशः सर्पिषा पायसेन।। (वही, ६/३५)

त्रिपुरा मन्त्रों की अन्तःसाधना

वाग्भव, कामराज तथा शक्ति मन्त्रों की एक विशिष्ट साधना का निरूपण भी आचार्य शंकर ने किया है। इसके अनुसार वाग्भव मन्त्र की उपासना मूलाधार में, कामराज की हृदय चक्र में तथा शक्तिमन्त्र की उपासना द्वादशान्त या सहस्रार में की जाती है।

जरादिरोग नाश हेतु

मूलाधारवर्ती षट्कोण में स्थित कुण्डलिनी से प्रस्फुटित होकर निकल रही विद्युतमयी प्रभा और मूर्धास्थित चन्द्रमण्डल से प्रस्रवित हो रही त्रिकूटमन्त्र रूप अमृतमयी धारा से सारे संसार को आप्लावित होते हुए चिन्तन करने वाला साधक विद्रूप पाप, जरादि रोग एवं दरिद्रता से मुक्त हो जाता है।

मूलाधारात्स्फुरन्तीं शिखिपुरपुटवीतां प्रभां विद्युदाभा-
मार्कात्तन्मध्यगेन्दोः स्रवदमृतमुचा धारया मन्त्रमय्या।
सद्यः सम्पूर्यमाणां त्रिभुवनमखिलं तन्मयत्वेन मन्त्री
ध्यायेन्मुच्येत. वैरूप्यकदुरितजरारोगदारिद्र्यदोषैः।। (वही, ६/३६)

दुःखनाश के लिये

मूलाधार में स्थित वह्निबिम्बों के युगल (षट्कोण) के मध्य में स्वर समूह से परिवेष्टित तथा उदय होते हुए सूर्य की आभा वाले वाग्भव मन्त्र 'हस्रैं' का

चिन्तन करते हुए अपने मुख से निःसृत हो रही सारस्वत वाणीरूपी वाग्भव को समस्त जगत् में परिव्याप्त होते हुए जो व्यक्ति चिन्तन करता है उसके समस्त दुःख तिरोहित हो जाते हैं।

वह्नेर्बिम्बद्वयपरिवृताधारसंस्थं समुद्यत्-
बालार्काभं स्वरगणसमावेष्टितं वाग्भवाख्यम्।
वाण्या स्वीयाद् वदनकुहरात्सन्ततं निःसरन्त्या
ध्यायेन्मन्त्री प्रततकिरणप्रावृतं दुःखशान्त्यै।। (वही, ६/३७)

प्रभूत ऐश्वर्य की प्राप्ति

कभादि (क-भ, ख-ब, ग-फ आदि क्रम से) वर्णों से परिवेष्टित हृदयकमल में स्थित सूर्य की आभा वाली योनि (त्रिकोण) से उद्गत होते हुए, मध्याह्न के सूर्य के समान प्रखर कान्ति वाले, अखिल ब्रह्माण्ड के विक्षोभक मन्मथ बीज 'हसकलह्रीं' का ध्यान और जप करने से साधक किसी भी धनवान के प्रभूत ऐश्वर्य से भी अधिक समृद्धि प्राप्त करता है।

हृत्पद्मस्थितभानुबिम्बविलसद् योन्यन्तरालोत्थितं
मध्याह्नार्कसमप्रभं परिवृतं वर्णैः कभाद्यान्तकैः।
ध्यातं मन्मथबीजराजमखिलब्रह्माण्डविक्षोभकं
राजैश्वर्यविमर्दिनीमपि रमां दत्वा जगद्रंजयेत्।। (वही, ६/३८)

कवित्व-शक्ति

श्वेत वर्ण वाले अन्त्यबीज सौः (हस्त्रौं) को सहस्रार में उदित चन्द्रबिम्ब में स्थित षट्कोण के मध्य मकार में स्थित मानकर चिन्तन करना चाहिये। षट्कोण के मध्य में स्थित अन्त्यबीज संवीतक्रम (अनुलोम) से व्यापक (य से क्ष तक) वर्णों से परिवेष्टित है। द्वादशान्त स्थित चन्द्रबिम्ब में अन्त्य बीज 'हस्त्रौं' का ध्यान करने वाला साधक महान् कवि तो बन ही जाता है, उसमें समस्त रोगों तथा पापों को दूर करने की भी शक्ति आ जाती है।

मूर्ध्नोऽथ द्वादशान्तोदितशशधरबिम्बस्थयोनौ स्फुरन्तं
सवीतं व्यापकार्णैर्धवलरुचि मकारस्थितं बीजमन्त्यम्।
ध्यात्वा सारस्वताच्छामृतजललुलितं दिव्यकाव्यादिकर्ता
नित्यं क्ष्वेळापमृत्यग्रहदुरितविकारान् निहन्त्याशु मन्त्री।। (वही, ६/३९)

मूलाधार स्थित त्रिकोण के बीच त्रिकूटरूपा भगवती त्रिपुरा को अपने ही तेजस् के परिभ्रमण से स्वयं ही कुण्डलाकार कुण्डलिनी के रूप में चिन्तन करते हुए समस्त व्योममण्डल में परिव्याप्त उस तेजस् के भीतर स्वयं को तथा अपने साध्य नर या नारी को स्थित-सा चिन्तन करने वाला साधक उन्हें अपने वश में कर लेता है।

योनेः परिभ्रमितकुण्डलिरूपिणीं तां रक्तामृतद्रवमुचा निजतेजसैव।
व्योमस्थलं सकलमप्यभिपूर्य तस्मिन्नावेश्य मंक्षु वशयेद् वनिता नरांश्च।।

(वही, ६/४०)

वशीकरण

अपनी गुह्येन्द्रिय के मूल में स्थित स्वाधिष्ठान में जपाकुसुम की तरह लाल वर्ण की अमृत-धारा को स्रवित कर रहे कामराज कूट 'हसकलह्रीं' के मध्य अपने साध्य (जिसे वह वश में करना चाहता है) का स्थित-रूप से चिन्तन करते हुए जो बुद्धिमान साधक इस बीज का जप करता है, वह अपने साध्य को वश में कर लेता है।

गुह्यस्थितं वा मदनस्य बीजं जवारुणं रक्तसुधां स्रवन्तम्।
विचिन्त्य तस्मिन् विनिवेश्य साध्यं वशीकरोत्येव विदग्धलोकः।।

(वही, ६/४१)

जनन-मरण से मुक्ति

जो साधक अपने चित्तरूपी कमल में चन्द्रमा और कुन्द के समान शुभ्र वर्ण वाले अन्त्य बीज 'हस्रौं या हस्रौः' का जप करते हुए इस बीज के मध्य स्थित पुस्तक, अक्षमालाधारिणी भगवती त्रिपुरा के मुख से अ से लेकर क्ष पर्यन्त वर्णों के प्रकट होते और साथ ही अपने मुख से निकलते हुए चिन्तन करता है, वह जनन-मरण के भय से मुक्त होकर विद्येश्वरी वाणी का प्रिय हो जाता है।

अन्त्यं बीजमथेन्दुकुन्दविशदं संचिन्त्य चित्ताम्बुजे
तद्भूतां धृतपुस्तकाक्षवलयां देवीं मुहुस्तन्मुखात्।
उद्यन्तं निखिलाक्षरं निजमुखेनाऽनारतस्रोतसा
निर्यान्तं च निरस्तसंसृतिभयो भूयात्स वाग्वल्लभः।। (वही, ६/४२)

विद्येश्वरी त्रिपुरा की साधना का फल

आचार्य शंकर ने संसार के अभ्युदय, प्रसिद्धि, लक्ष्मी तथा विद्या की प्राप्ति सहित समस्त उद्देश्यों की उपलब्धि के लिये जप, हवन, उपासना तथा अर्चना

विधियों सहित त्रिपुरा नामक विद्या का निरूपण किया है। शंकर के अनुसार जो व्यक्ति विद्या की स्वामिनी त्रिपुरा का भजन-पूजन तथा जप करता है, उसके मुख से नये-नये अर्थों वाली वाणी निकलती है। लक्ष्मी उसे धन-धान्यादि सम्पत्ति से परिपूर्ण रखती है तथा अन्त में वह मुनियों द्वारा प्रार्थित मोक्ष प्राप्त करता है।

संक्षेपतो निगदिता त्रिपुराभिधाना
विद्या सजापहवना सविधानपूजा।
सोपासना च सकलाभ्युदयप्रसिद्ध्यै-
वाणीरमाप्तिविधये जगतो हिताय।।
विद्येशीं त्रिपुरामिति प्रतिभजेद्यो वा जपेन्नित्यशः
तद् वक्रादथ नूतनार्थविशदा वाणी मुदा निःसरेत्।
सम्पत्या नृपनन्दिनी ततयशःपूरा भवेदिन्दिरा
तस्याऽसौ प्रतियाति सर्वमुनिभिः सम्प्रार्थनीयं पदम्।।

(वही, ६/४३-४४)

❋

मूलप्रकृति भुवनेश्वरी

13

इच्छाशक्ति की अधीश्वरी भगवती भुवनेश्वरी 'सकल प्रपंच की मूल प्रकृति' हैं। भुवनेश्वरी दश महाविद्याओं में से एक हैं। इनकी उपासना से साधक की समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। इनके मन्त्र का जप, दशांश हवन तथा पीठार्चना से साधक प्रेयस् तथा श्रेयस् (भोग एवं मोक्ष) दोनों की उपलब्धि बड़ी सहजता से कर लेता है।

अथाभिवक्ष्ये सकलप्रपंचमूलात्मिकायाः प्रकृतेर्यथावत्।
मन्त्रं तु सांगं सहुताभिषेकं जपार्चनाढ्यं सकलार्थसिद्धये।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १०/१)

भुवनेश्वरी मन्त्र

आचार्य शंकर के अनुसार घनवर्त्म अर्थात् आकाश (ह्), कृष्णगति (र्), शान्ति (ई) तथा बिन्दु (अनुस्वार) को मिला देने से बनने वाला मन्त्र (ह्रीं) भगवती भुवनेश्वरी का बीजमन्त्र है।इस मन्त्र की साधना पापों को नष्ट करने वाली, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष देने वाली तथा समस्त प्रकार के आनन्द प्रदान करने में सक्षम है।

घनवर्त्मकृष्णगतिशान्तिबिन्दुभिः कथितः परप्रकृतिवाचको मनुः।
दुरितापहोऽर्थसुखधर्ममोक्षदो भजतामशेषजनरंजनक्षमः।।

(वही, १०/२)

भुवनेश्वरी (ह्रीं) ओं श्रीं क्लीं ऐं इन बीजों की आत्मरूपा है। इसी कारण शंकर ने भुवनेश्वरी को 'सकलप्रपंचमूलात्मिका' कहा है। प्रकृति रूप भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) के विशेषण के रूप में 'सकल प्रपंच मूलात्मिका' अर्थात् 'ओं श्रीं क्लीं तथा ऐं' के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि शंकर के अनुसार इन बीजों का संयुक्त रूप से तथा पृथक्-पृथक् रूप से भी भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) के साथ पुट दिया जा सकता है। पद्मपाद के अनुसार इस श्लोक में पठित 'सकल' शब्द का अर्थ पूर्वोक्त ५० कलाओं वाला ओं, 'प्रपंच' का अर्थ विस्तार अथवा विभूति स्वरूप 'श्रीं' बीज तथा 'मूल' शब्द का अर्थ कामबीज (क्लीं) और वाग् (ऐं) बीज हैं।

"सकलः प्रणवः पंचाशत्कलात्मकत्वात्। तस्य प्रपंचो विस्तारः विभूतिः श्रीरित्यर्थः। मूलं कामं वाक् च। एतेषामात्मभूताया मध्यस्थायाः प्रकृतेरित्येतेषामेकैकेन समस्तैश्च पुटितत्त्वं शक्तेः सूचितम्"।

(वही, १०/१ पर विवरण)

भुवनेश्वरी मन्त्र के ऋष्यादि

आचार्य शंकर के अनुसार भुवनेश्वरी मन्त्र ह्रीं के ऋषि शक्ति, छन्दस् गायत्री, देवता ज्ञानस्वरूपा संवित्, बीज हं तथा शक्ति ईं है।

शक्तिः स्यादृषिरस्य तु गायत्री चोदिता मनोश्छन्दः।
बोधस्वरूपवाची संवित्प्रोक्ता च देवता गुरुभिः।। (वही, १०/३)

"..हं बीजं ईं शक्तिः"। (वही, विवरण)

षडंगन्यास

भुवनेश्वरी मन्त्र की साधना में षडंग न्यास व्योमबीज 'ह्' में अग्निबीज 'र्' एवं बिन्दु का योग कर उस (ह्र) में सोलह स्वरों में से क्रमशः नेत्र (द्वितीय), करण (चतुर्थ), ऋतु (छठे), दिनकर (बारहवें), भुवन (चौदहवें) तथा विकार (सोलहवें), स्वर (आ ई ऊ ऐं औ तथा अः) को मिलाकर जातियोग से की जाती है।

नेत्रकरणर्तुदिनकरभुवनविकारस्वराग्निबिन्दुयुजा।
व्योम्ना षडंगक्लृप्तिर्जातिविभिन्नेन चापि सम्प्रोक्ताः।। (वही, १०/४)

पद्मपाद के अनुसार यहां पठित श्लोक में 'जाति' शब्द का तात्पर्य 'हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट् तथा अस्त्राय फट्' इन छह अंगमन्त्रों से है। मन्त्रमहोदधि में भी जाति की यही परिभाषा दी गयी है।

"जातिविभिन्नेनेति। हृदयाय नमः इत्यादियुक्तेनत्यर्थः.."(वही, विवरण)

"हृदयाय नमश्चेति शिरसे स्वाहया युतम्।
शिखायैव च कवचाय हुमित्यपि।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडीरितम्"। (मन्त्रमहोदधि, २१/१४७-४८)

भुवनेश्वरी-साधना में न्यास के रूप

आचार्य शंकर के उक्त निर्देश के अनुसार भुवनेश्वरी मन्त्र की साधना में न्यासादि का स्वरूप निम्नांकित होगा—

ऋष्यादिन्यास

ओं शक्तये ऋषये नमः (शिरसि),
ओं गायत्री छन्दसे नमः (मुखे),
ओं संविद्देवतायै नमः (हृदि),
ओं हं बीजाय नमः (गुह्ये),
ओं ईं शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

ओं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ह्रैं कवचाय हुं,
ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रः अस्त्राय फट्।

संहार न्यास (भूतशुद्धि)

अग्नि और चन्द्र (प्रकृति एवं पुरुष) के योग से अकारादि लिपियों की सृष्टि हुई और विलोम क्रम से इन लिपियों से ही चर्म-मांसादि वाला हमारा यह अशुद्ध शरीर उत्पन्न हुआ है। इस पंचभौतिक शरीर की शुद्धि परम आवश्यक हैं। जिन लिपियों या अकारादि मातृकाओं के अनुलोम क्रम से शरीर की रचना हुई है, उन्हीं लिपियों को विलोम क्रम से शरीर के विभिन्न अंगों में न्यास तथा उनका लय करने के बाद इन्हीं लिपियों को अनुलोम अर्थात् अकारादि क्रम से मन्त्र के रूप में शरीरांगों में न्यास कर उनसे नवीन शरीरांगों के साथ पूर्ण शुद्ध शरीर का निर्माण (भावना से) करना चाहिये। विपरीत क्रम वाली न्यास प्रक्रिया को 'संहार न्यास' तथा अनुलोम क्रम से प्रयुक्त क्रिया को 'सृष्टिन्यास' कहा जाता है।

अग्नीन्दुयोगविकृता लिपियो हि सृष्टा-
स्ताभिर्विलोमपठिताभिरिदं शरीरम्।
भूतात्मकं त्वगसृगादियुतं समस्तं,
संव्यापयेन्निशितधीर्विधिना यथावत्।। (वही, १०/५)

संहार न्यास की विधि

अशुद्ध शरीर के विलयन के लिये लिपियों के संहार न्यास की विधि का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया है कि (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, तालु, भ्रूमध्य, ललाट तथा मस्तक में क्रमशः दो, चार, चार,

पांच, पांच, पांच, पांच, पांच तथा सोलह दलों वाले कमल की भावना करके) अन्तिम दो वर्णों क्ष और ळ को (ओं क्षं नमः स्वाहा, ओं ळं नमः स्वाहा बोलते हुए कल्पित द्विदल कमल वाले मूलाधार में स्थित उष्मवर्णों, अर्थात् ह स ष तथा श में लय करना चाहिये। फिर इन चारों को (ओं हं नमः स्वाहा, ओं सं नमः स्वाहा, ओं षं नमः स्वाहा, ओं शं नमः स्वाहा बोलते हुए चार दल वाले स्वाधिष्ठान में स्थित व ल र तथा य वर्णों में, फिर इन चार वर्णों को पांच दलों वाले मणिपूर में स्थित म से प तक के पांच वर्णों में और फिर इसी क्रम में (तवर्ग आदि) प्रत्येक वर्ग की पांच-पांच लिपियों को अपने से पहले वाले वर्ग की लिपियों में विलयन करते हुए इन सबको अस् (विसर्ग) में, विसर्ग को अम् (अनुस्वार) में, अनुस्वार को 'दति' अर्थात् दन्त से सम्बन्धित लिपि औ में, औ को ओ में, ओ को ऐ में, ऐ को ए में, ए को लॄ में, लॄ को लृ में, लृ को ॠ में, ऋ को ऊ में, ऊ को उ में, उ को ई में, ई को इ में, इ को आ में तथा आ को अन्तिम लिपि 'अ' में विलीन करके 'अ' का विलयन ललाट में स्थित अष्टप्रकृतियों से अधिष्ठित जीव तत्त्व में कर देना चाहिये।

अन्त्यावुष्मस्वमून् वादिषु मलिपिषु तांस्तांश्चतुर्वर्गवर्णे-
ष्वेतानस्यमिदस्तद्दति तदपि परेषु क्रमेणाऽवचिन्त्य।
संहृत्य स्थानयुक्तं क्षपितसकलदेहो ललाटस्थितान्तः-
प्राप्तिव्याप्तद्विसप्ताधिकभुवनतलो यातु मद्भावमेव ।। (वही, १०/६)

पद्मपाद ने शंकर के उक्त कथन को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि पांच भूतों में से पृथिवी के विकार रूप क्ष और ळ को 'क्षं स्वाहा ळं स्वाहा' बोलकर मूलाधार स्थित द्विदल कमल की कर्णिका में स्थित पृथ्वी तत्त्व में विलयन करना चाहिये । फिर विलयित ह और ळ से युक्त पृथ्वी तत्त्व को स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित ह स ष तथा श इन चार दलों वाले जलतत्त्व में, जलतत्त्व को नाभिस्थित व ल र य इस चतुर्दलकर्णिका स्थित अग्नितत्त्व में, अग्नितत्त्व को हृदय में स्थित म भ ब फ तथा प इन पांच दलों वाले वायुतत्त्व में, वायु को न ध द थ तथा त इन पांच दलों वाले विशुद्ध चक्र स्थित आकाशतत्त्व में, उक्त वर्णों से युक्त आकाश तत्त्व को तालुस्थित ण ढ ड ठ तथा ट में, इनका लम्बिका स्थित ञ झ ज छ तथा च में, इनका भ्रूमध्यस्थित ङ घ ग ख तथा क में और इसी क्रम में इन सब लिपियों का ललाट में स्थित सोलह स्वरों वाले विसर्ग में, विसर्ग का अनुस्वार में, अनुस्वार का औ में, औ का ओ में, ओ का ऐ में, ऐ का

ए में, ए का ॡ में, ॡ का ऌ में, ऌ का ऊ में, ऊ का उ में, उ का ई में, ई का इ में, इ का आ में तथा आ का उक्त सभी वर्णों और तत्त्वों के साथ अ में विलयन कर देना चाहिये। ललाट में स्थित प्रकृत्यात्मक सोलह दलों वाला कमल जीव का मूलस्थान है। यहां जीव प्रकृति के साथ अभिन्न भाव से स्थित है। यह 'अ' (जीव) ही मूर्धा में स्थित परमेश्वर को प्राप्त कर तद्रूप हो जाता है। पद्मपादाचार्य के अनुसार उक्त प्रकार से स्थूल शरीर के विलयन के पश्चात् सूक्ष्म शरीर का विलयन भी इसी विधि से किया जाना चाहिये।

"तत्र मूलाधारपद्मे क्षळौ दलत्वेन स्मृत्वा। तद्दलद्वयं पृथिवी-विकारात्मकं क्षं स्वाहा ळं स्वाहेतिकर्णिकागतपृथिव्यां विलाप्य। साऽपि लिंगमूलस्थहसषशचतुर्दलपद्मकर्णिकागताप्सु संहार्या...तत्रापि दला-त्मकाब्विकारान् पूर्ववदप्सु हुत्वा, ता अपि नाभिस्थवादिचतुर्दल-पद्मकर्णिकास्थतेजसि संहार्या....तदपि तेजः सविकारं हृद्गते पंच-दले पवर्गात्मके वायुरूपे संहार्य... अनेनैव क्रमेणोत्तरं पद्मचतुष्कं तवर्गाद्यात्मकं पंचपंचदलं साधिष्ठातृकं मूर्धस्थे षोडशदले स्वरात्मनि ईश्वरात्मके संहरणीयम् । एतान् असि विसर्गे विसर्गात्मनीश्वरे... ईश्वरैश्वर्यात्मकदलषोडशकमीश्वरे संहार्यम्...अमि बिन्दौ। अदः विसर्गम्। बिन्द्वात्मनि ईश्वरे विसर्गदलं संहरेत्...तद् दति दन्त-संबन्धिन्यौकारे तदात्मके ईश्वरे। एवमुत्तरत्रापि।.. सूक्ष्माणि स्थानानि संहरेदित्यर्थः। ..ललाटे प्रकृत्यब्जे तदभिन्नतया स्थितो जीवः। अतोऽकारार्थस्येश्वरस्य मूर्धस्थस्य प्राप्त्या व्याप्तद्विसप्ताधिकभुवनतलः संहृतसकलसंसारः स मद्भावं प्रत्यगीश्वरात्मतामेव यात्विति शार्ङ्गिणो वचनमेतत्"। (वही, १०/६ पर विवरण)

सृष्टिन्यास

पंचभौतिक अशुद्ध शरीर के संहार अर्थात् विलयन के पश्चात् नूतन शुद्ध शरीर की सृष्टि की जानी चाहिये। इसके लिये भावना करनी चाहिये कि मूलाधार से अकारादि लिपिमयी आत्मतेजोरूपा अमृतधारा सुषुम्ना के पथ से ऊपर उठती हुई ललाट-स्थित परमेश्वर रूप परात्मतेजस् में आहुत हो रही है और उस परंतेजस् से अकारादिलिपियों सहित मुख आदि अंगों वाला एक नया निर्मल शरीर निर्मित हो रहा है।

मूलाधारात्स्फुरिततडिदाभा प्रभा सूक्ष्मरूपोद्-
गच्छन्त्यामस्तकमणुतरा तेजसां मूलभूता।
सौषुम्नाध्वाचरणनिपुणा सा सवित्रानुबद्धा
ध्याता सद्योऽमृतमथ रवेः स्रावयेत्सार्धसोमात्।।
शिरसि निपतिता या बिन्दुधारा सुधायाः
भवति लिपिमयी सा ताभिरंगं मुखाद्यम्।
विरचयतु समस्तं पातितान्तश्च तेज-
स्यनल इव घृतस्योद्दीपयेदात्मतेजः।। (वही, १०/७-८)

भुवनेश्वरी का ध्यान

अशुद्ध शरीर के संहार तथा नूतन शुद्ध-शरीर के निर्माण के अनन्तर अपने अस्तित्व को भगवती भुवनेश्वरी में मिलाकर स्वयं तद्रूप होकर उदित होते हुए नव सूर्य के समान कान्ति वाली, नव कुसुमित जपाकुसुम की लालिमा एवं कोमलता को भी पराजित करने वाली, चन्द्रकला से सुशोभित ललाट वाली, तीन नेत्रों वाली, अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित कुण्डलों वाली, पद्मासना, वक्ष तक लम्बित हार तथा ग्रीवाभूषणधारिणी, करधनी, कटिसूत्र, मणियों से निर्मित कंकण तथा विविधवर्ण वाले वस्त्रों से सुसज्जित, हाथों में पाश, अंकुश, अभय मुद्रा एवं कमलधारिणी, मां की ममता से परिप्लावित भगवती भुवनेश्वरी का ध्यान कर उन्हें प्रणाम करना चाहिये।

उद्यत्भास्वत्समाभां विजितनवजवामिन्दुखण्डावनद्ध-
द्योतन्मौलिं त्रिनेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मगां च।
हारग्रैवेयकांचीगुणमणिवलयाद्यैर्विचित्राम्बराढ्या-
मम्बां पाशांकुशेष्टाभयकरकमलामम्बिकां तां नमामि।। (वही, १०/१०)

पाशांकुशादि के अर्थ

भगवती भुवनेश्वरी के हाथों में पाश और अंकुश नामक आयुधों तथा अभय और वर नामक दो मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। इन चारों के विशेष अर्थ निम्न हैं—

पाश

'पाश' शब्द का निर्माण 'पा रक्षणे' तथा 'अशू व्याप्तौ' दो धातुओं के योग से हुआ है। रक्षण एवं व्यापन अर्थ वाले पा तथा शू आदिक पाश शब्द में विश्व के सभी तत्त्वों की रक्षा करके सबमें व्याप्त होने का तात्पर्य निहित है।

धातू द्वौ स्तो रक्षणव्यापकार्थौ पाद्योऽश्वाद्यस्तत्प्रभावात्तयोश्च।
सर्वं संरक्ष्याऽथ सर्वात्मना यो व्याप्नोत्यंशः स्यादसौ पाशवाची।।
(वही, १०/११)

अंकुश

'अंकुश' शब्द के अं का अर्थ आत्मा, कु का अर्थ पृथ्वी अथवा शरीर तथा श का अर्थ आवृत्ति है। कु शब्द का अर्थ यदि भू अर्थात् पृथिवी माना जाय तो समस्त भूतों और शरीर के अर्थ में समस्त शरीरों को पुनः-पुनः प्रति सर्गान्त में आकर्षित करके स्वयं में समाहित कर लेने का अर्थ निहित है।

अं स्यादात्मा कुर्धरा कुस्तनुर्वा भागार्थः स्याच्छोऽथवाऽऽवृत्तिवाची।
भूश्चेद् भतान्यथा चेच्छरीराण्याकृष्यात्मन्याहरेदंकुशाख्यः।।
(वही, १०/१२)

अभय

जो (परमेश्वरी) स्मरण-मात्र से जनन-मरणरूपी संसार-चक्र में परिभ्रमण रूप भयानक भय से आत्मरूप व्यक्ति को बचाता है, वही 'अभय' शब्द का वाचक है।

स्मृते यथा संसृतिचक्रचंक्रमोद्भवाद् घनापायसमुत्थितादपि।
वियोजयत्यात्मतनुं नरं भयात् तथाऽभयस्याऽभयसंज्ञिता विभोः।।
(वही, १०/१३)

वर

मुख्यार्थक 'वर' शब्द अभिलषित वस्तु की ओर संकेत करता है। क्योंकि अभिलषित या वांछित वस्तु ही वर या श्रेष्ठ होती है। जो परा शक्ति स्मरण-मात्र से साधक को वर रूप अभिलषित वस्तु प्रदान करती है, वही वर शब्द का अर्थ है।

मुख्यार्थवाची वरशब्द उक्तः स्याद् वांछितार्थश्च वराभिधानः।
मुख्यं त्वभीष्टं स्मृतिमात्रकेण ददाति योऽसौ वरदोऽवगम्यः।।
(वही, १०/१४)

त्रिगुणित यन्त्र की निर्माण-विधि

भगवती भुवनेश्वरी की अर्चना के लिये त्रिगुणित तथा षड्गुणित मण्डल (यन्त्र) का विधान किया है। इसके लिये भुवनेश्वरी की उपासना की दीक्षा के लिये (पंचम पटल में उल्लिखित) विधि के अनुसार मण्डप का निर्माण करना चाहिये। त्रिगुणित यन्त्र के निर्माण की विधि का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया कि

पहले पूर्व, वायव्य तथा नैर्ऋत्य कोण वाला (इन्द्रानिलनिर्ऋतिग) एक अग्निपुर अर्थात् ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण बनाना चाहिये। इस त्रिकोण के बाहर आठ दलों वाले कमलचक्र का निर्माण करना चाहिये। इस त्रिकोण के बीच में शक्तिबीज 'ह्रीं' लिखकर त्रिकोण के अन्दर आग्नेय कोण में साध्य का नाम अथवा कर्म एवं तीनों कोणों पर मायाबीज 'ईं' लिखना चाहिये। त्रिकोण के भीतर दोनों पार्श्वों में 'हरि हर' वर्ण से युक्त मायाबीज (हरि ईं हर ईं) लिखकर त्रिकोण के बाहर कमल की कर्णिकाओं में संवीतक्रम (अकारादिक्रम) तथा केसरों में आवीत क्रम (क्षकार से अकारपर्यन्त) से मातृकाओं द्वारा आवेष्टित (घेरा) कर देने से 'त्रिगुणित' नामक यन्त्र का निर्माण किया जाता है। यह यन्त्र आयु को बढ़ाने वाला, वशीकरण की शक्ति से सम्पन्न, अकूत सम्पदा को देने वाला तथा कीर्तिप्रदायक है।

दीक्षाक्लृप्त्यै पुरोक्ते रचयतु विधिवन्मण्डलं मण्डपे तद्-
व्यक्तं युक्तं च कान्त्या त्रिगुणितविलसत्कर्णिकं वर्णवीतम् ।
आवीतं केसरेष्वारचितहरिहरार्णैश्च मध्ये समायैः
स्तैरग्रे माययाऽऽढ्यं कमलमथ बहिः प्रोक्तचिह्नैरुपेतम्।।
शक्त्याविःसाध्यमिन्द्रानिलनिर्ऋतिगबीजाभिबद्धं पुरोऽग्नेः-
स्तत्कोणोल्लासिमायं हरिहरविलसद् गण्डमेभिः समायैः।
वर्णैश्चावेष्टितं तत्त्रिगुणमिति विख्यातमेतत् सुयन्त्रम्
स्यादायुष्यं च वश्यं धनकरममितश्रीप्रदं कीर्तिदं च।।(वही,१०/१५-१६)

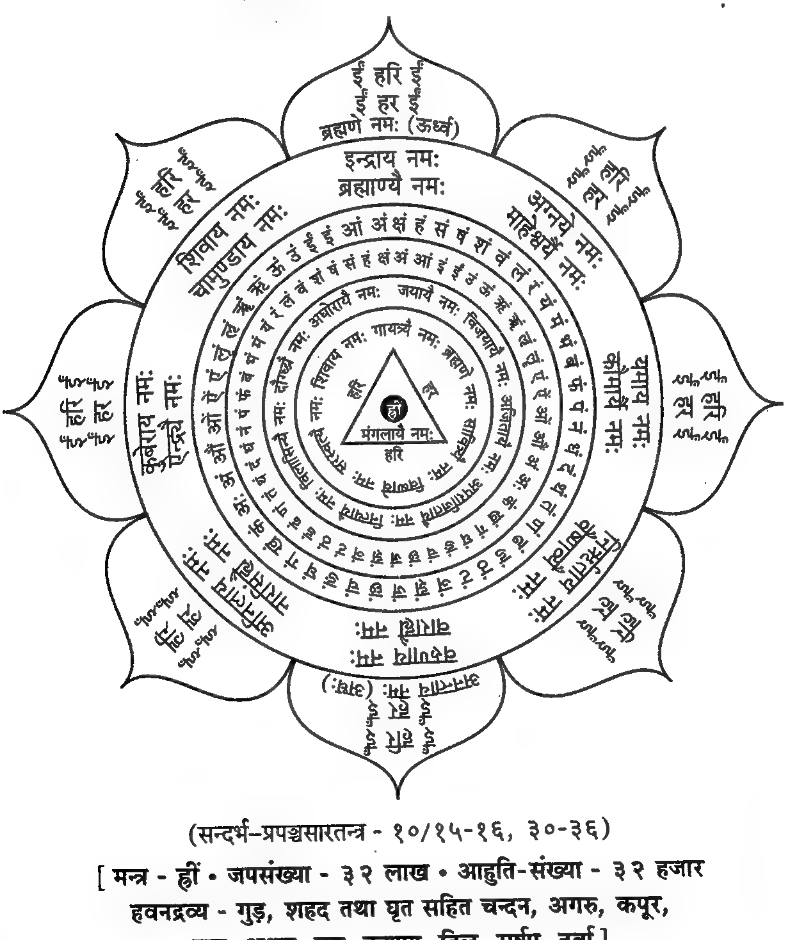
शंकर द्वारा निदर्शित त्रिगुणित यन्त्र की निर्माण-विधि के सन्दर्भ में पद्मपाद ने टिप्पणी दी है कि 'शक्ति' त्रिकोण के मध्य में स्थित ह्रीं को कहते हैं। उसके आग्नेय कोण में साध्य, साधक और कर्म का नाम लिखा जाना चाहिये। बीज का तात्पर्य शक्ति बीजों (ह्रीं, क्लीं, ऐं) से है। त्रिकोण के तीनों कोणों में मायाबीज ईकार लिखा जाना चाहिये। ईकार बीज से वेष्टित 'हरिहर' वर्ण लिखे जाने चाहिये। उसके बाहर मातृका वर्णों से आवेष्टित कर देना चाहिये।

"..शक्तिस्त्रिकोणमध्यस्था हृल्लेखा। तस्यामग्निविभागे आविर्भूत-साध्यम्। लिखितसाध्यनामेत्यर्थः। साधककर्मनाम्नोर्मायाभागादौ लेखन-स्योपलक्षणमेतत्। बीजानि शक्तिबीजानि। तत्कोणोल्लासिमायमिति। त्रिकोणकोणेषु ईकारलेखनमुक्तम्। एभिः समायैरावेष्टितम्। ह रि ईं ह र ईं इति शक्तिवेष्टनाद् बहिर्वेष्टितम् तद्बहिर्वर्णैर्मातृकाक्षरैश्चावेष्टित-मित्यर्थः"। (वही, १०/१६ पर विवरण)

पद्मपाद के अनुसार आयु को बढ़ाने के लिये इस त्रिगुणित यन्त्र के बीच में मध्यम बीज (क्लीं) लिखकर इसे मृत्युंजय बीज (जूं सः) से आवेष्टित करना चाहिये। वशीकरण के लिये शक्ति बीज (ह्रीं), धनलक्ष्मी के लिये श्री बीज (श्रीं) तथा यश-प्राप्ति के लिये अजपा बीज (सोऽहं) से इस शक्ति (ईं) को वेष्टित करना चाहिये।

"आयुष्ये मध्यमबीजं मृत्युंजयेन वेष्टयेत्। वश्ये शक्त्या।
धनश्रियोः श्रिया। कीर्तावजपया"। (वही, विवरण)

भुवनेश्वरी का सावरण त्रिगुणित यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १०/१५-१६, ३०-३६)

[मन्त्र - ह्रीं • जपसंख्या - ३२ लाख • आहुति-संख्या - ३२ हजार
हवनद्रव्य - गुड़, शहद तथा घृत सहित चन्दन, अगरु, कपूर,
पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप, दूर्वा]

षडंगादिन्यास

त्रिगुणित यन्त्र में भगवती की अर्चना के समय हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका तथा महोच्छुष्मा का क्रमशः मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणों में न्यास करके षडंगन्यास की विधि सम्पन्न करनी चाहिये। इसके बाद गले में गायत्री, वामस्तन में सावित्री, दक्षिणस्तन में सरस्वती, बायें कन्धे में ब्रह्मा, हृदय में मुकुन्द तथा दायें कन्धे में शिव का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर अलिका (काकल), बायें कन्धे, दोनों पार्श्वों, कुक्षि, दायें स्कन्ध, कण्ठ तथा हृदय में क्रमशः ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री तथा चामुण्डा नामक अष्टमातरों का न्यास करना चाहिये। इनके साथ ही यन्त्र में भगवती की जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा तथा मंगला नामक नौ शक्तियों की पूजा की जानी चाहिये।

हृल्लेखाख्यां गगनां रक्तां च करालिकां महोच्छुष्माम्।
मूर्धनि वदने हृदये गुह्ये पदयोर्न्यसेत्तदंगैश्च।।
गायत्रीं न्यसतु गले स्तने तु सव्ये सावित्रीं पुनरपरे सरस्वतीं च।
सव्येऽंसे सरसिजसम्भवं मुकुन्दं हृद्देशे पुनरपरांऽसके शिवं च।।
अलिकांसपार्श्वकुक्षिषु पार्श्वांसापरगलहृत्सु च क्रमशः।।
ब्रह्माण्याद्या विधिवन्यस्तव्या मातरोऽष्ट मन्त्रितमैः।।
सजया विजया तथा जिताह्वया चाऽपराजिता नित्या।
तदनु विलासिनीदोग्ध्रौ साघोरा मंगला नव प्रोक्ताः।।

(वही,१०/१७-२०)

कलश-स्थापना

पीठार्चना सम्पन्न करके अष्टदल कमल के मध्य में तथा प्रत्येक दल के अग्रभाग में स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा मृत्तिका से निर्मित एक-एक (कुल नौ) अथवा (प्रत्येक दिशा में एक-एक तथा एक घट बीच में) पांच घट स्थापित किये जाने चाहिये। नौ घटों की स्थापना करने पर बीच के घट में शहद, पूर्व दिशा वाले घट में घृत, दक्षिण के घट में दही, पश्चिम के घट में दूध, उत्तर दिशा वाले घट में तिल का तेल तथा उप दिशाओं के चार घड़ों में क्रमशः दूधवाले वृक्षों की छाल तथा दशमूल के पुष्पों का क्वाथ भरना चाहिये। यदि केवल पांच ही घटों की स्थापना करनी है तो, पूर्व दिशा वाले घट को गोमूत्र, दक्षिण वाले कलश को गोबर मिले जल, पश्चिम वाले को दूध, उत्तर वाले को दही तथा बीच के घट को

घृत से समान मात्रा में भरना चाहिये। इसके बाद तार अर्थात् 'ओं' से उत्पन्न वेद की 'हंसः शुचिषद्' आदि पांच ऋचाओं से अथवा अष्टाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित करते हुए उक्त घटों के पंचगव्यों को एक में मिला देना चाहिये।

एवं सम्पूज्य पीठं तदनु नव घटान्पंच वा कर्णिकायां
पत्राग्रेषु न्यसेत् कांचनरजतताम्रोद्भवान् मार्तिकान्वा।
एकं वा कर्णिकायां सुमतिरथ विनिःक्षिप्य कुम्भं यथावत्
सम्पूर्याऽऽवाहयेत्त्रिष्वपि विधिषु पुनर्वक्ष्यमाणक्रमेण।।
मधुना महता रवेण साकं विधिना मध्यगतं प्रपूर्य कुम्भम्।
अभिवाह्य कलाः प्रवेष्टयीत प्रवराभ्यामथ तं नवांशुकाभ्याम्।।
ऐन्द्रं घृतेन यमदिक्प्रभवं च दध्ना क्षीरेण वारुणमथो तिलजेन सौम्यम्।
क्षीरद्रुचर्मदशमूलकपुष्पसिद्धक्वाथेन कोणनिहितानपि पूरयेच्च।।
मूत्रेणैन्द्रं गोमयेनापि याम्यं क्षीरेणाप्यं सौम्यजं चैव दध्ना।
मध्यप्रोत्थं सर्पिषा पंचकुम्भाः स्युश्चेदेवं पूरणीयाः क्रमेण।।
गोमूत्रगोमयोदकपयोदधिनाघृतांशकाः क्रमात्प्रोक्ता।
एकार्थधातुसत्त्वाद्येके सर्वाणि वा समानानि स्युः।।
तारभवाभिरथर्ग्भिः क्रमेण संयोजयेत्पंच गव्यानि।
आत्माऽष्टाक्षरमन्त्रैरथ वा योज्यानि पंचभिः पंच।। (वही, १०/२१-२६)

ओंकारोद्भव पंच ऋचाएं एवं पंचगव्य संयोजन

तार (ओं) से उत्पन्न पांच वेद ऋचाओं का उल्लेख शंकर ने निम्न रूप से किया है—

प्रथमं प्रकृतेर्हंसः प्रतद्विष्णुरनन्तरः ।
त्रैयम्बकं तृतीयं स्यात् चतुर्थस्तत्पदादिकः।
विष्णुर्योनिरित्यादिः पंचमः कल्यतां मनुः। (प्रपंचसारतन्त्र, ६/३४-३५)

आचार्य शंकर द्वारा इस श्लोक में संकेतित ओंकार से उत्पन्न पांच ऋचाएं निम्न हैं—

प्रथम ऋचा—

'हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसद्।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।।'
(ऋग्वेद, ४/४०/५)

द्वितीय ऋचा—

'प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।।'

(ऋग्वेद-१/१५४/२)

तृतीय ऋचा—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्'। (ऋग्वेद, ७/५९/१२)

चतुर्थ ऋचा—

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्'।। (ऋग्वेद-३/६२/१०)

पंचम ऋचा—

'विष्णुर्योनिकल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिंचतु प्रजापति र्धाता गर्भं दधातु ते'।। (ऋग्वेद-१०/१८४/१)

ओंकार से उत्पन्न इन्हीं पांच ऋचाओं अथवा अष्टाक्षर मन्त्र (ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा) से अभिसिंचित करते हुए उक्त कलशों में रखे पंचगव्यों को एक में मिला देना चाहिये।

एकघटीय आवरण-पूजा

यदि पीठपूजा विधान में केवल एक ही घट की स्थापना की जानी हो तो, पूर्वोक्त ५० औषधियों के क्वाथ से अथवा पंचगव्यों से उक्त कलश को भरा जाना चाहिये। यदि कलश केवल जल से भरना है, तो उसमें अष्टगन्ध मिला देना चाहिये। भुवनेश्वरी की अर्चना के लिये प्रयुक्त एक घट वाले मण्डल के अष्टदल कमल के उत्तर की ओर पलाश की छाल से पकाये जल से युक्त तथा मण्डप के प्रत्येक द्वार के दोनों ओर शुद्ध जल से भरे हुए कलश स्थापित किये जाने चाहिये। मण्डल के ऊर्ध्वभाग, पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम में क्रमशः भूतवर्णों (ल व र य ह) तथा मध्य में हृल्लेखा-गगनादि की पूजा तथा अंगन्यासादि सम्पन्न किये जाने चाहिये। त्रिकोण से बाहर पूर्व दिशा में कमल पर विराजमान कुण्डिका तथा अक्षमालाधारिणी, रक्तवर्णा, चतुर्मुखी गायत्री, आग्नेय कोण में इसी रूप में ब्रह्मा, नैर्ऋत्य में शंख, चक्र, गदा कमल, केयूर, किरीट तथा हार से युक्त सावित्री, पश्चिम में विष्णु, वायव्य में टंक (छेनी या हथौड़ी जैसा आयुध),

अक्षमाला, अभय तथा वरदमुद्राओं से सुशोभित हाथों वाली, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रमा से सुशोभित जटाजूट वाली सरस्वती, ईशान में शिव एवं त्रिकोण के बाहर ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी आदि आठ माताओं एवं इनके बाहर इन्द्रादि दस दिग्पालों की पूजा की जानी चाहिये।

यद्येककलशकृल्प्तौ विधिरपि पंचाशदोषधिक्वाथैः।
पूरयतु पंचभिर्वा गव्यैस्तोयात्मकेऽष्टगन्धादिभिः।।
अत्रोत्तरस्यां दिशि पंकजे च पलाशचर्मक्वथितैः पयोभिः।
सम्पूरणीयः कलशो यथावत् सुवर्णवस्त्रादियुतः सुशुद्धः।।
द्वारेषु मण्डपस्य द्वौ द्वौ कुम्भौ सुशुद्धजलपूर्णौ।
संस्थाप्य च वसनाद्यैः प्रवेष्टयित्वा हि पूजनीयाः स्युः।।
ऊर्ध्वेन्द्रयाम्यसौम्यप्रत्यग्दिक्षु च भूतवर्णकाः क्रमशः।
हृल्लेखाद्यास्तदनु च पूर्ववदंगानि पूजनीयानि।।
गायत्रीं शतमखजे निशाचरोत्थे, सावित्रीं पवनगते सरस्वतींच।
ब्रह्माणं हुतभुजि वारुणे च विष्णुं बीजेऽस्रे समभियजेत् तथेवमीशे।।
रक्ता रक्ताकल्पा चतुर्मुखी कुण्डिकाक्षमालेऽब्जे।
दधती प्राग्बीजस्था गायत्री तादृशोऽग्निगो ब्रह्मा।।
अरिदरगदाब्जहस्ता किरीटकेयूरहारसम्भिन्ना।
निशिचरबीजसमुत्था सावित्री वरुणगस्तथा विष्णुः।।
टंकाक्षाभयवरान् दधती च तीक्ष्णेन्दुकलितजटा।
वाणी वायव्यस्था विशदाकल्पा तथेश्वरस्त्वैशे ।।
ब्रह्माण्याद्यास्तद्बहिरनन्तरं वासवादिकाशेशाः।
पूज्याः पूर्वप्रोक्तैरुपचारैः सम्यगिति निजेष्टाप्त्यै ।।(वही, १०/२७-३५)

तीन प्रकार के अष्टगन्ध

आचार्य शंकर ने शाक्तेय, वैष्णव तथा शैव तीन प्रकार के अष्ट गन्ध द्रव्यों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार शाक्त साधना के लिये उपयुक्त अष्टगन्धों में चन्दन, कपूर, अगुरु, कुंकुम, कपि, मांसि, रोचना तथा चोर, वैष्णव अष्टगन्धों में चन्दन, ह्रीवेर, अगुरु, कुष्ठ, असृक्, उशीर, मांसी तथा मुरा एवं शैव अष्टगन्ध द्रव्यों में चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुष्ठ, असृक् , दलरुधिर, कुशीत तथा रोगज का नाम आता है। साधना में अष्टगन्ध द्रव्यों के उपयोग से साधक को भगवती शक्ति की समीपता तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है।

त्रिविधं गन्धाष्टकमपि शाक्तेयं वैष्णवं च शैवमपि।
गन्धाष्टकेन शक्तिः स्यात्क्रमशो मन्त्रिणा कृतेऽनन्ता।।
चन्दनकर्पूरागुरुकुंकुमकपिमांसिरोचनाचोराः।
गन्धाष्टकमपि शक्तेः सान्निध्यकरं च लोकरंजनकृत्।।
चन्दनह्रीवेरागुरुकुष्ठासृगुशीरमांसिमुरमपरम्।
चन्दनकर्पूरागुरुदलरुधिरकुशीतकरोगजमपरम्।। (वही, ६/२८-३०)

नौ एवं पंच कलशीय आवरण-पूजा

मण्डल में यदि नौ कलश स्थापित किये जाने हैं, तो मध्य के कलश में भगवती भुवनेश्वरी (ह्रीं) और अन्य आठ कलशों में ब्राह्मी आदि आठ माताओं की पूजा पूर्वादि दिशाक्रम से की जानी चाहिये । यदि पांच ही कलशों की स्थापना होनी है, तो आत्माष्टाक्षर मन्त्र के पांच विभागों में से बीच के घट में हृल्लेखा (ह्रीं), पूर्व में ओं, दक्षिण में हंसः, पश्चिम में सोऽहं तथा उत्तर के कलश में स्वाहा की पूजा करनी चाहिये।इन पांच कलशों में से बीच के कलश में घृत, और पूर्वादि मुख्य दिशाओं वाले कलशों में क्रमशः कषायमिश्रित दही, कषाय क्वथित (औटाया हुआ) दूध, कषाय एवं तिल का तेल तथा द्विज वृक्ष के छालादि से क्वथित शहद भर कर इनसे अभिषेक किया जाना चाहिये। साधक को चाहिये कि साधना के समय बीच-बीच में (साधना-स्थल से बाहर जाकर अन्दर आने के समय) वह द्वार पर रखे गये कलशों के शुद्ध जल से अपने शरीर का सिंचन, मुख, हाथ तथा पैरों का प्रक्षालन तथा आचमन आदि सम्पन्न करे।

यदि नव कशलास्तेष्वथ सम्पूज्या मातरोऽष्ट दिक्क्रमशः।
हृल्लेखाद्याः पूज्या मध्यादिषु पंच चेद्भवन्ति घटाः।।
प्रथमं घृतजं ततः कषायं दधि पश्चात् क्वथितं पयः कषायम्।
अथ तैलकषायकौ मधूत्थं द्विजवृक्षात् क्वथितं ततोऽभिषिंचेत्।।
द्वारगकुम्भधृतैरथसलिलैः पुनरन्तरान्तरा सेकम्।
कुर्यान्मुखचरणक्षालनमपि साचमादिकं मन्त्री।। (वही, १०/३६-३८)

साधना के नियम तथा जप-हवन संख्यादि

भुवनेश्वरी साधना के दौरान प्रतिदिन पीठार्चन, सूर्य को अर्घ्य और एक निश्चित संख्या में तब तक जप करना चाहिये जब तक कि ३२ लाख जप पूर्ण नहीं हो जाता। भोजन प्रतिदिन बचे हुए हविष्यान्न का करना चाहिये। साधक को चाहिये कि वह ३२ लाख जप पूर्ण हो जाने के बाद उसके दशांश अर्थात् ३२

हजार मन्त्रों से गुड़, शहद तथा घृत से युक्त गन्ध (चन्दन, अगुरु तथा कपूर को घिसकर बनाये गये) से सिक्त पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप तथा दूर्वा नामक अष्टद्रव्यों की ३२ हजार आहुतियां अग्नि में दे। तदनन्तर चन्दन, कुचन्दनादि पचास वर्णौषधियों को मिलाकर उबाले गये जल से स्नान करके ब्राह्मणों को वस्त्राभूषणादि से सम्मानित कर उसे अपनी साधना को पूर्ण करना चाहिये।

विधिवदिति कृताभिषेको द्वात्रिंशल्लक्षमथ जपेन्मन्त्रम्।
निजकरदत्तार्घ्यमृतजलपोषितभानुमत्प्रभोऽनुदिनम्।।
भूत्वा शक्तिः स्वयमथ दिनेशेन्दुवैश्वानराणा-
मैक्यं कुर्वन् प्रणवमनुना शक्तिबीजेन भूयः।
आकृष्यान्तर्बहिरपि समाधाय बुद्ध्यैव तेजो
जप्यान्मन्त्रं ज्वलनहुतशिष्टान्नभुक् प्रोक्तसंख्यम्।।
अथ तु हविष्यप्राशी नक्ताशी वा जपेन् मनुं चैवम्।
परिपूर्णायां नियमितजपसंख्यायां समारभेद् होमम्।।
जपाद्दशांशं जुहुयादथाऽष्टद्रव्यैर्गुडक्षौद्रघृतावसिक्तैः।
वर्णौषधीसिद्धजलाभिषेकं कृत्वा द्विजानभ्यवहारयेच्च।।

(वही, १०/३६-४२)

अभिमन्त्रित जल से अभिषेक

भगवती के साधकों के कल्याण के लिये शंकर ने एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग का उल्लेख किया है। उनके अनुसार अश्वत्थ, पलाश, बिल्व, तर्कारिक, प्लक्ष, सेव्यक, प्रसारणीक, अश्मरिका, रोहणी, उदुम्बर, पाटली तथा डुण्डुक नामक वृक्षों की छालों को क्रम से एक पल, आधा पल, एक कर्ष आधा कर्ष लेकर इन्हें जल में उबाले तथा कलश में भर ले। औषधियों से विपाचित जल से भरे कलश में भगवती की विधिपूर्वक अर्चना करे। इस जल से प्रति वर्ष या प्रति मास अपने जन्मदिन पर अभिषेक अर्थात् स्नान करने से साधक शतायु, धनवान्, नीरोग एवं तेजस्वी होता है। इस जल से स्नानादि करने वाले साधक में इतनी शक्ति आ जाती है कि उसके दृष्टिपात मात्र से अन्य लोगों के रोगादि नष्ट हो जाते हैं, उसे या उसके कुल के पुत्र-पौत्रादि को सर्प कभी नहीं डसते तथा मृत्यु होने पर वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है। ३२ लाख की संख्या में मन्त्र का जप तथा ३२ हजार मन्त्रों से विधिपूर्वक हवन सम्पन्न कर मन्त्र की साधना पूर्ण कर लेने के

बाद मन्त्र के जपादि का कार्य धीरे-धीरे कम करना चाहिये, एकाएक छोड़ना नहीं चाहिये। इसके बाद साधक को चाहिये कि वह बाह्य साधना को छोड़ आत्मचिन्तन रूप आन्तरिक उपासना में लगे।

अश्वत्थविप्रांघ्रिपबिल्वनाम्नां तर्कारिकप्लक्षकसेव्यकानाम्।
प्रसारणीकाश्मरिरोहिणीनामुडुम्बरीपाटलिडुण्डुकानाम्।।
पलं पलार्धं त्वथ कर्षमर्धं तेषान्तु भागः कथितः क्रमेण।
एतैः सृतेनाऽथ जलेन चाऽसौ सम्पूरणीयः कलशो यथावत्।।
प्रत्यब्दसेकाद् भविता शतायुर्मेधेन्दिरावान् रहितश्च रोगैः।
मासेषु जन्मस्वभिषेकतः स्यादुर्वीपतिर्मंक्षु महापृथिव्याः।।
अर्काभस्तेजसाऽसौ भवति नलिनजा सन्ततं किंकरी स्या-
द्रोगा नश्यन्ति दृष्ट्या तमथ च धनधान्याकुलं तत्समीपम्।
देवा नित्यं नमोऽस्मै विदधति फणिनो नैव दंशन्ति पुत्राः
सम्पन्नाः स्युः सपुत्रास्तनुविपदि परं धाम विष्णोः स भूयात्।।

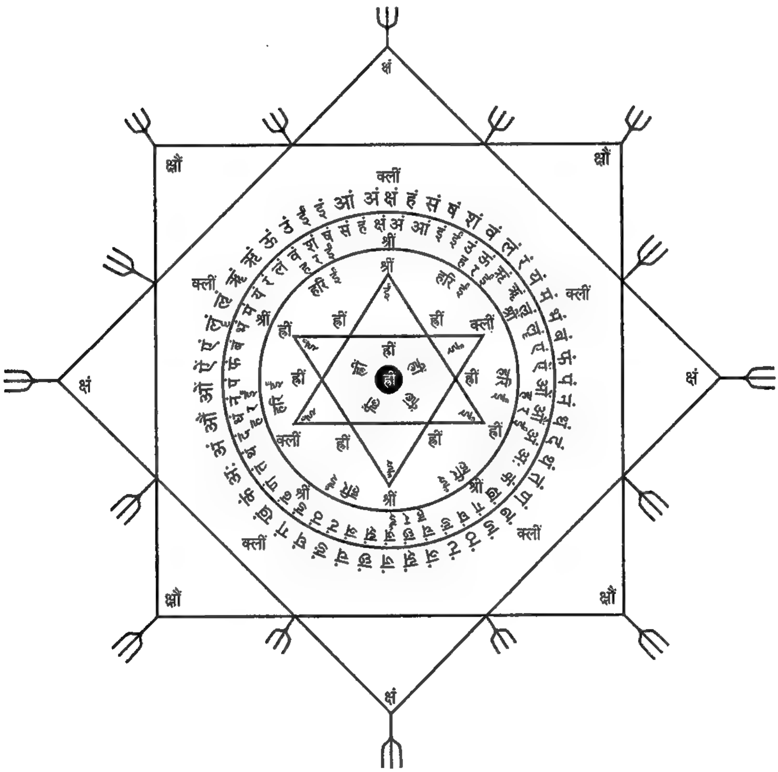
(वही, १०/४५-४८)

भुवनेश्वरी का षड्गुणित यन्त्र

भुवनेश्वरी की पूजा त्रिगुणित यन्त्र के अलावा षड्गुणित यन्त्र में भी की जाती है। आचार्य शंकर ने 'षड्गुणित यन्त्र' के निर्माण की विधि का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार साधक अपनी अंगुलियों के माप से छह अंगुल के अन्तर से तीन वर्तुल बनाये। मध्य वृत्त के बीच में हृल्लेखा बीज 'ह्रीं' लिखे। फिर इस वर्तुल को स्पर्श न करने वाले तथा बाहरी वर्तुल को कुछ-कुछ छू रहे पूर्व, अग्नेय, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य तथा ईशान कोणों वाले दो पुटित त्रिकोण बनाए। इससे छह कोणों का वह्निपुर (षट्कोण) निर्मित होगा। इन छहों कोणों के अन्तरालों में (छह) हृल्लेखा बीज 'ह्रीं' लिखे जाने चाहिये। फिर, मध्य वर्तुल में स्थित 'ह्रीं' बीज के दोनों पार्श्वों में नीचे की ओर साध्य, ऊपर की ओर साधक और उसके द्वारा सम्पन्न किये जा रहे कर्म का नाम लिखना चाहिये। फिर गर्भ वर्तुल के बाहर पांच बार 'ह्रीं', द्वितीय वर्तुल के बाहर पांच बार 'श्रीं' तथा बाह्य वर्तुल के बाहर पांच बार 'क्लीं' लिखना चाहिये। इस अग्निपुर के छहों कोणों में से ऊपरी तीन कोणों में बिन्दु सहित शक्ति बीज 'ह्रीं श्रीं क्लीं' तथा नीचे के तीन कोणों में बिन्दु रहित शक्ति बीज 'ह्री श्री क्लीं' लिखे जाने चाहिये। तत्पश्चात् छः कपोलों में हरि ई लिखकर बाह्य वर्तुल के भीतर अनुलोम क्रम में अकार से

क्षकार पर्यन्त तथा वर्तुल से बाहर प्रतिलोम क्रम में क्षकार से अकार पर्यन्त वर्ण लिखने चाहिये। तदनन्तर परस्पर सम्बद्ध दो भू-कोणों (चतुष्कोणों) का आलेखन कर उसकी चारों मुख्य दिशाओं में नृसिंह बीज 'क्षं' तथा उप दिशाओं वाले कोणों में चिन्तामणि बीज(क्ष्रौं) लिखना चाहिये। इसके बाद भूपुर के बाहर सोलह 'शूलांक' अंकित करके भूपुर के बाहर १२ दलों और ३६ केसरों वाले कमल का निर्माण करना चाहिये।

भुवनेश्वरी का सावरण षड्गुणित यन्त्र



(सन्दर्भ-प्रपञ्चसारतन्त्र - १०/४९-६२)

[मन्त्र - ह्रीं • जपसंख्या - ३२ लाख • आहुति-संख्या - ३२ हजार हवनद्रव्य - गुड़, शहद तथा घृत सहित चन्दन, अगरु, कपूर, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप, दूर्वा]

नोट—मण्डप में आवरण-पूजा में षड्गुणित यन्त्र के भूपुर के बाहर बारह दलों और छत्तीस केसरों वाला कमल निर्मित करना चाहिए।

शक्तिप्रग्रस्तसाध्यं हरशरकलमायावृतं वह्निगेह-
द्वन्द्वास्त्रिप्राप्तमायं प्रतिविवरलसच्छक्तिबद्धं बहिश्च।
कोणोद्यद्दण्डयदण्डित्रिलिपिहरिहराबद्धगण्डं विलोमा-
र्णावीतं कोर्युगाऽष्टोदरगनृहरिचिन्ताश्मकं षड्गुणाख्यम्।।
षडंगुलप्रमाणेन वर्तुलं कर्तुरालिखेत्।
षडंगुलावकाशेन तद्बहिश्च प्रवर्त्तयेत्।।
वर्तुलं तावता भूयस्तद्बहिश्च तृतीयकम्।
मध्यवर्तुलमध्ये तु हृल्लेखाबीजमालिखेत्।।
तृतीयवर्तुलाश्लिष्टमीषच्छिष्टषडस्रकम्।
पुटितं मण्डलं वह्नेरस्पृशन् मध्यवर्तुलम्।।
इन्द्राग्निरक्षोवरुणवाय्वीशान्तस्रकम् लिखेत्।
षट्सु कोणान्तरालेषु हृल्लेखाषट्कमालिखेत्।।
एकैकान्तरितास्तास्तु सम्बध्युरितरेतरम्।
शिखाभिरन्तराभिस्तु बाह्याबाह्याभिरान्तराः।।
मध्यवर्तुलसंस्थाया हृल्लेखायाः कपोलयोः।
अधरे साध्यनामार्णं साधकस्योत्तरे लिखेत्।।
अन्तराग्निश्रियोः कर्म साधकांशे समालिखेत्।
हरमाया पंचकृत्वः स्युर्बहिर्गर्भवर्तुलम्।।
तद्बहिः शरमायाश्च कलमायाश्च तद्बहिः।
लिखेन्मायां बिन्दुमतीं वह्नेकोणेषु षट्स्वपि।।
वह्नेः कोणत्रये श्रीमत्पक्षीये त्रितयं लिखेत्।
शक्तिश्रीकामबीजानां सदण्डं साधकार्णवत्।।
वह्नेस्तु वह्निपक्षीये तान्येवाऽदण्डवन्ति च।
ससाध्यनामवर्णानि स्पष्टनिष्ठानभांजि च।।
बाह्यरेखामन्तरा स्युर्वर्णाः क्रमगताः शुभाः।
तद्बहिः प्रतिलोमाश्च ता स्युर्लेखकपाटवात्।।
ततो विदर्भितं भूमेर्मण्डलद्वयमालिखेत्।
महादिक्षु नृसिंहार्णं चिन्तारत्नाश्रितास्रकम्।।
बहिः षोडशशूलांकं शोभनं व्यक्तवर्णवत्।
एतद्यन्त्रं समालिख्य पद्ममारचयेत् ततः।।
रुचिरं द्वादशदलं षट्त्रिंशत्केसरोज्ज्वलम्।
त्रिवृत्तराशिवीथ्याद्यैः पार्थिवान्तं च मण्डलम्।।

पूर्वोक्तलक्षणोपेतं शुभं दृष्टिमनोहरम्।
एवं कृते षड्गुणिते मण्डले सुमनोहरे।
प्राग्वत्संकल्प्य कलशमर्चयेत्सुसमाहितः।। (वही, १०/४६-६४)

न्यासादि युक्त आवरण-पूजा

उपर्युक्त विधि से निर्मित षड्गुणित यन्त्र में भुवनेश्वरी के पूजनादि के लिये पहले कलश की स्थापना तथा पीठपूजा करके यन्त्र में भगवती की नौ शक्तियों का आवाहन करके 'ह्रीं श्रीं क्लीं' बीजों से षडंगन्यास करना चाहिये। यन्त्र के षट्कोणों के अन्दर गायत्री, सावित्री, सरस्वती, श्री, रति तथा पुष्टि तथा षट्कोण से बाहर ठीक इनके सामने ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, कुबेर, काम तथा गणेश की पूजा करनी चाहिये। फिर उक्त बारह कमल दलों में से प्रत्येक में क्रमशः रक्ता, अनंगकुसुमा, कुसुमातुरा, नित्या, अनंगमदना, मदनातुरा, गौरी, गगना, गगनरेखा, पद्मा, भवप्रमथिनी तथा शशिरेखा नामक बारह शक्तियों की पूजा सम्पन्न करके इनके बाहर अष्ट मातृगण और इनसे बाहर इन्द्रादिक दस दिग्पालों की उनके आयुधों सहित पूजा करनी चाहिये।

अभ्यर्च्य पीठं नव शक्तिकान्तमंगानि बीजेषु च षट्सु भूयः।
गायत्रसावित्रसरस्वतीच यजेदथ श्रीरतिपुष्टिसंज्ञाः।।
ब्रह्माणमथ च विष्णुं महेश्वरं धनदमदनगणनाथान्।
अभ्यर्चयेत्षट्स्वपि वह्वेः कोणेषु तद्बहिः क्रमशः।।
रक्तामनंगकुसुमां कुसुतातुरां च
नित्यामनंगमदनां मदनातुराख्याम्।
गौरीं तथैव गगनां गगनस्य रेखां
पद्मां भवप्रमथिनीं शशिशेखरां च।।
एता द्विषट् प्रतिदलं प्रतिपूज्य शक्ती-
स्तद्बाह्यतो यजतु मातृगणं क्रमेण।
इन्द्रादिकान् बहिरतश्च तदायुधानि
संपूज्य पूर्वविधिनाऽमुमथाऽभिषिंचेत्।। (वही,१०/६५-६८)

भुवनेश्वरी की उपासना का फल

आचार्य शंकर के अनुसार अपनी अनन्य भक्ति तथा अर्चना से भगवती भुवनेश्वरी को प्रसन्न कर लेने वाले साधक के लिये त्रिभुवन में कुछ भी अलभ्य

नहीं रह जाता। विधिपूर्वक जप तथा होमादि के प्रभाव से साधक संसार में विष्णु के समान देवताओं का पूज्य हो जाता है।

योऽमुमर्चयति मुख्यविधानं सिद्धशक्तिरपि संजपहोमैः।
स श्रियो निलयं त्रिदशानां वन्द्यतां व्रजति विष्णुसमानः।।

(वही, १०/६६)

मूलप्रकृति भुवनेश्वरी की उपासना-निरूपण के प्रसंग में शंकर ने भुवनेश्वरी के परम गोपनीय मूलमन्त्र 'ह्रीं' का उद्घाटन तथा महत्त्वपूर्ण त्रिगुणित एवं षड्गुणित यन्त्रों की निर्माण-विधि का सम्यक् विवेचन तो किया ही है, जहां भी उनकी प्रतिपादन शैली में अनबूझ गाम्भीर्य का प्रवेश हुआ है, आचार्य के परम शिष्य पद्मपादाचार्य ने 'विवरण' में उसे सुबोध बनाने का प्रयास किया है।

❋

द्वादशगुणित यन्त्र और भुवनेश्वरी

श्रीबीज प्रधान षट्गुणितयन्त्र में भगवती भुवनेश्वरी की सावरण अर्चना का निरूपण करने के अनन्तर आचार्य शंकर ने रक्षा कर्म में प्रशस्त दुर्गाबीज प्रधान भोग-मोक्षपद द्वादशगुणित महायन्त्र के निर्माण की विधि तथा उसमें भगवती के अर्चाविधान का सांगोपांग वर्णन किया है। उनके अनुसार द्वादशगुणित यन्त्र की रचना के लिये पहले दो अग्निपुरों के द्वन्द्व (परस्पर सम्बद्ध चार त्रिकोणों) का निर्माण किया जाना चाहिये। इस यन्त्र के मध्य में प्रतिलोम क्रम से भूर्भुवादि सात व्याहृतियों से वेष्टित शक्ति बीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। फिर इन चार त्रिकोणों में प्रयुक्त बारह रेखाओं की सन्धियों के अन्तर्भाग में शक्ति बीज 'ह्रीं', बारह कोणों में दुर्गाबीज 'दुं', बारह कपोलों में प्रतिलोम क्रम से गायत्री मन्त्र के दो-दो अक्षर लिखकर सप्त व्याहृतियों से वेष्टित शक्ति बीज ह्रीं के बहिर्भाग में प्रतिलोम क्रम से ५१ वर्णों से आवेष्टित कर दो भूपुरों के रन्ध्रों में चिन्तामणि बीज 'क्ष्रौं' लिखना चाहिये। इस विधि से निर्मित द्वादशगुणिंत यन्त्र में भगवती की अर्चना करने से समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है।

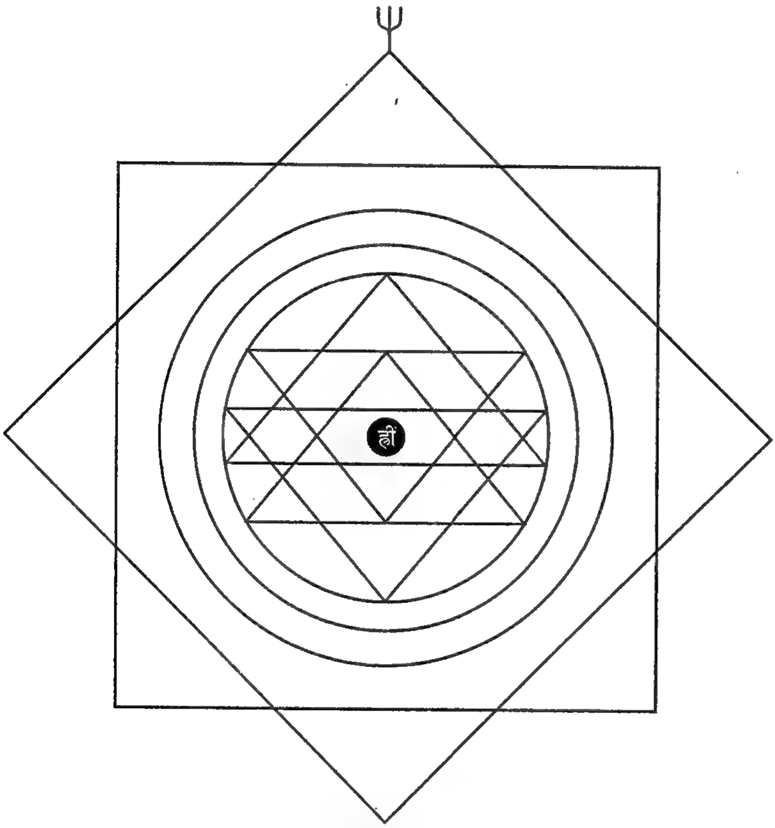
व्याहृत्यावीतशक्तिज्वलनपुरयुगद्वन्द्वसन्ध्युत्थशक्त्या-
वीतं कोणात्तदुर्बीजकमनु च कपोलात्तगायत्रिमन्त्रम् ।
आग्नेय्यावीतमर्णैर्वृतमनुविगतैर्भूपुराभ्यां च रन्ध्रे
क्ष्रौं चिन्तारत्नकं द्वादशगुणितमिदं यन्त्रमिष्टार्थदायि ।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ११/२)

द्वादशगुणित यन्त्र की निर्माण-विधि को और भी स्पष्ट करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि पहले पूर्वोक्त मान के अनुसार तीन वृत्तों का निर्माण किया जाना चाहिये। इसके पश्चात् अन्तःवर्ती वृत्त के मध्य में शक्ति बीज लिखना चाहिये। इसके बाद इस द्वादशगुणित यन्त्र के मध्य वाले वृत्त के बाहर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर बिन्दु युक्त शक्ति-बीज 'ह्रीं श्रीं क्लीं' को दो-दो करके लिखना चाहिये। इसके बाद ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य नामक उप दिशाओं में एक-एक बार शक्तिबीज खिलना चाहिये। तदनन्तर दो अग्निपुरों के कपोलों में लिखित शक्तिबीजों के १२ त्रिकोणों को शूलांकित करना चाहिये। उक्त चार अग्निमण्डलों अर्थात् त्रिकोणों का स्पर्श आन्तरिक वृत्त से

नहीं होना चाहिये। फिर अन्दर वाले वृत्त के बीच में विलोम क्रम से लिखित सप्त व्याहृतियों से वेष्टित शक्तिबीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। इसके बाद पूर्व दिशा वाले (तीन) कोणों में दुर्गा बीजान्त बिन्दु युक्त मायाबीज ''ह्रीं दुः' लिखा जाना चाहिये। इस प्रकार ये शक्तिबीज परस्पर एक-एक के अन्तर से सम्बद्ध होंगे। इसके बाद मध्यवर्ती शक्तिबीज 'ह्रीं' के बाहर के बारह कपोलों में गायत्री मन्त्र के दो-दो अक्षर प्रतिलोम क्रम से लिखे जाने चाहिये। इसके बाद प्रतिलोम क्रम से ही क्षकार से लेकर अकार तक के वर्णों का आवेष्टन करना चाहिये।

भुवनेश्वरी का सावरण द्वादशगुणित यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ११/२-९)

[मन्त्र - ह्रीं • जपसंख्या - ३२ लाख • आहुति-संख्या - ३२ हजार हवनद्रव्य - गुड़, शहद तथा घृत सहित चन्दन, अगरु, कपूर, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप, दूर्वा]

"त्रिष्टुभमिति विलोमेनेत्यर्थ" इति विवरणे।

इसके बाद उक्त तीन भूपुरों में से मध्य तथा बहिर्वर्ती भूपुरों में सिंहाख्य चिन्तामणि मन्त्र 'क्ष्रौं' लिखना चाहिये। इस विधि से निर्मित द्वादशगुणित यन्त्र समस्त दुःख को शान्त करता है। आचार्यों का मत है कि इस प्रकार विधिपूर्वक द्वादशगुणित यन्त्र के निर्माण के बाद इसके बाहर राशिचक्र तथा वीथियों से युक्त षोडशदल कमल वाले मण्डल की रचना करके उस पर विधिपूर्वक कलश की स्थापना की जानी चाहिये।

पूर्वोक्तमानक्लृप्त्या मन्त्री त्रितयं विलिख्य वृत्तानाम्।
विलिखेदन्तवर्तुलमनु शक्तिं स्पष्टबिन्दुनिष्ठानाम्।।
द्वादशमध्यवर्तुलरेखाया बहिरालिखेच्च शक्तीनाम्।
हरियमवरुणधनाधिपदिक्षु द्वे द्वे च ताः क्रमेण स्युः।।
ईशाग्निनिर्ऋतिमरुतां दिक्ष्वेकैकं विलिख्य भूयश्च।
बीजान्तरालनिर्गतशूलांकितकोणषट्कयुगमग्नेः।।
मण्डलयुगयुगलं स्यादस्पृशदान्तरितवर्तुलं विशदम्।
शक्तिं प्रवेष्टयेच्च प्रतिलोमव्याहृतिभिरन्तःस्थाम्।।
रविकोणेषु दुरन्तां मायां विलिखेदथाऽत्र बिन्दुमतीम्।
एकैकान्तरितास्ताः परस्परं शक्तयश्च सम्बध्युः।।
गायत्रीं प्रतिलोमतः प्रविलिखेद्वह्नेः कपोलं बहि-
र्द्वे द्वे चैव लिपी बहिश्च रचयेद् भूयस्तथा त्रिष्टुभम्।
वर्णान् प्रानुगतांश्च भूपरयुगे सिंहाख्यचिन्तामणिं
लिख्याद्यन्त्रमशेषदुःखमनायोक्तं पुरा देशिकैः।।
बहिरथ षोडशपत्रं वृत्तविचित्रं च राशिवीथियुतम्।
विरचय्य मण्डलं पुनरत्र यथोक्तं निधापयेत्कलशम्।। (वही, ११/३-६)

भुवनेश्वरी की अष्टावरण-पूजा

द्वादशगुणित यन्त्र की रचना कर लेने के बाद भगवती भुवनेश्वरी की आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। इस पूजा में ओं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ह्रैं कवचाय हुं, ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रः अस्त्राय फट्' अंगमन्त्रों से प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में हृल्लेखादि पंच शक्तियों की, तृतीय में ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों की, चतुर्थ आवरण में कराली आदि सोलह शक्तियों की, पंचम आवरण में विद्या आदि

बत्तीस शक्तियों की, छठे आवरण में पिंगलाक्षी आदि चौसठ शक्तियों की, सातवें आवरण में इन्द्रादि दस दिक्पालों की तथा आठवें आवरण में वज्रादि आयुधों की अर्चना करनी चाहिये।

आदावंगावरणमनु हृल्लेखिकाद्याश्चतस्रो
ब्रह्माणाद्याः षोडश च विकृतीर्द्वन्द्वसंख्याः क्रमेण ।
सार्धं भूयश्चतसृभिरथो षष्टिभिर्लोकपालैः-
र्वज्राद्यैरष्टममपि समभ्यर्चयेद्भक्तिनम्रः ।। (वही, ११/१०)

द्वादशगुणित यन्त्र में पूज्य शक्तियों के नाम

हृल्लेखाद्य पंच शक्तियां

हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका तथा महोच्छुभा।

हृल्लेखाख्यां गगनां रक्तां च करालिकां महोच्छुष्माम्।...(वही, १०/१७)

ब्रह्माणी आदि अष्ट शक्तियां

ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा चण्डिका।

ब्रह्माणी माहेशी कौमारी वैष्णवी च वाराही।
इन्द्राणी चामुण्डा समहालक्ष्मीश्च मातरः प्रोक्ताः।। (वही, ७/११)

कराल्यादि षोडश शक्तियां

कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, दुर्गा, शची, उषा, लक्ष्मी, श्रु (र) ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति तथा आर्या।

कराली विकराली च उमा देवी सरस्वती।
दुर्गा शची उषा लक्ष्मी श्रु(र)तिः स्मृतिधृती तथा।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडश शक्तयः। (वही, ११/११-१२)

विद्यादि बत्तीस शक्तियां

विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रवीर्या, प्रभा, नन्दा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपालिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, इन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भशुम्भमथिनी, शुम्भमथिनी, महिषासुर-मर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, शूलिनी, पालिनी, अम्बिका तथा ह्लादिनी।

विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहुस्तथा।।
रुद्रवीर्या प्रभा नन्दा पोषणी ऋद्धिदा शुभा।
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकालीकपालिनी।।
विकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी।
निशुम्भुशुम्भुमथिनी महिषासुरमर्दिनी।।
इन्द्राणी चैव रुद्राणी शंकरार्धशरीरिणी।
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी।।
अम्बिका ह्लादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयो मताः। (वही, ११/१२-१६)

पिंगलाक्षी आदि चौसठ शक्तियां

पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, बुद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, माया, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, गायत्री, सावित्री, त्रिदशा, ईश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युत- प्रिया, विमला, अमला, अरुणी, वारुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, सन्ध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, परा, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुरमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशिनश्ना, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, अपरा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवन- पाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगमदना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, असुरभयंकरी, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, वज्ररूपा, शुचिव्रता, वरदा तथा वागीशी।

पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्बुद्धिरेव च।।
श्रद्धा स्वाहा स्वधाख्या च मायाभिख्या वसुन्धरा।
त्रिलोकधात्री गायत्री सावित्री त्रिदशेश्वरी।।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया।
विमला सामला चैव अरुणी वारुणी तथा।।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च।
सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा।।
देवमाता भगवती देवकी कमलासना।
त्रिमुखीसप्तमुख्यौ च सुरासुरविमर्दिनी।।
सुलम्बोष्ठ्यूर्ध्वकेश्यौ च बहुशिश्ना वृकोदरी।
रथरेखाह्वया चैव शशिरेखा तथाऽपरा।।
पुन र्गगनवेगाख्या वेगा च पवनादिका।
भूयो भुवनपालाख्या तथैव मदनातुरा।।

अनंगाऽनंगमदना भूयश्चाऽनंगमेखला।
अनंगकुसुमा विश्वरूपाऽसुरभयंकरी।।
अक्षोभ्यासत्यवादिन्यौ वज्ररूपा शुचिव्रता।
वरदा चैव वागीशी चतुःषष्टिः प्रकीर्तिताः।। (वही,११/१६-२४)

इन्द्रादि दस लोकपाल

इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर, वरुण, अनिल, कुबेर, शिव, अनन्त तथा ब्रह्मा।

इन्द्राग्नियमनिशाचरवरुणानिलधनेशशिवाहिपतिविध्यः।। (वही ६/६१)

वज्रादि दस आयुध

वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूल, चक्र तथा पद्म।

वज्र सशक्तिर्दण्डः खड्गः पाशांकुशो गदाशूलौ।
रथचरणनलिनसंज्ञौ प्रोक्तान्यस्त्राणि लोकपालानाम्। (वही, ६/६३)

जलाभिषेक

साधक को चाहिये कि वह पूर्वोक्त विधि से भगवती की अष्टावरण तथा कलश-पूजा करके कलश में स्थित जल से स्वयं को, अपने पुत्र अथवा विनीत एवं प्रामाणिक शिष्य, आस्तिक, सत्य के प्रति समर्पित, दानी, ब्राह्मणप्रिय तथा कुल को आगे बढ़ाने वाले उत्तम नृपादि का अभिसिंचन करे। आचार्य शंकर के अनुसार यह प्रयोग-विधान समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाला, पवित्र, लक्ष्मीप्रद, आयुःप्रद, शत्रुओं को वश में करने वाला तथा भोग-मोक्षप्रद है।

इष्ट्वा यथोक्तमिति तं कलशं निजं वा
पुत्रं तथाऽऽप्तमपि शिष्यमथाऽभिषिंचेत्।
आस्तिक्ययुक्तमथ सत्यरतं वदान्यं
विप्रप्रियं कुलकरं च नृपोत्तमं वा।।
विधानमेतत् सकलार्थसिद्धिकरं परं पावनमिन्दिरादम्।
आयुःप्रदं वश्यकरं रिपूणां भुक्तिप्रदं मुक्तिफलप्रदं च।।
(वही, ११/२५-२६)

घटार्गल यन्त्र में शक्ति-पूजा

भगवती भुवनेश्वरी की अर्चना-विधि के निरूपण के अनन्तर भगवत्पाद शंकर ने भुवनेश्वरी के अपने आयुध पाश (आं) तथा अंकुश (क्रों) बीजों से

पुटित शक्ति बीज (ह्रीं) के संयोजन से निर्मित घटार्गल यन्त्र में शक्ति की पूजाविधि का निरूपण किया है।

पाशांकुशमध्यगया शक्त्याऽथ जपार्चनहुतादियुतम्।
वक्ष्ये यन्त्रविधानं त्रैलोक्यप्राभृतायमानमिदम्।। (वही, ११/२७)

शंकर के अनुसार आठ दिशाओं में आविर्भूत होने वाले अर्गलों अर्थात् आठ बड़े कोष्ठकों में से पूर्व तथा पश्चिम दिशा के अर्गलों में 'हल् ' युक्त अचों (स्वरों) के पहले के छह अक्षर (ह्लं ह्लां ह्लिं ह्लीं ह्लुं ह्लूं) तथा बाद के छह अक्षर(ह्लें ह्लैं ह्लों ह्लौं ह्लं ह्लः); आग्नेय तथा वायव्य दिशाओं के अर्गलों में 'ह्य' युक्त अचों के (ह्यं ह्यां ह्यिं ह्यियीं, ह्युं ह्यूं एवं ह्यें ह्यैं ह्यों ह्यौं ह्यं ह्यः); दक्षिण तथा उत्तर के अर्गलों में 'हव्' युक्त स्वर (ह्वं ह्वां ह्विं ह्वीं ह्वुं ह्वूं तथा ह्वें ह्वैं ह्वों ह्वौं ह्वं ह्वः) तथा नैर्ऋत्य और ईशान दिशाओं के अर्गलों में 'हर्' से युक्त स्वर वर्ण दो-दो खण्डों में (ह्रः ह्रां ह्रिं ह्रीं ह्रुं ह्रूं एवं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः) लिखने चाहिये।

इसके बाद आठदलों वाला कमलचक्र निर्मित करके कर्णिका के मध्य में त्रिकोण बनाकर इसके भीतर पाश और अंकुश (आवश्यक होने पर साध्य के नाम के सहित) बीज लिखकर इनके मध्य शक्ति बीज ह्रीं लिखना चाहिये। तदनन्तर कर्णिका में ही अंगमन्त्र, केसरों में आत्ममन्त्र 'हंसः' के हकार तथा सकार के मध्य माया 'ई' लिखना चाहिये। तत्पश्चात् आठ कोष्ठों में 'आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं आं' अष्टाक्षर मन्त्र लिखना चाहिये। इसके बाद के आठ कोष्ठकों में 'कामिनि रंजनि स्वाहा' मन्त्र के एक-एक अक्षर और तदनन्तर आठ कोष्ठकों में 'ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा' षोडशाक्षर मन्त्र के दो-दो अक्षर लिखे जाने चाहिये। तदनन्तर अष्टदल कमल को अनुलोम तथा विलोम वर्णों से घेर देना चाहिये। तदनन्तर चतुरस्रद्वय के बाहर कमलपत्र युक्त एक घट निर्मित करके घटार्गल नामक यन्त्र की रचना करनी चाहिये।

अष्टाशात्तार्गलाविर्हलयवरयुताच्पूर्वपाश्चात्यषट्कम्
कोष्ठोद्यत्स्वांगसाष्टाक्षरयुगयुगलाष्टाक्षराख्यं बहिश्च।
मायोपेतात्मयुग्मस्वरमिलितलसत्केसरं साष्टपत्रम्,
पद्मं तन्मध्यपंक्तित्रितयपरिलसत्पाशशक्त्यंकुशार्णम्।।
पाशांकुशावृतमनुप्रतिलोमकैश्च वर्णैः सरोजपुटितेन घटेन चापि।
आवीतमिष्टफलभद्रघटं तदेतत्यन्त्रोत्तमं त्विति घटार्गलनामधेयम्।।

प्राक्प्रत्यगर्गले हलमथ पुनराग्नेयमारुते च हयम् ।
दक्षोत्तरे हवार्णं नैर्ऋतशैवे हरं द्विपंक्तिशो विलिखेत् ।।
विलिखेच्च कर्णिकायां पाशांकुशसाध्ययुतां शक्तिम् ।
आभ्यंतराष्टकोष्ठेष्वंगान्यवशेषितेषु चाऽष्टार्णौ ।।
कोष्ठेषु षोडशस्वथ षोडशवर्णं मनु मन्त्री ।
पद्मस्य केसरेषु च युगस्वरात्मान्वितां तथा मायाम्।।
एकैकेषु दलेषु त्रिशस्त्रिशः कर्णिकागतान् मन्त्रात् ।
पाशांकुशबीजाभ्यां प्रवेष्टयेद् बाह्यतश्च नलिनस्य।।
अनुलोमविलोमगतैः प्रवेष्टयेदक्षरैश्च तद् बाह्ये।
तदनु घटेन सरोजस्थितेन तद्वक्त्रकेऽम्बुजं च लिखेत् ।।

(वही, ११/२८-३४)

घटार्गल यन्त्र निर्माण-विधि

पद्मपाद ने घटार्गल यन्त्र बनाने की विधि बताते हुए कहा है कि पहले दो चतुरस्रों (आठ कोणों) वाले यन्त्र का निर्माण करना चाहिये। फिर इन आठ कोष्ठकों में से प्रत्येक कोष्ठ की दोनों रेखाओं को सीधे इतना बढ़ा देना चाहिये जिससे कि चतुरस्रों से बना प्रत्येक कोष्ठ छोटी दुन्दुभि के आकार में आ जाय। इसके बाद उक्त दुन्दुभियों के दोनों भागों के मध्य दो वृत्त बनाये जायं। फिर दुन्दुभि के बाहरी भाग का निर्माण करने वाली दोनों रेखाओं का स्पर्श कर रहे अर्गलाकार आठ कोष्ठक बनाये जायं और उक्त वृत्तों से बाहर पद्मपुटित घट का अंकन किया जाय। यह घटार्गल यन्त्र का शरीर अर्थात् बाहरी रूपरेखा है।

"चतुरस्रद्वयात्मकमष्टकोणं लिखित्वा कोणाष्टकगतमृजुरेखाद्वयमृजु प्रसारयेत्। यथा रेखाद्वयं मध्ये परस्परलग्नं। क्षुद्रदुन्दुभ्याकारं भवति तथा प्रसार्य दुन्दुभिमध्योभयभागयोः वृत्तद्वयं विधाय बहिष्ठवृत्तस्पृष्टदुन्दुभ्यग्ररेखाद्वयादारभ्य अर्गलसमग्राण्यष्टदलानि विरच्य वृत्तद्वयाद् बहिरम्बुजपुटितं घटं च रचयेत्। इति यन्त्रशरीरनिर्माणप्रकारः"। (वही, ११/२७ पर विवरण)

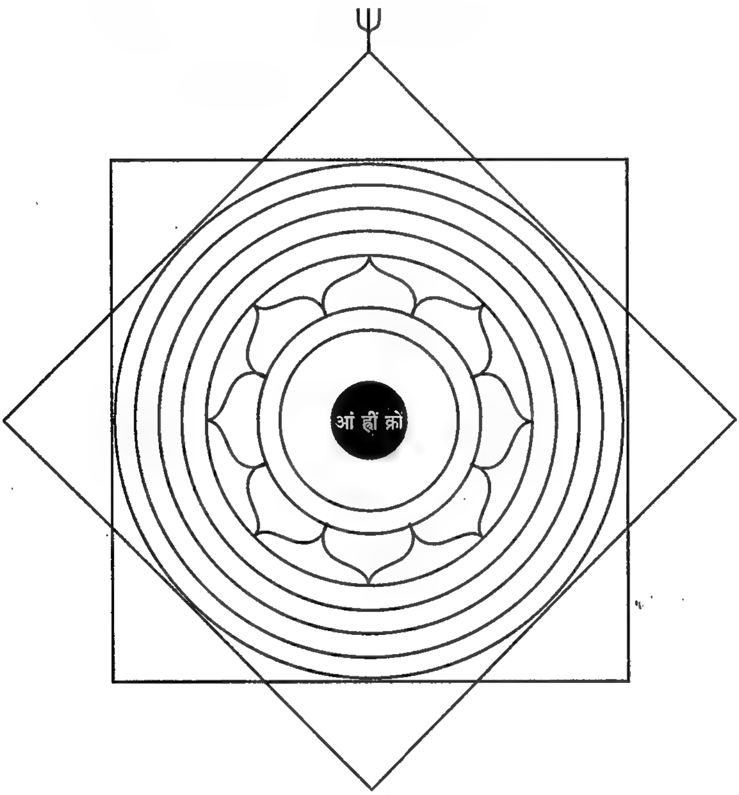
पाश और अंकुश बीज

शंकर ने पाश और अंकुश बीजों का उद्घाटन करते हुए बताया है कि बिन्दु (अनुस्वार) अन्त वाला प्रतिष्ठा (आ) 'आं' पाश बीज तथा निजभू (क्),

दहन (र्) तथा शशधरखण्ड (अनुस्वार) युक्त आप्यायिनी (ओ) 'क्रों' को अंकुश बीज कहा जाता है। इन्हीं दोनों बीजों के अन्य बीजों के साथ संयोजन से भगवती भुवनेश्वरी का अष्टार्ण मन्त्र निर्मित होता है।

बिन्द्वन्तिका प्रतिष्ठा सन्दिष्टा पाशबीजमिति मुनिभिः।
निजभूर्दहनाप्यायिनीशशधरखण्डान्वितोऽंकुशो भवति।। (वही, ११/३५)

भुवनेश्वरी का सावरण घटार्गल यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ११/२८-३४)

[त्र्यक्षर मन्त्र - आं ह्रीं क्रौं • अष्टाक्षर मन्त्र - आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं आं • द्वितीय अष्टाक्षर मन्त्र - 'कामिनी रंजिनि स्वाहा' • षोडशाक्षर मन्त्र - 'ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा' • जपसंख्या - अष्टार्ण या षोडशार्ण मन्त्र २४ लाख आहुति-संख्या - ६ हजार • हवनद्रव्य - दही, शहद एवं घी से सिक्त दूध वाले वृक्षों की ६ हजार समिधाएँ]

नोट—आवरण-पूजा में इस यन्त्र को कमल युक्त कलश पर रखना चाहिए।

भुवनेश्वरी के अष्टार्ण बीज मन्त्र

आचार्य शंकर के अनुसार भुवनेश्वरी का पहला अष्टार्ण मन्त्र पाश, श्री, शक्ति, स्मर, स्मरशक्ति, श्री तथा अंकुश बीज (आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं क्रों) से बनता है।

दूसरा अष्टार्ण मन्त्र 'कामिनि रंजिनि स्वाहा' है।

भुवनेश्वरी का षोडशार्ण मन्त्र

भगवती भुवनेश्वरी का षोडशार्ण मन्त्र शक्ति अर्थात् ह्रीं युक्त 'गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा' है।

पाशश्रीशक्तिस्मरमन्मथशक्तीन्दिरांकुशाश्चेति।
एकं कामिनि रंजिनि ठद्वयमपरं त्विहाष्टवर्णं स्यात्।।
अथ गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सकवचास्त्रठद्वितयैः।
बीजादिकमिदमुक्तं शाक्तेयं षोडशाक्षरं मन्त्रम्।। (वही, ११/३६-३७)

घटार्गल यन्त्र में भुवनेश्वरी की पूजा

घटार्गल यन्त्र का निर्माण करके पूर्वोक्त क्वाथ को घट में भरकर कलश-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। कलशपूजन में हृल्लेखादि पांच शक्ति नामों हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका तथा महोच्छुभा से अंगपूजा सम्पन्न करके ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी आदि अष्टमातरों, इन्द्रादि दश दिग्पालों तथा उनके आयुधों की गन्धादिकों से षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये। घटार्गल यन्त्र में भुवनेश्वरी की सावरण कलश-पूजा के पश्चात् दधि, घृत तथा शहदमिश्रित गन्धपुष्पादिकों दूधवाले वृक्षों की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में तीन सौ हवन पृथक्-पृथक् उक्त तीन मन्त्रों से करके ब्राह्मणों तथा अपने आचार्य को धनधान्यादि दक्षिणा प्रदान करके कलश स्थित जल से अपना तथा अन्यों का अभिषिंचन करना चाहिये।

इतिकृतदलविभूषितमतिरुचिरं लोकनयनचित्तहरम्।
कृत्वोज्ज्वलमथ मण्डलमपि पीठाद्यं पुनरेव परिपूज्य।।
पूर्वप्रोक्तैः क्वाथैरेकेनापूर्य पूजयेत्कलशम्।
हृल्लेखाद्यंगाद्यौ मातृसुरेशादिकौ सकुलिशादी।।
एवं सम्पूज्य देवीं कलशमनु शुभैर्गन्धपुष्पादिकै स्तां
दध्याज्यक्षौद्रसिक्तैस्त्रिशतमथ पृथग् दुग्धवीरुत्समिद्भिः।

हुत्वा दत्त्वा सुवर्णांशुकपशुधरणीर्दक्षिणार्थं द्विजेभ्यः
सम्पूज्याऽऽचार्यवर्यं वसुभिरमलधीः संयतात्माऽभिषिंचेत्।।

(वही, ११/३८-४०)

भुवनेश्वरी मन्त्र के प्रयोग

कवित्व-शक्ति

कलश के अभिमन्त्रित जल से जिस भी व्यक्ति का अभिसिंचन किया जाय, वह कवि हो जाता है तथा धनधान्यादि लक्ष्मी से युक्त तथा कुबेर, सूर्य एवं चन्द्रमा के समान तेजस्वी एवं महिमावान् होकर समाज का अग्रणी बन जाता है।

इति कृतकलशोऽयं सिच्यते येन पुंसा
स भवति कविरेनं नित्यमालिंगित श्रीः।
धनदिनरजनीशैस्तुल्यतेजा महिम्ना
निरुपमचरितोऽसौ देहिनां स्यात्पुरोगः।। (वही, ११/४१)

कान्ति, लक्ष्मी तथा लोकरंजन

मूलप्रकृतिरूपा भुवनेश्वरी के अष्टार्ण अथवा षोडशार्ण मन्त्र का २४ लाख जप करके छह हजार हवन करना चाहिये। हवन के लिये दही, घी तथा शहद से सिक्त दूधवाले वृक्षों की दस हजार समिधाएं अथवा दुग्ध से सिक्त तिलों का उपयोग किया जाना चाहिये। साधक को चाहिये कि वह साधना वाले दिनों में प्रति- दिन के हवन में प्रयुक्त हविष्यान्न का भोजन करे। २४ लाख मन्त्र जप का विधान पूर्ण हो जाने के बाद प्रतिदिन उक्त मन्त्र का एक हजार जप किया जाना चाहिये। शक्ति की अर्चना की उपर्युक्त विधि से शक्ति की अर्चना करने से साधक को कान्ति, लक्ष्मी, यश तथा लोकरंजन की शक्ति के साथ ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जपेच्चतुर्विंशतिलक्षमेवं सुयन्त्रितो मन्त्रवरं यथावत्।
हविष्यभोजी परिपूर्णसंख्ये जपे पुनर्होमविधिर्विधेयः।।
पयोद्रुमाणां च समित्सहस्रषट्कं दधिक्षौद्रघृतावसिक्तम्।
तिलैश्च तावज्जुहुयात्पयोक्तैर्द्विजोत्तमानभ्यवहारयेच्च।।
गुरुमपि परिपूज्य कांचनाद्यैर्जपतु च मन्त्रमथो सहस्रमात्रम्।
भजतु च दिनशोऽमुमर्चनाया विधिविहितं विधिमादरेण भूयः ।।
संक्षेपतो निगदितो विधिरर्चनायाः शक्तेरयं सकलसंसृतिमोचनाय।
कान्त्यै श्रिये च यशसे जनरंजनाय सिद्ध्यै प्रसिद्धमहसोऽस्य परस्य धाम्नः।।

(वही, ११/४२-४५)

यन्त्रलेखन द्रव्य

समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये उपर्युक्त त्रिगुणित, षड्गुणित, नवयोनि, द्वादशगुणित तथा घटार्गल आदि यन्त्रों का आलेखन गजमद, कस्तूरी, केसर तथा सुगन्धित गोरोचन से मिश्रित अलक्तक (महावर) अर्थात् लाक्षा रस (राक्षा लाक्षा जतु क्लीबे यावोऽलक्तो द्रुमामयः इत्यमरकोषे) से करना चाहिये।

गजमृगमदकाश्मीरैर्मन्त्रितमः सुरभिरोचनोपेतैः।
विलिखेदलक्तकरसालुलितैर्यन्त्राणि सकलकार्यार्थी।। (वही, ११/४६)

वशीकरण-प्रयोग

रात्रि के समय मधुरत्रय से युक्त पटु अर्थात् चन्दन और राजी (पीली सरसों) का 'आं ह्रीं क्रों' मन्त्र से हवन करने से उर्वशी जैसी अत्यन्त सुन्दर नारियां भी साधक के वश में हो जाती हैं।

राज्या पटुसंयुतया सपाशशक्त्यंकुशेन मन्त्रेण।
स्वाद्वक्तयाऽभिजह्वन् निश्युर्वशीमथो वशी वशयेत्।। (वही, ११/४७)

उपर्युक्त विधान से भगवती भुवनेश्वरी की अर्चना करने के साथ ही साधक को चाहिये कि सिद्धिप्राप्ति के लिये वह सर्वदा निम्नोक्त स्तोत्र से भगवती की स्तुति किया करे।

एभिर्विधानैर्भुवनेश्वरीं तां समर्च्य सिद्ध्यै तु जपंश्च मन्त्री।
स्तुत्याऽनया स्तौतु सदा समग्रप्रीत्यै समस्तार्तिविभंजिकायाः।।
(वही, ११/४८)

शंकरकृत भुवनेश्वरी-स्तुति

प्रसीद प्रपंचस्वरूपे प्रधाने प्रकृत्यात्मके प्राणिनां प्राणसंज्ञे।
प्रणोतुं प्रभो प्रारभे प्रांजलिस्त्वां प्रकृत्याऽप्रतर्क्ये प्रकामप्रवृत्ते।।४६।।

हे प्रपंचस्वरूपे ! प्रधाने ! प्रकृतिस्वरूपे ! प्राणियों की प्राणरूपे ! स्वभाव से ही अतर्क्यरूपे ! स्वेच्छानुसार जगत् की सृष्ट्यादि में प्रवृत्त होने वाली हे भगवति ! करबद्ध मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, आप मुझ पर प्रसन्न हों।

स्तुतिर्वाक्यबद्धा पदात्मैव वाक्यं, पदं त्वक्षरात्माऽक्षरं त्वं महेशि।
ध्रुवं त्वां त्वमेवाऽक्षरैस्त्वन्मयैस्तोष्यसि त्वन्मयी वाक्प्रवृत्तिर्यतः स्यात्।।

हे परमेश्वरि ! अपनी वाणी से मैं जो स्तुति कर रहा हूं, वह वाक्यबद्ध है।

वाक्य पदों से बनते हैं, पद अक्षरात्मक होते हैं और आप स्वयं अक्षरात्मिका हैं। अतः स्पष्ट है कि अक्षररूपा स्वयं आप स्वयं की ही स्तुति कर रही हैं। क्योंकि समस्त वाक्यप्रवृत्ति आप ही हैं।

अजाधोक्षजत्रीक्षणाश्चापि रूपं परं नाभिजानन्ति मायामयं ते।
स्तुवन्तीशि त्वां त्याममी स्थूलरूपां तदेतावदम्बेह युक्तं ममापि।।५१।।

हे अम्बिके ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आपके मायामय स्वरूप को यथार्थतः नहीं जानते। इसलिये वे आपके इस स्थूल स्वरूप की स्तुति स्थूलाक्षरों से ही करते हैं। इसी प्रकार हे जननि ! मैं भी आपकी स्तुति कर रहा हूं।

नमस्ते समस्तेशि बिन्दुस्वरूपे नमस्ते रव(पर)त्वेन तत्त्वाभिधाने।
नमस्ते महत्त्वं प्रपन्ने प्रधाने नमस्ते त्वहंकारतत्त्वस्वरूपे।।५२।।

समस्त ब्रह्माण्ड की ईश्वरी आपको प्रणाम। हे बिन्दुस्वरूपे ! आपको प्रणाम। परध्वनितत्त्वरूपे आपको प्रणाम । महत् तत्त्वमयि ! प्रकृतिस्वरूपे आपको प्रणाम। हे अहंकारतत्त्वस्वरूपे आपको प्रणाम।

नमः शब्दरूपे नमो व्योमरूपे नमः स्पर्शरूपे नमो वायुरूपे।
नमो रूपतेजोरसाम्भःस्वरूपे नमस्तेऽस्तु गन्धात्मिके भूस्वरूपे।।५३।।

हे शब्दस्वरूपिणि ! आपको नमन । व्योमस्वरूपिणि ! आपको नमन । स्पर्शस्वरूपिणि आपको नमन। वायुस्वरूपिणि आपको नमन। रूपगुणात्मक तेजस्स्वरूपे आपको नमन। रसगुणात्मक जलस्वरूपे आपको नमन। गन्ध-गुणात्मिके पृथ्वीस्वरूपे आपको नमन।

नमः श्रोत्रचर्माक्षिजिह्वाख्यनासास्यवाक्पाणिपत्पायुसोपस्थरूपे।
मनोबुद्ध्यहंकारचित्तस्वरूपे विरूपे नमस्ते विभो विश्वरूपे।।५४।।

श्रोत्र, त्वक्, अक्षि, जिह्वा, मुख, नासा, वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थस्वरूपे भगवति आपको नमस्कार। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त स्वरूपे आपको नमस्कार । अरूपिणि ! विश्वरूपिणि ! प्रभवरूपिणि! आपको नमस्कार।

रवित्वेन भूत्वान्तरात्मा दधासि प्रजाश्चन्द्रमस्त्वेन पुष्णासि भूयः ।
दहस्यग्निमूर्तिं वहन्त्याहुतिं वा महादेवि तेजस्त्रयं त्वत्त एव।।५५।।

हे भगवति ! आप ही अपने सूर्यात्मकस्वरूप से प्राणियों में प्राण का संचार करती हो, आप ही अपने चन्द्रस्वरूप से प्राणियों का पोषण करती हो, आप ही

अपने अग्निमय स्वरूप से जगत् का दहन तथा हवि का वहन करती हो। इस प्रकार आपही सूर्य, चन्द्र तथा अग्निरूप तेजस्त्रयस्वरूपा हो।

चतुर्वक्त्रयुक्ता लसद्धंसवाहा रजःसंश्रिता ब्रह्मसंज्ञां दधाना।
जगत्सृष्टिकार्या जगन्मातृभूते परं त्वत्पदं ध्यायसीशि त्वमेव।।५६।।

हे जगदीश्वरि! आप ही चार मुखों वाली, हंसवाहिनी, रजोगुणा ब्रह्म-स्वरूपिणी संसार की सृष्टि करने वाली जगत् की माता हो और आप स्वयं ही स्वयं का ध्यान करती हो।

विराजत्किरीटा लसच्चक्रशंखा वहन्ती च नारायणाख्यां जगत्सु।
गुणं सत्वमास्थाय विश्वस्थितिं यः करोतीह सोऽंशोऽपि देवि त्वमेव।।

हे मातः ! जिनके माथे पर मुकुट सुशोभित हो रहा है, जिनके हाथों में चक्र और शंख विराजमान हैं, जो सत्त्वगुण का आश्रय लेकर विश्व को स्थित कर रही है नारायण नामक वह शक्ति आप ही हैं।

जटाबद्धचन्द्राहिगंगा त्रिनेत्रा जगत्संहरन्ती च कल्पावसाने।
तमःसंश्रिता रुद्रसंज्ञां दधाना वहन्ती परश्वक्षमाले विभासि।।५८।।

हे जननि ! जिनकी जटाओं में गंगा लिपटी हैं, जिसके तीन नेत्र हैं, जो तमोगुण का आश्रय लेकर सर्ग के अन्त में संसार का संहार करती हैं, हाथों में परशु और अक्षमाला से सुशोभित वह रुद्र नामक शक्ति आप ही हो।

सचिन्ताक्षमाला सुधाकुम्भलेखाधरा त्रीक्षणार्धेन्दुराजत्कपर्दा।
सुशुक्लांशुकाकल्पदेहा सरस्वत्यपि त्वन्मयैवेशि वाचामधीशा।।५६।।

हे विद्यास्वरूपे ! जो हाथों में चिन्तामणि, अक्षमाला और अमृतकुम्भ धारण किये हैं, जो तीन नेत्रों वाली हैं, जिनकी केशराशि में अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा है, जिन्होंने शरीर पर सुन्दर श्वेतवस्त्र धारण कर रखे हैं, वाणी की अधीश्वर वह सरस्वती आप ही तो हैं।

लसच्छंखचक्रा चलत्खड्गभीमा नदत्सिंहवाहा ज्वलत्तुंगमौलिः।
द्रवद्दैत्यवर्गा स्तुवत्सिद्धसंघा त्वमेवेशि दुर्गाऽपि सर्गादिहीने ।।६०।।

हे परमेश्वरि ! जिनके हाथों में शंख, चक्र और दमकता हुआ भयंकर खड्ग विराजमान है, जो गर्जना कर रहे सिंह पर विराजमान हैं, जिनके उभरे हुए माथे पर वह्निमय तीसरा नेत्र प्रज्ज्वलित हो रहा है, जिनके रौद्र रूप को देख कर

दैत्य समूह भाग रहा है और उसी समय सिद्धगण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, उत्पत्ति, स्थिति और विनाश से रहित वह परा शक्तिरूपी दुर्गा भी तो आप ही हो।

पुरारातिदेहार्धभागा भवानी गिरीन्द्रात्मजात्वेन यैषा विभाति।
महायोगिवन्द्या महेशा सुनाथा महेश्यम्बिका तत्त्वतस्त्वन्मयैव।।६१।।

भगवान् शंकर की अर्ध देहात्मिका भवानी नामक जो हिमगिरि की सुपुत्री पार्वती के रूप में सुशोभित हैं, महायोगियों की अभिवन्द्य स्वामिनी माहेश्वरी वह अम्बिका भी तो वास्तव में आप ही हैं।

लसत्कौस्तुकोद्भासिते व्योमनीले वसन्तीं च वक्षस्थले कैटभारेः।
जगद्वल्लभां सर्वलोकैकनाथां श्रियं तां महादेव्यहं त्वामवैमि।।६२।।

कौस्तुभमणि से विभासमान आकाशवर्णी महाविष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करने वाली, विश्वप्रिया, समस्त जगत् की स्वामिनी भगवती लक्ष्मी भी आप ही हो।

अजाद्रीड्गुहाब्जाक्षपोत्रीन्द्रकाणां महाभैरवस्यापि चिह्नं वहन्त्यः।
विभो मातरः सप्त* तद्रूपरूपाः स्फुरन्त्यस्वदंशा महादेवि ताश्च।।६३।।

हे महादेवि ! ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार कार्तिकेय, कमलनयन विष्णु, वराह, इन्द्र और महाभैरव के चिह्नों से सुशोभित ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी तथा चामुण्डा नामक सप्तमातृशक्तियों के रूप में आपकी ही कलाएं स्फुरित हो रही हैं।

समुद्यद्दिवाकृत्सहस्राभभासा सदा सन्तताशेषविश्वावकाशे।
लसन्मौलिबद्धेन्दुलेखे सपाशांकुशाभीत्यभीष्टात्तहस्ते नमस्ते।।६४।।

उदित हो रहे हजारों सूर्यों की आभा से विश्व-विवर को प्रकाशित करने वाली, सिर पर चन्द्रधारिणी, हाथों में पाश, अंकुश, अभय तथा वरद मुद्राधारिणी भगवति ! आपको नमस्कार है।

प्रभा कीर्तिकान्ती दिवारात्रिसन्ध्याः क्रियाशा तमिस्रा क्षुधाबुद्धिमेधाः।
धृतिर्वाङ्मतिः सन्नतिः श्रीश्च भ(श)क्तिस्त्वमेवेशि येऽन्ये च शक्तिप्रभेदाः।।

---

* ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमातरः।। (आर्षसंज्ञावली)

हे ईश्वरि ! प्रभा, कीर्ति, कान्ति, दिवा, रात्रि, सन्ध्या, क्रिया, आशा, तमिस्रा, क्षुधा, बुद्धि, मेधा, धृति, वाक्, मति, सन्नति, श्री तथा भक्ति आदि शक्ति के जितने रूप हैं, वे सब आपके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं।

हरे बिन्दुनादैः सशक्त्याख्यशान्तैर्नमस्तेऽस्तु भेदप्रभिन्नेरभिन्ने।
सदा सप्तपाताललोकाचलाब्धिग्रहद्वीपधातुस्वरादिस्वरूपे।।६६।।

हे हरपत्नि ! हकार, रकार, इकार, बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्त नामक भेदों की अभेदरूपा 'ह्रींकार' रूपिणी आपको नमस्कार है। हे सप्तात्मिके ! अतलादिरूप सप्त पाताल, मेरु आदि सप्त अचल, क्षारादि सप्त सागर, सूर्यादि सप्तग्रह, जम्बू आदि सप्त द्वीप, भूर्भुवादिरूप सप्तलोक, त्वगादि सप्तधातु तथा षड्ज आदि सप्त स्वरों के रूप में स्वयं आप ही वर्तमान हैं।

नमस्ते समस्ते समस्तस्वरूपे समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतशक्ते।
श्रितस्थूलसूक्ष्मस्वरूपे महेशि स्मृते बोधरूपेऽप्यबोधस्वरूपे।।६७।।

हे पूर्णमयि ! समस्तविश्वमयि ! समस्त पदार्थों में अनुस्यूत शक्तिरूपे ! स्थूल-सूक्ष्म समस्त पदार्थों की आश्रयरूपे ! स्मृतिरूपे ! ज्ञानरूपा होते हुए भी अज्ञेयस्वरूपे ! हे माहेश्वरि ! आपको नमस्कार।

मनोवृत्तिरस्तु स्मृतिस्ते समस्ता तथा वाक्प्रवृत्तिः स्तुतिः स्यान्महेशि।
शरीरप्रवृत्तिः प्रणामक्रिया स्यात् प्रसीद क्षमस्व प्रभो सन्ततं मे।।६८।।

हे महेशि ! मेरी समस्त मनोवृत्तियां आपकी स्मृतिमयी, वाणी आपकी स्तुतिमयी, शारीरिक क्रियाएं आपके नमनमय हों। हे भगवति! आप मुझ पर सर्वदा प्रसन्न रहें और हमें क्षमा करती रहें।

जो व्यक्ति भगवती भुवनेश्वरी के हृल्लेखा मन्त्र का जप, हवनादि अर्चना की विशेष विधियों का अनुसरण करता हुआ इस स्तोत्र से आदर के साथ भगवती पराशक्ति की स्तुति करता है, वह इस लोक में अतुलित ऐश्वर्य का उपभोग करता है तथा मृत्यु के अनन्तर पराशक्ति के परम धाम को प्राप्त होता है।

हृल्लेखाजपविधिमर्चनाविशेषानेतांस्तां स्तुतिमपि नित्यमादरेण।
योऽभ्यस्येत् स खलु परां श्रियं च गत्वा शुद्धं तं व्रजति परं परस्य धाम्नः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ११/४६-६६)

❋

15

महालक्ष्मी-साधना

भगवती रमा क्रियाशक्तिप्रधान एक (श्रीं) बीजात्मिका परा शक्ति हैं। इनका प्रचलित नाम लक्ष्मी या महालक्ष्मी है। भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये रमा की साधना परमावश्यक है। लक्ष्मी धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली देवी हैं। इनके बिना व्यक्ति का जीवन नारकीय हो जाता है। भगवत्पाद शंकर ने श्रीं मन्त्र की साधना में न्यास, जप, पूजन तथा हवन आदि की आवश्यक विधियों, विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न प्रयोगों तथा उससे प्राप्त होने वाले फलों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने महालक्ष्मी के विभिन्न स्वरूपों की साधना के साथ ही श्रीसूक्त-उपासना की विधि का सांगोपांग निरूपण किया है।

श्रीमन्त्र का स्वरूप

शंकर के अनुसार अनल (र) से प्रदीप्त, वामनेत्र (ई) से युक्त, चन्द्रखण्ड (अनुस्वार) सहित, विलोम क्रम से आकाश (ह) से चतुर्थ (श) वर्ण अर्थात् 'श्रीं' महालक्ष्मी का मन्त्र है। यह मन्त्र साधकों के समस्त मनोरथों को कल्पवृक्ष की भांति पूर्ण करने वाला है।

वियत्तुरीयस्तु विलोमतोऽनलप्रदीपितो वामविलोचनान्वितः।
सचन्द्रखण्डः कथितो रमामनुर्मनोरथावाप्तिमहासुरद्रुमः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १२/२)

'श्रीं' मन्त्र के न्यासादि

रमा के 'श्रीं' महामन्त्र की साधना में ऋष्यादि न्यास के लिये आचार्य शंकर ने बताया है कि 'श्रीं' मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्दस् निवृत्, देवता भगवती श्री स्वयं ही हैं। विवरणकार के अनुसार 'श्रीं' मन्त्र का बीज शं तथा शक्ति ईं है। इसी प्रकार इस मन्त्र की षडंगन्यास विधि का निर्देश करते हुए शंकर ने बताया है कि इस मन्त्र के मूल बीज 'श्र' के साथ का सोलह स्वरों में से क्रमशः दृग् दूसरे अक्षि कर्ण, इन (सूर्य) तथा मनु (दूसरे, चौथे, छठे, बारहवें तथा चौदहवें) स्वरों एवं अनल (र) के योग से (श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं) करना चाहिये।

'शं बीजं ईं शक्तिः' (वही, विवरण)

ऋषिर्भृगुश्छन्दसि चोदिता निवृत् समीरिता श्रीरपि देवता पुनः।
दृगक्षिकर्णेनमनुस्वरानलान्वितेन चाऽस्य विहितं षडंगकम्।।

(वही, १२/३)

यहां मन्त्र के ऋषि आदि का उल्लेख तो स्पष्ट है, लेकिन षडंगन्यास के लिय शंकर द्वारा कथित 'दृगक्षिकर्णेन मनुस्वरानलान्वितेन' अंश में जो दृग्, अक्षि और कर्ण शब्द आये हैं, उनका सीधा तात्पर्य स्वरों की स्थान-संख्याओं से है। दृग् और अक्षि दोनों का अर्थ आंख' है। आंखें दो होती हैं। इसी प्रकार कान भी दो ही होते हैं। 'इन' सूर्य को कहते हैं और सूर्य १२ हैं। १२वां स्वर ऐ है। 'मनु' चौदहवें स्वर 'औ' को कहते हैं। इस प्रकार षडंगन्यास में सन्दर्भ में दूसरे, फिर उससे दूसरे, पुनः उससे दूसरे फिर बारहवें और अन्त में चौदहवें (क्रमशः आ ई ऊ ऐ और औ) स्वरों की ओर संकेत किया गया है।

शाक्तप्रमोद में वर्णित भगवती कमला (जो श्री ही हैं) की साधना में 'अग्न्यादिकेसरेषु मध्ये दिक्षु श्रां हृदयाय नमः' का उल्लेख है। इससे यह भी संकेत है कि श्रीसाधना का षडंगन्यास 'श्र' में दीर्घ स्वरों का क्रमशः प्रयोग करके किया जाना चाहिये।

शंकर द्वारा संकेतित न्यासों के रूप निम्नांकित होंगे—

ऋष्यादि न्यास

भृगवे ऋषये नमः (शिरसि), निवृत् छन्दसे नमः (मुखे),
श्रीदेवतायै नमः (हृदि), शं बीजाय नमः (गुह्ये)
ईं शक्तये नमः (पादयोः)

षडंगन्यास

श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्,
श्रैं कवचाय हुम्, श्रौं अस्त्राय फट्

रमा का ध्यान

श्री की साधना में षडंगन्यास के पश्चात् अभय तथा वरद मुद्रा वाले हाथों में कमल धारण करने वाली, तपे हुए परिशुद्ध स्वर्ण के समान कान्ति तथा शुभ्र आभावाली, चार हाथियों द्वारा अपने शुण्डों में पकड़े गये घटों में स्थित जल से अभिषिक्त हो रही, केशकलापों में बहुमूल्य रत्न धारण करने वाली, निर्मल वस्त्र

तथा ऋतुज (छहों ऋतुओं में प्राकृतिक रूप से खिलने वाले पुष्पों के पराग आदि से निर्मित लेपों का) आलेपन करने वाली, कमलपुष्प की पंखुड़ियों के समान आयत और रक्ताभ नेत्रों वाली, पद्मनाभ भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली, कल्याणमयी, कमलवासिनी श्री का ध्यान करना चाहिये।

भूयाद् भूयो द्विपद्माभयवरदकरा तप्तकार्तस्वराभा
शुभ्राभ्राभेभयुग्मद्वयकरधृतकुम्भाद्भिरासिच्यमाना।
रत्नौघाबद्धमौलिर्विमलतरदुकूलार्तवालेपनाढ्या,
पद्माक्षी पद्मनाभोरसि कृतवसतिः पद्मगा श्रीः श्रिये वः।।

(वही, १२/४)

जप एवं हवन

दीक्षित साधक को साधना के दिनों में स्त्री-सम्पर्क से दूर रहना चाहिये। उसे दिन-रात आदरपूर्वक देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान करते हुए 'श्रीं' मन्त्र का १२ लाख जप करना चाहिये। जप पूर्ण हो जाने के बाद श्रीं मन्त्र से ही शहद, दुग्ध (शर्करा) तथा घी (त्रिमधुर) से युक्त कमलों या तिलों की १२ हजार आहुतियां बिल्व की समिधाओं से प्रज्ज्वलित अग्नि में देनी चाहिये।

संदीक्षितोऽथ गुरुणा मनुवर्यमेनं सम्यग् जपेन्निशितधीर्दिननाथलक्षम्।
अभ्यर्चयन्नहरहः श्रियमादरेण मन्त्री सुशुद्धचरितो रहितो वधूभिः।।
जपावसाने दिनकृत्सहस्रसंख्यैः सरोजैः मधुरत्रयाक्तैः।
हुनेत्तितैर्वा विधिनाऽथ बैल्वैः समिद्वरैःमन्त्रिवरः त्रिभिर्वा।।

(वही, १२/५-६)

विवरण के अनुसार बाह्य पूजा में निर्दिष्ट विधि से पीठ पर अष्टदल कमल का निर्माण करके तथा आन्तरिक पूजा में आठ दलों वाले हृदय कमल (अनाहत) में (मूर्तिं हृदयकमले तदभेदेनेत्यर्थः इति विवरणे) 'ओं श्रीं देव्यासनाय नमः' मन्त्र से पीठपूजा तथा 'ओं श्रीं देवीमूर्तये नमः' मन्त्र से देवी की मूर्ति की पूजा करनी चाहिये।

'श्रीं श्रीदेव्यासनाय नमः। श्रीं श्रीदेवीमूर्तये नमः।
इति पीठमूर्तिमन्त्रौ। रमाया नव शक्तय इति।
तासु श्रीबीजयोग उक्तः'। (वही, १२/७-८ पर विवरण)

चतुरावरण श्री पूजन यन्त्र

हवन-विधि सम्पन्न हो जाने के बाद पूजापीठ पर निर्मित 'रमा यन्त्र' पर स्थापित कलश में भगवती श्री की उनकी विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि, कीर्ति, सन्नति, व्युष्टि, उत्कृष्टि तथा ऋद्धि नामक नौ शक्तियों के साथ षोडशोपचार पूजा की जानी चाहिये। इस पूजा में रमा की नौवीं शक्ति ऋद्धि की अर्चना कर्णिका में श्रीं बीज के साथ की जानी चाहिये।

भगवती श्री की पूजा के लिये यन्त्र की निर्माण-विधि का उल्लेख भी आचार्य शंकर ने किया है। उनके अनुसार पहले आठ दलों वाले 'रुचिर' कमल का निर्माण करके उसे तीन वृत्तों से घेर देना चाहिये। यहां 'रुचिर' का तात्पर्य कर्णिका के बीच 'श्रीं' बीज का योग है अर्थात् अष्टदल कमल की कर्णिका में 'श्रीं' बीज लिखना चाहिये। फिर इसके बाहर बारह राशिचक्र का अंकन करना चाहिये।

अष्टदल कमल की कर्णिका के मध्य 'श्रीं', कर्णिका में ही नौ शक्तियों, केसरों वाले प्रथम आवरण में अंगदेवताओं, अष्टदल वाले द्वितीय आवरण में पूर्वादि मुख्य दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दमक, सलिल, गुग्गुलु तथा कुरुण्डक नामक आठ मूर्तियों, आग्नेयादि उपदिशाओं में लक्ष्मी के चार हस्तियों, कर्णिका स्थित 'श्रीं' बीज के दोनों पार्श्वों में शंख एवं पद्म नामक निधियों, तृतीय आवरण में वलाकी, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मालिका, शंकरी तथा वसुमालिका नामक आठ शक्तियों तथा अन्तिम चतुर्थावरण में दिग्पालों की निम्नांकित मन्त्रों से षोडशोपचार अर्चना करनी चाहिये—

कर्णिका के मध्य में—

'श्रीं' श्रियै नमः'

कर्णिका में 'श्रीं' बीज के चारों ओर—

''श्रीं विभूत्यै नमः, श्रीं उन्नत्यै नमः,
श्रीं कान्त्यै नमः, श्रीं सृष्ट्यै नमः,
श्रीं कीर्त्यै नमः, श्रींसन्नत्यै नमः,
श्रीं व्युष्ट्यै नमः, श्रीं उत्कृष्ट्यै नमः''

मध्य के 'श्रीं' बीज के नीचे—

"श्रीं ऋद्ध्यै नमः"।

कर्णिका की केसर वाले प्रथम आवरण में आग्नेयादि दिशाक्रम से—

"श्रीं श्रां हृदयाय नमः, श्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा,
श्रीं श्रूं शिखायै वषट्, श्रीं श्रैं कवचाय हुम्,
श्रीं श्रौं अस्त्राय फट्"

द्वितीयावरण के अष्टदल कमलों में पूर्वादिक्रम से—

"वासुदेवाय नमः, संकर्षणाय नमः,
प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः"

फिर आग्नेयादि उपदिशाक्रम में—

"दमकाय नमः, सलिलाय नमः,
गुग्गुलाय नमः, कुरुण्टकाय नमः"

श्रीं के दाहिनी तथा बांयी ओर क्रमशः—

"शंखनिधये नमः, पद्मनिधये नमः"

तदनन्तर भगवती के दोनों ओर उन्हें अभिषिक्त करने वाली चार हस्तियों की—

"इभेभ्यो नमः"

तदनन्तर कमलदलों के अग्र भाग वाले तृतीय आवरण में 'श्रीं' बीज के योग के साथ (तासु श्रीबीजयोग उक्त इति विवरणे) भगवती

"श्रीं वलाक्यै नमः, श्रीं विमलायै नमः,
श्रीं कमलायै नमः, श्रीं वनमालिकायै नमः,
श्रीं विभीषिकायै नमः, श्रीं मालिकायै नमः,
श्रीं शंकर्य्यै नमः, श्रीं वसुमालिकायै नमः"।

फिर इस तृतीय आवरण के वृत्त से बाहर चतुर्थ आवरण में पूर्वादि क्रम से—

"इन्द्राय नमः, अग्नये नमः, यमाय नमः, निर्ऋतये नमः,
वरुणाय नमः, अनिलाय नमः, कुबेराय नमः, शिवाय नमः,
अनन्ताय नमः (अधः), ब्रह्मणे नमः, (ऊर्ध्वे)"

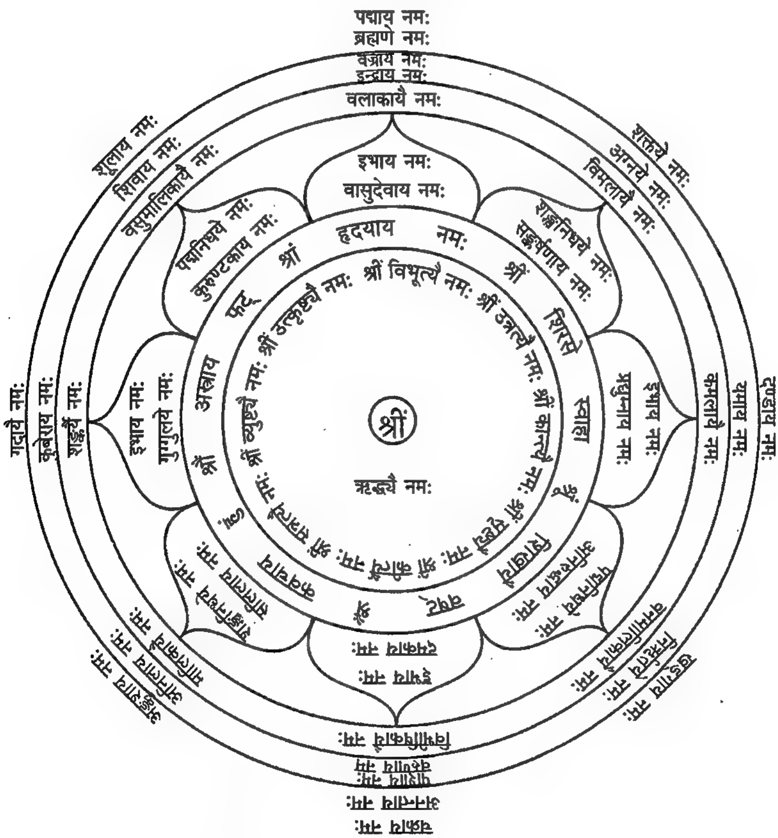
दस दिक्पालों के साथ—

"वज्राय नमः, शक्तये नमः, दण्डाय नमः, खड्गाय नमः,
पाशाय नमः, अंकुशाय नमः, गदायै नमः, शूलाय नमः,
चक्राय नमः, पद्माय नमः"

मन्त्रों से इनके अस्त्रों के साथ ही आवरण-पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये।

"कर्णिकामध्ये श्रीबीजयोगो रुचिरत्वम्"। (वही, १२/७ पर विवरण)

श्रीं बीजात्मक चतुर्व्यूह रमा यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/७-८, ७-१२)

**[मन्त्र - 'श्रीं' • जपसंख्या - १२ लाख • आहुति-संख्या - १२ हजार
हवनद्रव्य - त्रिमधुर त्रिमधुरसिक्त कमलपुष्प,
तिल अथवा तीनों का मिश्रण]**

रुचिराष्टपत्रमथ वारिरुहं गुणवृत्तराशिचतुरस्रयुतम्।
प्रविधाय पीठमपि तत्र यजेन्नवशक्तिभिः सह रमां च ततः।।
विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः।
व्युष्टिरुत्कृष्टिर्ऋद्धिश्च रमाया नव शक्तयः।।
आवाह्य सम्यक्कलशे यथावत् समर्चनीया विधिना रमा सा।
जप्त्वा यथाशक्ति पुनर्गुरुस्तु तं सेचयेत् संयतमात्मशिष्यम्।।
अंगैः प्रथमावृत्तिरपि मूर्तीभचतुष्कनिधियुगैरपरा।
शक्त्यष्टकेन चाऽन्या चरमा ककुबीश्वरैः समभ्यर्च्या ।।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः।
दमकः सलिलश्चैव गुग्गुलुश्च कुरुण्टकः।।
वलाकी विमला चैव कमला वनमालिका।
विभीषिका मालिका च शंकरी वसुमालिका ।। (वही, १२/७-१२)

आचार्य शंकर का विश्वास है कि पूजा-अर्चना से भगवती कमला प्रसन्न होकर साधक को धन-धान्य से परिपूर्ण समृद्धि प्रदान करती हैं। उन्होंने साधकों की कामनाओं के अनुसार साधना के कई प्रयोगों का निरूपण भी किया है।

अनयैव च पूर्वसेवया परितुष्टा कमला प्रसीदति।
धनधान्यसमृद्धिसंकुलामचिरादेव च मन्त्रिणे श्रियम्।। (वही, १२/१३)

श्रीं मन्त्र के प्रयोग

समृद्धि के लिये

जो साधक वक्षःस्थल तक गहरे जल में खड़े होकर सूर्यबिम्ब में लक्ष्मी की भावना करता हुआ श्रीं मन्त्र का ३ लाख जप करता है, वह दरिद्रता से मुक्त हो जाता है। विष्णु भगवान् के मन्दिर के परिसर में स्थित किसी कमलावृक्ष के नीचे बैठ कर श्रीं मन्त्र का ३ लाख जप करने वाला साधक अभिलाषा से अधिक धन प्राप्त करता है।

अम्भस्युरोजद्वयसेऽभितिष्ठंस्त्रिलक्षमेनं प्रजपेच्च मन्त्री।
श्रियं विचिन्त्याऽर्कगतां यथावद् दरिद्रताया भवति प्रमुक्तः।।
वसतावुपविश्य कैटभारेः कमलावृक्षतले तथा त्रिलक्षम्।
जपतोऽपि भवेच्च कांक्षितार्थादधिको वत्सरतो वसुप्रपंचः।।
(वही, १२/१४-१५)

समृद्धि तथा वशीकरण

अशोक नामक वृक्ष की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में घृतयुक्त चावलों का हवन करने से साधक में सबको वश कर लेने की सिद्धि प्राप्त होती है। खदिर की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में त्रिमधुर युक्त चावलों का हवन करने वाला साधक कुबेर के साथ ही राजकुल को भी वश में कर लेता है।

जुहुयादशोकदहने सघृतैरपि तण्डुलैः सकलवश्यतमम् ।
खदिरानले त्रिमधुरैरपि तैर्धनदं च राजकुलवश्यमपि । (वही, १२/१६)

समग्र लक्ष्मी की प्राप्ति

त्रिमधुरयुक्त १ लाख कमलों का हवन करने वाला दरिद्र व्यक्ति भी समग्र लक्ष्मी को प्राप्त करता है तथा उसकी साधना से प्रसन्न होकर लक्ष्मी धन, सम्पत्ति और समृद्धि से उसे आह्लादित करती हुई उसकी सन्तति का भी कभी त्याग नहीं करती।

समधुरनलिनानां लक्षहोमादलक्ष्मी-
परिगतमपि जन्तुं प्राप्नुयाच्छ्रीः समग्रा।
धनविभवसमृद्ध्या नित्यमाह्लादयन्ती,
त्यजति न करुणार्द्रा तस्य सा सन्ततिं च।। (वही, १२/१७)

महालक्ष्मी के दर्शन

महालक्ष्मी का साक्षात् दर्शन श्रीसूक्तों का पाठ करने वाला निर्मल चरित्र तथा शुद्ध हृदयवाला ब्राह्मण ही प्राप्त कर सकता है। ऐसे साधक को चाहिये कि वह पहले अपनी (निजी) भूमि पर बिल्ववृक्ष लगाकर उसका संवर्धन करे। फिर उस बिल्व वृक्ष के पत्तों, पुष्पों, फलों, शाखाओं तथा जड़ों (पंचांग) का महालक्ष्मी का पूजन करके पूर्वोक्त विधि से निर्मित पीठ के सामने हवन करे। यदि कोई ब्राह्मण साधक ऐसी साधना करता है, तो उसे साक्षात् महालक्ष्मी दर्शन देती हैं और उसके कुल में कभी अलक्ष्मी या दरिद्रता नहीं आती।

बिल्वं श्रीसूक्तजापी निजभुवि मुखजो वर्द्धयित्वाऽस्य पूर्वं
पत्रैस्त्रिस्वादुयुक्तैः कुसुमफलसमिद्भिस्ततः स्कन्धभेदैः।
तन्मूलैर्मण्डलात्प्राक् सुनियतचरितोऽसौ हुतान्निर्मलात्मा
रूपं पश्येद्रमायाः कथनपि न पुनस्तत्कुले स्यादलक्ष्मीः।।

(वही, १२/१८)

कमलवासिनी रमा मन्त्र

आचार्य शंकर ने प्रभूत धनप्राप्ति के इच्छुक साधकों के लिये कमलवासिनी भगवती महालक्ष्मी के एक अन्य मन्त्र का भी उद्घाटन और पूजन-विधि का निरूपण किया है। उनके अनुसार पहले 'हृदय' (नमः), फिर 'कमल' शब्द, तदनन्तर 'अनन्त' (आ) सहित 'अमृत' (व) अर्थात् 'वा', तत्पश्चात् 'सिन्यै' शब्द, फिर 'हुतवहदयिता' (स्वाहा) से युक्त मन्त्र 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' भगवती रमा का है।

हृदयकमलवर्णतः परस्ताद् अमृतमनन्तयुतं ततश्च सिन्यै।
हुतवहदयितेत्यसौ रमायाः प्रवरधनार्थिभिरर्थितो हि मन्त्रः।।

(वही, १२/१६)

न्यासादिविधान

आचार्य शंकर के अनुसार भगवती रमा के इस मन्त्र के ऋषि दक्ष, छन्दस् विराट् तथा देवता स्वयं भगवती श्री हैं । रमा मन्त्र की साधना में 'देवी' शब्द से हृदयन्यास, पद्मिनी से शिरोन्यास, विष्णुपत्नी से शिखान्यास, मेद अर्थात् (व) रेफ (र) तथा दा (वरदा) से कवच तथा 'कमला' से अस्त्र न्यास किया जाता है। इस न्यास में देवी, पद्मिनी विष्णुपत्नी आदि के आरम्भ में तार (ओं) तथा अन्त में 'नमः' लगाया जाना चाहिये। पद्मपादाचार्य के अनुसार इस मन्त्र का बीज 'ओं श्रीं' तथा शक्ति 'स्वाहा' है।

दक्षोऽस्य स्यादृषिश्छन्दसि सुमतिभिरुक्ता विराड् देवता च
श्रीर्देवीपद्मिनीभ्यां हृदयकशिरसी विष्णुपत्न्या शिखा च ।
मेदोरेफाह्वदार्णैरपि च कमलरूपाक्षरैर्वर्म चास्त्रम्।
ताराद्याभिर्नमोऽन्ताभिरपि निगदितं जातियुक्ताभिरंगम्।।

(वही, १२/२०)

'ओं श्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः'। (वही, विवरण)

इस निर्देश के अनुसार न्यासों के स्वरूप निम्न होंगे—

ऋष्यादिन्यास

दक्षाय ऋषये नमः (शिरसि), विराट् छन्दसे नमः (मुखे),
श्रियै देवतायै नमः (हृदि), ओं श्रीं बीजाय नमः (गुह्ये),
स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

ओं श्रीं देव्यै नमः हृदयाय नमः,
ओं श्रीं पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा,
ओं श्रीं विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट्,
ओं श्रीं वरदायै नमः कवचाय हुम्,
ओं श्रीं कमलायै नमः अस्त्राय फट्।

कमलवासिनी रमा का ध्यान

न्यासों के बाद कमल के आसन पर विराजमान, कमल की पंखुड़ियों के समान नेत्रों वाली, हाथों से वर और अभय मुद्रा प्रदर्शित करने वाली, कमल के समान भुजाओं वाली, मोतियों के हार से सुशोभित, उन्नत उरोजों वाली, रत्नजड़ित मंजीर, हार तथा मणियों से जड़ित मुकुट धारण करने वाली, अपने शरीर से उठने वाली कान्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाली भगवती लक्ष्मी का ध्यान करके उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे भगवति! आप सबके लिये कल्याणकारिणी हों।

पद्मस्था पद्मनेत्रा कमलयुगवराभीतियुग्दोःसरोजा।
देहोत्थाभिः प्रभाभिस्त्रिभुवनविवरं भास्वरा भासयन्ती।
मुक्ताहाराभिरामोन्नतकुचकलशा रत्नमंजीरकांची-
ग्रैवेयोर्म्यंगदाढ्या धृतमणिमुकुटा श्रेयसे श्रीर्भवेद्वः। (वही, १२/२१)

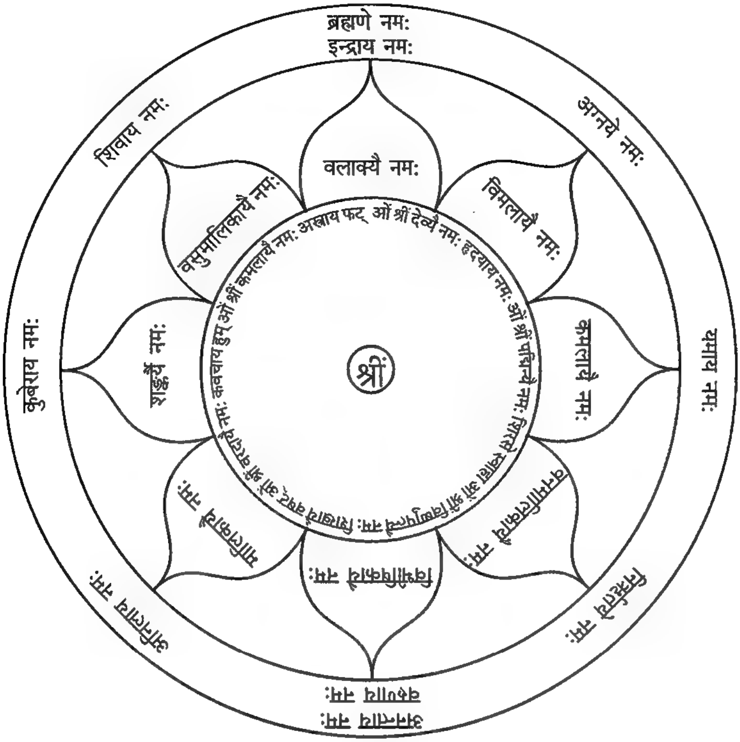
रमा की आवरण-पूजा

भगवती कमलवासिनी रमा का ध्यान करने के बाद विधि से निर्मित पीठ पर अष्टदल कमल का निर्माण कर उसकी कर्णिका के मध्य श्रीं, केसरों में अंगमन्त्र, आठ दलों में आठ शक्तियों और अन्त में आठ लोकपालों की पूजा की जानी चाहिये।

ध्यात्वैवं श्रियमपि पूर्वक्लृप्तपीठे
पत्रादौ प्रथममथाऽर्चयेत्तदंगैः।
अष्टाभिर्दलमनु शक्तिभिस्तदन्ते
लोकेशैरिति विधिनाऽर्चयेत्समृद्ध्यै।

(वही, १२/२२)

त्र्यावरण कमलवासिनी यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/२२)

[मन्त्र - 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' • जपसंख्या - १० लाख • आहुति-संख्या - १० हजार • हवनद्रव्य - त्रिमधुर युक्त कमल पुष्प]

कमलवासिनी रमा मन्त्र के प्रयोग

मेधा की प्राप्ति

आचार्य शंकर का कहना है कि दीक्षित साधक यदि नियम से 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' इस मन्त्र का दस लाख जप करता है, तो वह धनधान्य से परिपूर्ण होकर एक वर्ष के भीतर मेधावी हो जाता है।

दीक्षातो जपतु रमारमेशभक्तो लक्षाणां दशकममुं मनुं नियत्या।
स श्रीमान् बहुधनधान्यसंकुलः सन्मेधावी भवति च वत्सरेण मन्त्री।।

(वही, १२/२३)

इच्छानुसार धनप्राप्ति

'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' मन्त्र के दस लाख जप से साधक का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। इस प्रकार पवित्र अन्तःकरण वाला साधक यदि मधुरत्रय से युक्त दस हजार कमलों की आहुतियां देता है, तो वह बहुत शीघ्र इच्छित धन प्राप्त करता है।

इति मन्त्रजपादृतधीर्मधुरत्रितयैरयुतं जुहुयात्कमलैः।
परिशुद्धमना न चिरात्स पुनर्लभते निजवांछितमर्थचयम्।।

(वही, १२/२४)

सर्वातिशय धनी

सागर में मिलने वाली किसी नदी में गले तक गहरे जल में खड़े होकर इस मन्त्र का ३ लाख जप करने वाला साधक धनवानों में सर्वश्रेष्ठ हो जाता है, इसमें आशंका नहीं करना चाहिये।

समुद्रगायामवतीर्य नद्यां स्वकण्ठमात्रे पयसि स्थितः सन्।
त्रिलक्षजाप्याढ्यतमोऽब्दमात्रान्मन्त्री भवेन्नात्र विचारणीयम्।।

(वही, १२/२५)

अति समृद्धि

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में लक्ष्मी का पूर्वोक्त विधि से षोडशोपचार पूजन करके त्रिमधुर युक्त नन्द्यावर्त (तगर) पुष्पों की 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' मन्त्र से एक हजार आहुतियां, अथवा पूर्णमासी को त्रिमधुर युक्त एक हजार बिल्व फलों की, या शुक्लपक्ष की पंचमी को एक हजार श्वेत कमल-पुष्पों की, या शुक्रवार को श्वेत रंग के अन्य पुष्पों की इतनी ही आहुतियां देने वाला साधक एक वर्ष के अन्दर अति समृद्ध हो जाता है।

नन्द्यावर्तैर्जुहुत भगभेऽभ्यर्च्य लक्ष्मीं सहस्रं
तावद्बैल्वैस्त्रिमधुरयुतैर्वा फलैः पौर्णमास्याम्।
पंचम्यां वा सितसरसिजैः शुक्रवारेऽच्छपुष्पै-
रन्यैर्मासं प्रतिहुतविधिर्वत्सरात्स्याद्धनाढ्यः।। (वही, १२/२६)

इन्दिरा लक्ष्मी मन्त्र

आचार्य शंकर के अनुसार तार (ओं), रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), फिर श्रीः कमले कमलालये, तदनन्तर प्रसीद युग्म (प्रसीद प्रसीद), पुनः उक्त तीन बीज

(ओं श्रीं ह्रीं), तदनन्तर हृद् (नमः) अन्तवाला 'महालक्ष्यै' पद (ओं श्रीं ह्रीं श्रीः कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः) इन्दिरा लक्ष्मी का मन्त्र है।

तारामामायाः श्रीः कमले कमलालये प्रसीदयुगम्।
बीजानि तानि पुनरपि स महालक्ष्म्यै हृदिन्दिरामन्त्रः।। (वही, १२/२७)

शंकर ने इन्दिरा मन्त्र के ऋष्यादि का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु पद्मपाद के अनुसार इस मन्त्र के ऋष्यादि, पीठ, मूर्तिपूजा आदि पूर्ववत् ही हैं। तात्पर्य यह कि इन्दिरा मन्त्र के ऋषि दक्ष, छन्दस् विराट्, देवता श्री, बीज 'ओं श्रीं' तथा शक्ति 'ह्रीं' हैं। इसलिये इस मन्त्र का ऋष्यादिन्यास पूर्ववत् ही होगा।

"महालक्ष्मीमन्त्रस्य श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः, पूर्ववदृष्यादि पीठमूर्तिश्च"।
(वही, १२/२७ पर विवरण)

षडंगन्यास

इन्दिरा मन्त्र के षडंगन्यास की विधि का उल्लेख करते हुए शंकर ने कहा है कि इन्दिरा लक्ष्मी के मन्त्र के तीन बीजों का अलग-अलग प्रत्येक के साथ पुट देकर क्रमशः प्रथम तीन वर्णों से हृदय, पांच से शिरस्, तीन से शिखा, तीन से कवच तथा चार वर्णों से अस्त्ररूपी अंगन्यास करना चाहिये।

त्रिभिस्तु वर्णैर्हृदयं शिरोऽपि स्यात् पंचभिश्चाऽथ शिखा त्रिवर्णैः।
त्रिभिस्तथा वर्म चतुर्भिरत्रं पृथक् त्रिबीजापुटितैस्तदंगम्।।
(वही, १२/२८)

इस निर्देश के अनुसार इन्दिरा मन्त्र का अंगन्यास निम्न प्रकार से होगा—

ओं श्रीं ह्रीं कमले हृदयाय नमः,
ओं श्रीं ह्रीं कमलालये शिरसे स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं प्रसीद शिखायै वषट्,
ओं श्रीं ह्रीं प्रसीद कवचाय हुम्,
ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै अस्त्राय फट्।

इन्दिरा का ध्यान

हाथों में साधक को प्रदान करने के लिये उन्मुख धनपात्र और कमलपुष्प-धारिणी, सुन्दर द्युतिमान नूपुर, कण्ठहार, भुजबन्ध, हार तथा कंकण आदि आभूषणों को पहने हुए, महामणियों से विभूषित केशराशि एवं कुण्डलों वाली,

परिचारिकाओं से घिरी, कमलासन पर विराजमान, श्वेत अंगराग एवं श्वेत वस्त्र-धारिणी, देवगणों से सुपूजित इन्दिरा महालक्ष्मी का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हमारे पापों का विनाश करें।

हस्तोद्यद्वसुपात्रपंकजयुगादर्शा स्फुरन्नूपुरा,
ग्रैवेयांगदहारकंकणमहामौलिर्ज्वलत्कुण्डला।
पद्मस्था परिचारिकापरिवृता शुक्लांगरागांशुका
देवी दिव्यगणार्चिता भवदघप्रध्वंसिनी स्याद्रमा।। (वही, १२/२६)

जप तथा हवन

महादेवी इन्दिरा के ध्यान के अनन्तर इन्दिरा मन्त्र का १ लाख जप करना चाहिये। जप पूर्ण होने के बाद मधुरत्रय से युक्त बिल्व फलों की १० हजार आहुतियां देनी चाहिये। इस विधि से प्रतिदिन देवी की उपासना करने वाला साधक दुर्भाग्य से मुक्त हो जाता है।

लक्षं जपेन्मनुमिमं मधुरत्रयाक्तैबैल्वैः फलैः प्रतिहुनेदयुतं तदन्ते।
आराधयेदनुदिनं प्रतिवक्ष्यमाणमार्गेण दुर्गतिभयाद्रहितो भवेत्सः।।
(वही, १२/३०)

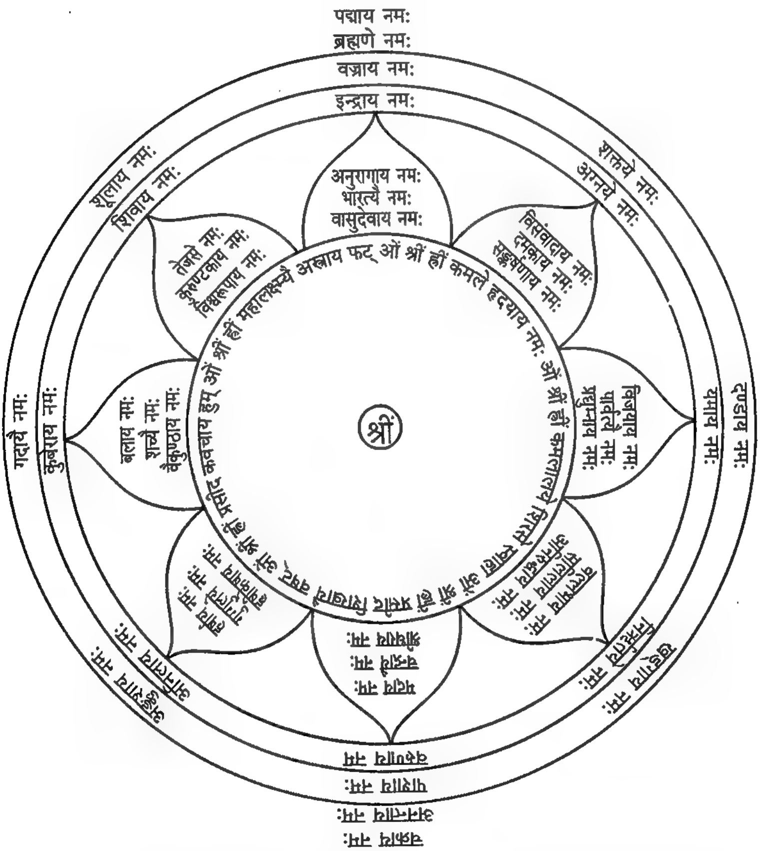
इन्दिरा की आवरण-पूजा

हवन के पश्चात् इन्दिरा की षोडशोपचार आवरण-पूजा की जानी चाहिये। देवी की अर्चना के लिये निर्मित पीठ के अष्टदल कमल में पूर्वोक्त रीति से कर्णिका में भगवती इन्दिरा का बीज मन्त्र 'श्रीं' लिखना चाहिये । इसके बाद प्रथम आवरण में अंग देवताओं, उसके समनन्तर ही द्वितीय आवरण में श्रीधर, हृषीकेश, वैकुण्ठ, विश्वरूप, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, तृतीय आवरण में भारती, पार्वती, चान्द्री तथा शची के साथ दमक, सलिल, गुग्गुलु तथा कुरुण्टक, चतुर्थ आवरण में महालक्ष्मी के अनुराग, विसंवाद, विजय, वल्लभ, मद, हर्ष, बल तथा तेजस् नामक आठ बाणों, पंचम आवरण में इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर, वरुण, अनिल, कुबेर, शिव, अनन्त तथा ब्रह्मा नामक दस लोकपालों तथा छठे आवरण में लोकपालों के आयुधों वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूल, चक्र तथा पद्म की पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये।

श्रीधरश्च हृषीकेशो वैकुण्ठो विश्वरूपकः।
वासुदेवादयश्चांऽगावरणात् समनन्तरम्।।

भारती पार्वतीचान्द्रीशचीभिरपि संयुता।
दमकादिभिस्तृतीयाऽनुरागाद्यैश्चतुर्थ्यपि।।
अनुरागो विसंवादो विजयो वल्लभो मदः।
हर्षो बलश्च तेजश्चेत्यष्टौ बाणा महाश्रियः।।
अनन्तब्रह्मपर्यन्तैः पंचमीन्द्रादिभिर्मता।
चक्रपद्मान्तिकैः षष्ठी वज्राद्यैरावृतिः श्रियः।। (वही, १२/३१-३४)

इन्दिरालक्ष्मी यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/२७-२८, ३१-३४)

[मन्त्र - 'ओं श्रीं ह्रीं श्रीः कमलाकमलालये प्रसीद प्रसीद ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः'
जपसंख्या - १ लाख • आहुति-संख्या - १० हजार
हवनद्रव्य - मधुरत्रय से सिक्त बिल्व फल]

मन्त्र के जप तथा आहुति का फल

शंकर के अनुसार जो साधक प्रतिदिन लक्ष्मी की पूजा करके 'ओं श्रीं ह्रीं श्रीः कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः' मन्त्र का विधिपूर्वक निर्धारित संख्या में जप और हवन करता है, वह दो-तीन वर्षों में ही धन-धरती, पशु-पुत्रादि से समृद्ध तो होता ही है, मृत्यु के उपरान्त वह विष्णु के नित्यपद मोक्ष को प्राप्त करता है।

संपूज्यैवं श्रियमनुदिनं यो जपेन्मन्त्रमेनम्
प्रोक्तां संख्यां सहुतविधिमप्युच्छ्रितां प्राप्य लक्ष्मीम्।
द्वित्रादर्वागवनिपशुपुत्रादिभोगैः समृद्धो
वर्षाद्देहापदि च पदमप्येति नित्यं स विष्णोः।। (वही, १२/३५)

आचार्य शंकर का निर्देश है कि श्री महालक्ष्मी के जो पूर्वोक्त मन्त्र बताये गये हैं, उनके जप-हवनादि के साथ श्रीसूक्त में पठित मन्त्रों का भक्तिभाव के साथ जप, यजनहवनादि करना चाहिये।

श्रीमन्त्रेष्विति गदितेषु भक्तियुक्तः
श्रीसूक्तान्यपि च जपेद् यजेद्धुनेच्च। (वही, १२/३६)

❋

श्रीसूक्त साधकों की परम्परा

वैदिक सूक्तों में सूक्तत्रयी नाम से प्रसिद्ध पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त तथा श्रीसूक्त की साधना प्राचीन काल से होती चली आयी है। इस सूक्तत्रयी का प्रत्येक सूक्त मन्त्रमय है। इन तीनों ही सूक्तों की रचना मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने मूल बीज मन्त्रों को विकसित करके की थी। इनमें से श्रीसूक्त में भगवती श्री के हिरण्यवर्णा, हरिणी, सुवर्णसृक्, चन्द्रा, हिरण्मयी तथा लक्ष्मी आदि तिरपन नामों का समावेश है । ये सभी नाम स्वयं में मन्त्रमय हैं। श्रीसूक्त की ऋचाओं के द्रष्टा ऋषियों में पैल, इन्द्रप्रमिति, देवमित्र, शाकल्य, वाष्कल, याज्ञवल्क्य, पराशर, मुद्गल तथा अग्निमित्र आदि की दीर्घ परम्परा है। श्रीसूक्त साधक ऋषियों की इसी परम्परा के आचार्य शंकर ने अपने प्रपंचसारतन्त्र में श्रीसूक्त में पठित पन्द्रह सूक्तों की साधना की विधि का निरूपण किया है। इन पर पद्मपाद तथा पश्चाद्वर्ती आचार्य विद्यारण्य की टिप्पणियां भी हैं। आचार्य विद्यारण्य ने श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के बीजमन्त्र का उद्घाटन भी किया है।

भगवती महालक्ष्मी की साधना में प्रयुक्त किये जाने वाले शतशः मन्त्रों में से सर्वाधिक प्रभावशाली महामन्त्रों 'श्रीं', 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' तथा 'ओं श्रीं ह्रीं श्रीः कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः' की साधना-विधि के निरूपण के अनन्तर आचार्य शंकर ने वैदिक श्रीसूक्त की १५ ऋचाओं से लक्ष्मी की साधना के लिये उनके जप, यजन तथा हवनादि का निरूपण किया है।

शंकर ने श्रीसूक्त-साधना के साधक के सन्दर्भ में 'मुखज' शब्द का प्रयोग किया है—बिल्वं श्रीसूक्तजापी निजभुवि मुखजः...। मुखज का अर्थ ब्राह्मण है। इसी सन्दर्भ को लेते हुए पद्मपाद ने कहा है कि श्रीसूक्त साधना में केवल ब्राह्मणों को ही अधिकार है। पद्मपाद के अनुसार श्रीसूक्त वेदों से ही सम्बन्धित है तथा इसमें केवल १५ ऋचाएं हैं। (प्रपंचसारतन्त्र, १२/१८)

"मुखज इति ब्राह्मणस्यैव श्रीसूक्ते विधानेऽधिकारः इति।
सूक्तमिदं पंचदशर्चात्मकं श्रौतम्"। (वही, १२/३६-४२ पर विवरण)

श्रीसूक्त के ऋष्यादि तथा न्यास

आचार्य शंकर ने श्रीसूक्त-साधना के प्रसंग में प्रत्येक ऋचा के ऋष्यादि के उल्लेख के साथ ही उनके अंगन्यासादि विधि का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। आचार्य के अनुसार श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओं में से प्रथम ऋचा की ऋषि स्वयं भगवती श्री और शेष चौदह ऋचाओं के ऋषि आनन्द, कर्दम, चिक्लीत तथा इन्दिरासुत हैं।

सूक्तेषु प्रथमतरे स्वयं मुनिः स्या-
दन्येषां मुनयः इमे भवन्ति भूयः।।
आनन्दः कर्दमश्चैव चिक्लीतश्चेन्दिरासुतः
ऋचामथो तदन्येषामृषयः समुदीरिताः । (वही, १२/३६-३७)

श्रीसूक्तों में प्रयुक्त छन्दों तथा दूसरे से पन्द्रहवें सूक्त तक के देवताओं का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया है कि आरम्भ के तीन सूक्तों का छन्दस् अनुष्टुप्, चतुर्थ ऋचा 'कांसोस्मिताम्' का वृहती, पांचवीं एवं छठी ऋचाओं का त्रिष्टुप्, इनके बाद की आठ ऋचाओं का अनुष्टुप् और अन्तिम पन्द्रहवीं ऋचा का छन्दस् प्रस्तारपंक्ति है। इन ऋचाओं के देवता भगवती श्री तथा अग्नि हैं। आचार्य पद्मपाद के अनुसार श्रीसूक्त का बीज 'हिरण्यवर्णाम्' तथा शक्ति 'कांसोऽस्मि' ऋचा है।

आद्ये सूक्तत्रये छन्दोऽनुष्टुप् कांसे वृहत्यपि।
तदन्त्ययोस्त्रिष्टुबाख्यं परस्तादष्टके पुनः।।
अनुष्टुबन्त्ये प्रस्तारपंक्तिश्छन्दांसि वै क्रमात्।
श्यग्नी स्यातां देवते च न्यासांगविधिरुच्यते।। (वही, १२/३८-३६)

"हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजं कांसोऽस्मीति ऋक् शक्तिः"। (इति विवरणे)

मन्त्रन्यास

श्रीसूक्तों के विनियोग तथा ऋष्यादिन्यास सम्पन्न कर लेने के बाद साधक को चाहिये कि वह अपने सिर, नेत्र, कान, नासिका, मुख, कण्ठ, बाहु, हृदय, नाभि, लिंग, गुदा, उरु, जानु, जंघा तथा चरण नामक १५ अंगों में श्रीसूक्त के १५ मन्त्रों का एक-एक करके न्यास करे।

मूर्धाक्षिकर्णनासामुखगलदोर्हृदयनाभिगुह्येषु।
पायूरुजानुजंघाचरणेषु न्यसतु सूक्तकैः क्रमशः।। (वही, १२/४०)

उक्त निर्देशानुसार मन्त्रन्यास का स्वरूप निम्नवत् होगा—

श्रीं हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१।। श्रियै नमः (मूर्धनि),
श्रीं तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्।।२।। श्रियै नमः (नेत्रयोः),
श्रीं अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।।३।। श्रियै नमः (कर्णयोः),
श्रीं कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारमार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्।। ४।। श्रियै नमः (नसोः),
श्रीं चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनीमीं शरणं प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।५।।
श्रियै नमः (मुखे),

श्रीं आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मा आन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः।।६।।
श्रियै नमः (कण्ठे),

श्रीं उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।।७।।
श्रियै नमः (बाह्वोः),

श्रीं क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।८।। श्रियै नमः (हृदि),
श्रीं गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।९।। श्रियै नमः (नाभौ),
श्रीं मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।१०।। श्रियै नमः (गुह्ये),
श्रीं कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।।११।। श्रियै नमः (पायौ),
श्रीं आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।१२।। श्रियै नमः (उर्वोः),
श्रीं आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेद म आवह ।।१३।। श्रियै नमः (जान्वोः),
श्रीं आर्द्रां यः करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१४।। श्रियै नमः (जंघयोः),

श्रीं तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्।।१५।।
श्रियै नमः (चरणयोः)।

षडंगन्यास

षडंगन्यास के सम्बन्ध में आचार्य ने निर्देश दिया है कि श्रीसूक्त की साधना में (हृदयाय नमः इत्यादि) जाति के योग के साथ हिरण्मयी शब्द से हृदयन्यास, चन्द्रा से शिरोन्यास, रजतहिरण्यस्रजे से शिखान्यास, हिरण्या से कवच तथा हिरण्यवर्णा से अस्त्र न्यास करना चाहिये।

पद्मपाद के अनुसार श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के साथ श्रीं बीज का योग किया जाना चाहिये।

सहिरण्यमयी च चन्द्रा रजतहिरण्यस्रजे हिरण्याख्या।
अंगानि जातियुंचि त्वथ च हिरण्यवर्णाह्वया तथाऽस्त्रं स्यात्।।
(वही, १२/४१)

"प्रत्यृचं श्रीबीजयोग उक्तः इति विवरणे"।

अंगन्यास के सन्दर्भ में 'जाति षट्क' या छह जातियों का उल्लेख किया जाता है। 'जाति' क्या है? इसका स्पष्टीकरण मन्त्रमहोदधि में किया गया है। इसके अनुसार जाति षट्क का तात्पर्य 'हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट् तथा अस्त्राय फट्' इन छह अंगमन्त्रों से है। किन्हीं मन्त्रों में षडंगन्यास का नहीं अपितु पंचांगन्यास का विधान है। तान्त्रिकों की परम्परा में दो नेत्र वाले देवता के सम्बन्ध में 'नेत्राभ्यां वौषट्' मन्त्र से नेत्रन्यास किया जाता है। जिन मन्त्रों में षडंगन्यास नहीं, पंचांग न्यास का विधान है, वहां नेत्रन्यास नहीं किया जाता।

"हृदयाय नमश्चेति शिरसे स्वाहया युतम्।
शिखायैव षडंगं च कवचायहुमिति।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडीरितम् ।
जातिषट्कं द्विनेत्रे तु नेत्राभ्यां वौषडुच्यते ।
पंचांगे नेत्रत्यागो .." (मंत्रमहोदधिः, २१/१४७-१४९)

श्रीसूक्त की ऋचाओं के विनियोग एवं न्यासादि

पद्मपाद के अनुसार श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा के पहले 'श्रीं' बीज का योग

होना चाहिये। अतः आचार्य शंकर और पद्मपाद के निर्देशों के अनुसार श्रीसूक्त की १५ ऋचाओं की साधना में विनियोग तथा न्यासादि के रूप निम्न होंगे—

प्रथम सूक्त की साधना

विनियोग

"श्रीं हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह"।।१।।

इति प्रथमसूक्तस्य श्रीः ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्र्यग्नी देवते, हिरण्यवर्णाम् ऋग् बीजम्, कांसोऽस्मीति ऋक् शक्तिः सकलकामनाप्राप्त्यर्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

श्रियै ऋषये नमः (शिरसि), अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे)
श्र्यग्नीभ्यां देवताभ्यां नमः (हृदि)
हिरण्यवर्णां ऋग्बीजाय नमः (गुह्ये)
कांसोऽस्मीति ऋग् शक्तये नमः (पादयोः)।

द्वितीय एवं तृतीय सूक्त की साधना

विनियोग

श्रीं तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्।।२।।
श्रीं अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोधिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्।।३।।

"इत्यनयोः सूक्तयोः आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुताः ऋषयः, अनुष्टुप् छन्दः, श्र्यग्नी देवते, हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजम्, कांसोऽस्मीति ऋग् शक्तिः, मम दारिद्र्यपरिहारार्थे ऐश्वर्यप्राप्त्यर्थं च द्वितीय-तृतीयसूक्तजपे विनियोगः"।

ऋष्यादिन्यास

आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुतेभ्यः ऋषिभ्यः नमः (शिरसि),
अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे), श्र्यग्नीभ्यां देवताभ्यां नमः (हृदि),
हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजाय नमः (गुह्ये),
कांसोऽस्मीति ऋग् शक्तये नमः (पादयोः)

चतुर्थ सूक्त की साधना

विनियोग

"श्रीं कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारमार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्"।।४।।

"अस्य श्रीसूक्तस्य आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुताः ऋषयः, वृहती छन्दः, श्रयग्नी देवते हिरण्यवर्णामिति ऋग् बीजम्, कांसोऽस्मीति ऋक् शक्तिः, मम दारिद्रयपरिहारार्थे ऐश्वर्यप्राप्त्यर्थं च चतुर्थ-सूक्तजपे विनियोगः"।

ऋष्यादिन्यास

आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुतेभ्यः ऋषिभ्यः नमः(शिरसि),
वृहत्यै छन्दसे नमः (मुखे), श्रयग्नीभ्यां देवताभ्यां नमः (हृदि),
हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजाय नमः (गुह्ये),
कांसोस्मीति ऋग् शक्तये नमः (पादयोः)।

पंचम तथा छठे सूक्त की साधना

विनियोग

श्रीं चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनीमीं शरण प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।५।।
श्रीं आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मामान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः।।६।।

इत्यनयोः सूक्तयोः आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुताः ऋषयः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्रयग्नी देवते, हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजम्, कांसोऽस्मीति ऋक् शक्तिः, मम सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुतेभ्यः ऋषिभ्यः नमः (शिरसि),
त्रिष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे), श्रयग्नीभ्यां देवताभ्यां नमः (हृदि),
हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजाय नमः (गुह्ये),
कांसोऽस्मीति ऋग्शक्तये नमः (पादयोः)

सातवें से चौदहवें सूक्तों की साधना

विनियोग

श्रीं उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे।।७।।
श्रीं क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।।८।।
श्रीं गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्।।९।।
श्रीं मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।१०।।
श्रीं कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।।११।।
श्रीं आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।।१२।।
श्रीं आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेद म आवह।।१३।।
श्रीं आर्द्रां यः करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।१४।।

इत्येतेषां सूक्तानाम् आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुताः ऋषयः, अनुष्टुप् छन्दः, श्र्यग्नीदेवते, हिरण्यवर्णामिति ऋग् बीजम्, कांसोऽस्मीति ऋक् शक्तिः मम सर्वकामनाप्राप्तये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुतेभ्यः ऋषिभ्यः नमः (शिरसि),
अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे), श्र्यग्नीभ्यां देवताभ्यां नमः (हृदि),
हिरण्यवर्णामिति ऋग्बीजाय नमः (गुह्ये),
कांसोऽस्मीति शक्तये नमः (पादयोः)

पन्द्रहवें सूक्त की साधना

विनियोग

श्रीं तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्।।१५।।

इत्यस्य श्रीसूक्तस्य आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुताः ऋषयः, प्रस्तारपंक्तिः छन्दः, श्र्यग्नी देवते, हिरण्यवर्णामिति ऋगूबीजम्, कांसोऽस्मीति ऋग् शक्तिः, मम सर्वार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

आनन्दकर्दमचिक्लीतेन्दिरासुतेभ्यः ऋषिभ्यः नमः (शिरसि),
प्रस्तारपंक्तिछन्दसे नमः (मुखे), श्र्यग्नीभ्यां देवताभ्यां नमः (हृदि)
हिरण्यवर्णामिति ऋगूबीजाय नमः (गुह्ये),
कांसोऽस्मीति ऋक् शक्तये नमः (पादयोः)

महालक्ष्मी का ध्यान

श्रीसूक्त साधना में विभिन्न न्यासों के सम्पादन के अनन्तर रक्त कमल पर विराजमान, कमल के पराग के समान गौरवर्णा, वराभय मुद्रा वाले हाथों में कमल- धारिणी, बहुमूल्य एवं विविधवर्ण वाली मणियों से अलंकृत मुकुट धारण करने वाली, कल्पवृक्ष के पुष्पों से अलंकृत त्रिभुवन-जननी भगवती श्री का ध्यान करके उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आप और हम सबके लिये कल्याणमयी हों ।

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंजवर्णा-
करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिमुकुटविचित्रालंकृताऽऽकल्पजातै
र्भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये वः।। (वही, १२/४२)

श्रीसूक्त साधना-विधि

आचार्य शंकर के अनुसार महालक्ष्मी की श्रीसूक्त-साधना का आरम्भ दीक्षा के उपरान्त शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से किया जाना चाहिये। एकादशी तिथि तक १२ हजार जप पूर्ण करके पूर्वोक्त रमापीठ पर हवनादि यज्ञ सम्पन्न करना चाहिये। साधना के दौरान साधक के लिये आवश्यक है कि वह स्त्री-प्रसंग से अलग रहे तथा अपने तन-मन एवं वस्त्रों को स्वच्छ तथा पवित्र रखे।

आरभ्याच्छां प्रतिपदमथ प्राप्तदीक्षो वियुक्त-
स्तन्वंगीभिस्तनुविमलवासाः सुधौतद्विजाढ्यः।
एकादश्यामथ परिसमाप्याऽर्कसाहस्रिकान्तम्
जापं मन्त्री प्रयजतु रमां प्राक्तनप्रोक्तपीठे।। (वही, १२/४३)

श्री की आवरण-पूजा

आचार्य शंकर ने भगवती श्री की पूजा के लिये चार आवरणों वाले अष्टदल कमल का विधान किया है। उनके अनुसार पहले अष्टदल कमल की रचना करके उसकी कर्णिका के मध्य भगवती श्री का बीजमन्त्र 'श्रीं' लिखना चाहिये। फिर इस श्रीं बीज के चारों ओर की केसरों वाले

प्रथम आवरण में अंगमन्त्र—

हिरण्मय्यै हृदयाय नमः, चन्द्रायै शिरसे स्वाहा,
रजतहिरण्यस्रजसे शिखायै वषट्,
हिरण्यायै कवचाय हुम्, हिरण्यवर्णायै अस्त्राय फट्

द्वितीय आवरणरूपी अष्टदल कमल की पंखुड़ियों में क्रमशः

पद्मायै नमः, पद्मवर्णायै नमः, पद्मस्थायै नमः,
आर्द्रायै नमः, तर्पयन्त्यै नमः, तृप्तायै नमः,
ज्वलन्त्यै नमः, स्वर्णप्राकारायै नमः

अष्टदलों के बाहर तृतीय आवरण में पूर्वादि क्रम से

इन्द्राय नमः, अग्नये नमः, यमाय नमः,
निर्ऋतये नमः, वरुणाय नमः, वायवे नमः,
कुबेराय् नमः, ईशानाय नमः, अनन्ताय नमः
(नीचे की ओर) ब्रह्मणे नमः (ऊर्ध्व दिशा में)

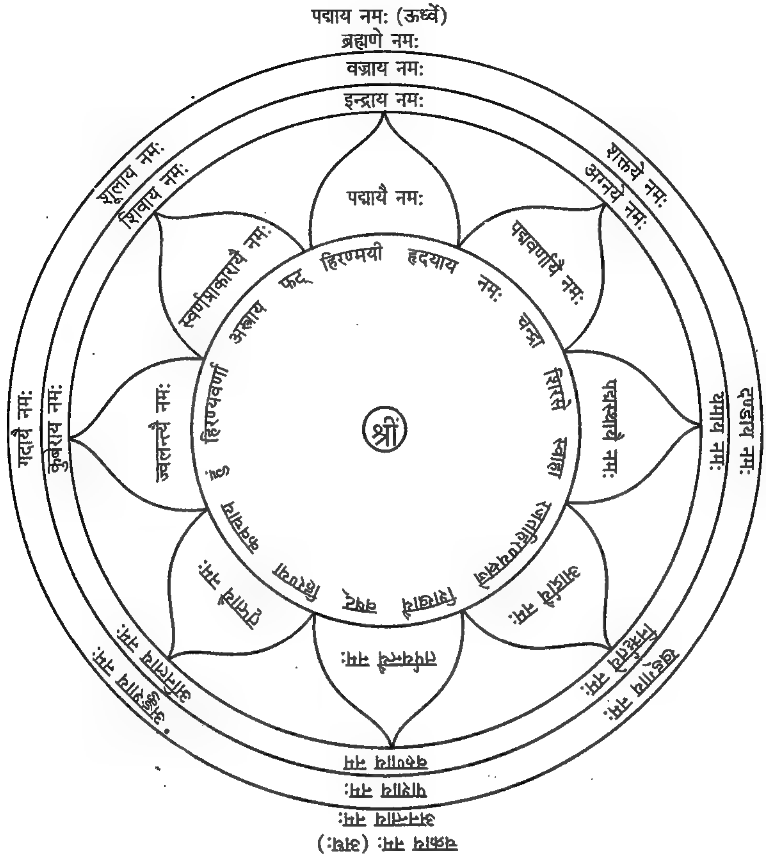
तदनन्तर दिग्पालों के समनन्तर चतुर्थावरण में पूर्वादि क्रम में ही लोकपालों के आयुधों की निम्नांकित मन्त्रों से अर्चना करना चाहिये—

वज्राय नमः, शक्तये नमः, दण्डाय नमः,
खड्गाय नमः, पाशाय नमः, अंकुशाय नमः,
गदायै नमः, शूलाय नमः , चक्राय नमः (अधः)
ओं पद्माय नमः (ऊर्ध्वे)

पद्मा सपद्मवर्णा पद्मस्थार्द्रा च तर्पयन्त्यभिधा।
तृप्ता ज्वलन्त्यभिख्या स्वर्णप्राकारसंज्ञका चेति।।
मध्ये दिशाधिपांगावृत्त्योरेतास्ततश्च वज्रादीन्।
प्रयजेच्चतुरावरणं निगदितमिति सूक्तकल्पितं विधानम्।।

(वही, १२/४४-४५)

चतुरावरण श्रीपूजा यन्त्र (श्रीसूक्तविधाने)



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/४१ एवं ४४-४५)

[**जप-हवनादि श्रीं मन्त्रवत्**]

आवाहन एवं हवनादि-विधि

श्रीसूक्तों द्वारा महालक्ष्मी की साधना में साधक को चाहिये कि वह प्रतिदिन श्रीसूक्त के क्रमशः एक-एक मन्त्र से भगवती श्री सहित उक्त देवताओं का आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, अभिषेक, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। फिर श्री बीज सहित चौदहवीं ऋचा से गण्डूषादि कराके एक साथ श्रीं बीज सहित समस्त ऋचाओं से प्रदक्षिणा, स्तुति तथा नमस्कारादि सम्पन्न करके अन्त्य ऋचा से विसर्जन कराना चाहिये।

अन्नघृताभ्यां जुहुयादनुदिनमष्टोत्तरं शतं मन्त्री।
आवाहनासनार्घ्यपाद्याचमनमधुपर्कसेकानि।।
वासोभूषणगन्धान् सुमनोयुतधूपदीपभोज्यानि।
सोद्वासनानि कुर्याद्भक्तियुक्तः पंचदशभिरथ मनुभिः।।
व्यस्तैरपि च समस्तैः पूजायां संयतात्मकः सिद्ध्यै।

(वही, १२/४६-४७)

जहां तक हवन का सम्बन्ध है, दैनिक पूजन में इन १५ ऋचाओं की ७ बार आवृत्ति (१०५) तथा अन्तिम १५वीं ऋचा की तीन बार (३) आवृत्ति से अन्न और घी की कुल १०८ आहुतियां देनी चाहिये।

"सूक्तानां सप्तवारजपान्तेऽन्त्यस्य सूक्तस्य त्रिरावृत्तिर्विवक्षिता"।

(वही, विवरण)

द्वादशी तिथि को क्रमशः कमल, बिल्व-समिधाओं, खीर तथा घृत की तीन-तीन सौ आहुतियां देने के अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् श्रीसूक्त साधना की परिसमाप्ति करनी चाहिये।

पद्मैर्बिल्वसमिद्भिः पयोऽन्धसा सर्पिषा क्रमाज्जुहुयात्।
एकैकं त्रिस्त्रिशतं द्वादश्यां भोजयीत विप्रांश्च।। (वही, १२/४८)

पद्मपाद के अनुसार श्रीसूक्तों की उपासना द्वारा श्री की सिद्धि के लिये चाहिये कि साधक श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा से तीन बार तीन-तीन सौ आहुतियां दे तथा सम्मिलित रूप से १४ ऋचाओं से प्रदक्षिणा-नमस्कार आदि सम्पादित करके अन्तिम ऋचा से देवी का विसर्जन करे।

"व्यस्तैः समस्तैरित्यत्र व्यस्तैश्चतुर्दशभिः निवेद्यान्तं दत्वा श्रीबीजेन चतुर्दशेनैव वा गण्डूषोपचारादिकं समर्प्य समस्तेन सूक्तेन प्रदक्षिण-स्तुतिनमस्कारान् विधाय शेषं श्रीबीजेन कृत्वा अन्त्ये चोद्वास-येदित्यर्थः"। (वही, विवरण)

श्री साधना में प्रयुक्त पुष्पादि

भगवती श्री की अर्चना में मन्दार, कुन्द, कुमुद, तगर, मालती, जाती, श्वेत कमल, रक्त कमल, केतकी तथा चम्पा आदि पुष्पों का उपयोग करना चाहिये।

मन्दारकुन्दकुमुदकनन्द्यावर्ताख्यमालतीजात्यः।
कह्लारपद्मरक्तोत्पलकेतकचम्पकादयो ग्राह्याः।। (वही, १२/४९)

श्रीसूक्त के प्रयोग

लक्ष्मी की प्राप्ति

श्रीसूक्त साधना की विभिन्न विधियों और उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों की चर्चा करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि स्नान करते समय श्रीसूक्तों से प्रतिदिन तीन बार अभिसिंचन, सूर्याभिमुख होकर जप की संख्या के बराबर तर्पण तथा दिन में तीन बार हवन करने वाला साधक छह महीने में ही लक्ष्मीपति बन जाता है।

परिषिंचेत्त्रिशो नित्यं सूक्तैस्तैः स्नानकर्मणि।
आदित्याभिमुखो जप्याद् यावत्तावच्च तर्पयेत् ।।
अर्चयेद् विधिनानेन दिनशो जुहुयात्त्रिशः।
एवं करोति षण्मासं योऽसौ स्यादिन्दिरापतिः।। (वही, १२/५०-५१)

१५वीं ऋचा का प्रयोग

एक अधखिली कमल-कली की कर्णिका, केसरों तथा पंखुडियों के बीच नवनीत (मक्खन) भर कर श्रीसूक्त की अन्तिम ऋचा—

"श्रीं तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्"।

का १०८ बार जप करके जप के अन्त में उस कलिका का प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि में हवन कर दे। इस प्रकार ४४ शुक्रवारों तक हवन करने से महालक्ष्मी प्राप्त होती है।

उद्बुद्धमात्रे नलिने नवनीतं विनिक्षिपेत्।
सकर्णिके सकिंजल्कोदरे पत्रान्तरालये।।
पुनस्तत् पद्ममुद्धृत्य सुसमिद्धे विभावसौ।
जुहुयादन्त्याऽथर्चा शतमष्टोत्तरं जपन्।
चत्वारिंशच्छुक्रवारैर्महाश्रीस्तस्य जायते।। (वही, १२/५२-५३)

चतुर्थ ऋचा का प्रयोग

श्रीसूक्त की चतुर्थ ऋचा

"श्रीं कांसोऽस्मितां हिरण्यप्राकारमार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्"।।

से विधानानुसार छह मास तक प्रतिदिन ग्यारह आहुतियां देने वाला साधक अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

कांसोऽस्मीत्यनया सम्यगेकादश घृताहुतीः।
षण्मासं जुह्वतो नित्यं भूयात्प्रायो महेन्दिरा।। (वही, १२/५४)

श्री सूक्त-साधना करते समय इन पन्द्रह सूक्तों का जप, इनसे हवन, अर्चना, स्नान, आचमन तथा तर्पण करने वाला साधक विविध प्रकार के धन-धान्यों से परिपूर्ण होकर संसार में सभी लोगों का सम्मान प्राप्त करता है तथा धनियों में अग्रगण्य हो जाता है। विवरण के अनुसार उक्त ऋचाओं के प्रयोग में प्रत्येक ऋचा के आरम्भ में 'श्रीं', हवन में ऋचाओं के अन्त में 'स्वाहा' तथा तर्पण में 'तर्पयामि' शब्द का प्रयोग होना चाहिये।

सूक्तैरेतैर्जपतु जुहुयादर्चयीताऽवगाहेत्।
सिंचेद्वक्त्रे दिनमनु तथा संयतस्तर्पयीत।
संशुद्धात्मा विविधधनधान्याकुलाभ्यन्तरोऽसौ
मन्त्री सर्वैर्भुवि बहुमतः श्रीमतां स्यात्पुरोगः।। (वही, १२/५५)

"ऋचः श्रीबीजपुटितत्वं होमतर्पणादौ स्वाहा तर्पयाम्यन्तत्वं चोक्तम्"।
(वही, विवरण)

श्री के बत्तीस नामों से उपासना की विधि

आचार्य शंकर के अनुसार भगवती श्री के 'श्री, लक्ष्मी, वरदा, विष्णुपत्नी, वसुप्रदा, हिरण्यरूपा, स्वर्णमालिनी, रजतस्रजा, सुवर्णगृहा (सुवर्णप्रभा), स्वर्णप्राकारा, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया, मुक्तालंकारा, सूर्या, चन्द्रा, बिल्वप्रिया, ईश्वरी, भुक्ति, प्रभुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, तुष्टि, पुष्टि, धनदा, धनेश्वरी, शुद्धा (श्रद्धा), सम्भोगिनी, भोगदात्री, धातृका तथा विधातृका बत्तीस नाम कहे गये हैं। ये सभी नाम मन्त्ररूप हैं। इन नामों के प्रारम्भ में 'ओं' तथा अन्त में 'नमः' का प्रयोग करते हुए पूजा में बलि तथा प्रातःकाल महालक्ष्मी का तर्पण करना चाहिये।

श्रीर्लक्ष्मीर्वरदा विष्णुपत्नी च सवसुप्रदा ।
हिरण्यरूपा सस्वर्णमालिनी रजतस्रजा।।
ससुवर्णगृहा (प्रभा) स्वर्णप्राकारा पद्मवासिनी।
पद्महस्ता पद्मपूर्वप्रिया मुक्तापदादिका।।

अलंकारा तथा सूर्या चन्द्रा बिल्वप्रियेश्वरी ।
भुक्तिः प्रपूर्वा मुक्तिश्च विभूत्यृद्धिसमृद्धयः।।
तुष्टिः पुष्टिश्च धनदा तथाऽन्या तु धनेश्वरी।
शु (श्र) द्धा सम्भोगिनी भोगदात्री धातृविधातृके।।
द्वात्रिंशदेताः श्रीदेव्या ये मन्त्रा समुदीरिताः ।
तारादिका नमोऽन्ताश्च तैरर्चासु बलिं हरेत् ।
तर्पयेच्च महादेवीं दिनादौ मन्त्रवित्तमः ।। (वही, १२/५६-६०)

साधना में निषिद्ध कर्म

भगवत्पाद शंकर ने साधक के लिये साधना-काल में कुछ निषेधों का उल्लेख भी किया है। इनके अनुसार साधक के लिये गीले शरीर और गीले वस्त्रों से भोजन करना, नग्न होकर जल में प्रवेश करना, अपवित्रावस्था में शयन करना, रात में तिल के तेल का मर्दन या मुख पर लेपन करना, झूठ बोलना, मलिनावस्था में रहना तथा धरती पर व्यर्थ में कुछ लिखना आदि कर्म निषिद्ध माने गये हैं।

नाभ्यक्तोऽद्यान्न नग्नः सलिलमवतरेन्न स्वपेद्वाऽशुचिः स-
न्नाऽभ्यंज्यान्नैव चाऽद्यात्तिलरुहलवणे केवलेनैव दोषाम्।
वक्त्रे लिम्पेद्वदेन्नाऽनृतमपि मलिनः स्यान्न बिल्वाम्बुजन्म-
द्रोणान्नो धारयेत् के भुवमपि न वृथैवाऽऽलिखेदिन्दिरार्थी।।
(वही, १२/६१)

विधेय कर्म

दीर्घकाल तक महालक्ष्मी की कृपा चाहने वाले साधक को आचार्यपाद शंकर ने निर्देश दिया है कि श्री के साधक को चाहिये कि वह पवित्र चरित्र बने, मालाओं, चन्दनादि लेपों, वस्त्राभूषणों आदि से अपने शरीर को सुन्दर बनाये, सिर में सुगन्धित तैलादि लगाये, अपने नखों तथा दांतों को स्वच्छ रखे, बुद्धि को निर्मल रखे, विष्णुभक्त बने तथा निर्मल एवं सुरुचिपूर्ण शय्या पर शयन करे।

सुविमलचरितः स्याच्छुद्धमाल्यानुलेपा-
भरणवसनदेहो मुख्यगन्धोत्तमांगः।
सुविशदनखदन्तः शुद्धधीर्विष्णुभक्तो
विमलरुचिरशय्यः स्याच्चिरायेन्दिरार्थी।। (वही, १२/६२)

इसके अलावा चिरकाल तक के लिये लक्ष्मी को चाहने वाले साधक को चाहिये कि वह दूषित अंगों वाली, कठिन (उच्चारण में) नाम वाली, कलह करने वाली, कुमार्गगामिनी, अनिष्टकारिणी, अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष में आसक्त, पति के प्रति अनासक्त, अत्यन्त पृथुल या अति कृशांगी, अति छोटी या अति लम्बी, रोग-पीड़ित, भोगलोलुप, जिस किसी पुरुष को चाहने वाली, राजा को प्रिय, असुन्दर, कौए के समान टेढ़ी आंखों वाली या एक आंखवाली, ग्रहों से पीड़ित अथवा रजस्वला नारी का स्पर्श न करे।

दुष्टां कष्टान्ववायां कलहकलुषितां मार्गदुष्टामनिष्टाम्,
अन्यासक्तामसक्तामतिविपुलकृशांगीमतिह्रस्वदीर्घाम्।
रोगार्तां भोगलोलां प्रतिपुरुषचलां राजकान्तामकान्ताम्,
काकाक्षीमेकचारां गृ (ग्र)हकुसुमयुतां न स्पृशेदिन्दिरार्थी।।

(वही,१२/६३)

चिरकाल तक लक्ष्मी चाहने वाले साधक को चाहिये कि वह शान्त रहे, मुस्कराते हुए मधुर बोले, देव, आचार्य, अतिथि तथा अग्नि की पूजा में निरत रहे, पुण्यशील बने, नित्य स्नान करे, नियमों का पालन करे, पूर्व की ओर मुख करके भोजन करे, वर्णाश्रम धर्म के प्रति दृढ विश्वास रखे, श्री के मन्त्रों के प्रति भक्ति रखे, वैष्णवी दीक्षा का आश्रय ले, श्रीसूक्तों का जाप करे, निर्मल बुद्धि तथा सुशील बने, अपनी पत्नी से संतुष्ट रहे, कम बोले, स्वल्प भोजन करे एवं लोकप्रिय बने।

शान्तः शश्वत्स्मितमधुरपूर्वाभिभाषी दयार्द्रो
देवाचार्यातिथिदहनपूजारतः पुण्यशीलः।
नित्यस्नायी नियमनिरतः प्रत्यगाशामुखाशी
मन्त्री वर्णाश्रमदृढरतिः स्याच्चिरायेन्दिरार्थी।।
श्रीमन्त्रभक्तः श्रितविष्णुदीक्षः श्रीसूक्तजापी सितधीः सुशीलः।
स्वदारतुष्टो मितभाषणाशी लोकप्रियः स्याच्चिरमिन्दिरार्थी।।

(वही, १२/६४-६५)

❋

त्रिपुटा साधना

त्रिपुटा देवी की उपासना से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कीर्ति, आनन्द तथा कवित्व आदि सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। आचार्य शंकर के अनुसार रमा (श्रीं), भुवनेशी (ह्रीं) तथा मनोज (क्लीं) बीजों से 'त्रिपुटा मन्त्र' बनता है तथा इसकी साधना से चतुर्वर्ग, यश, रंजन तथा कवित्व की प्राप्त होती है।

अथ रमाभुवनेशिमनोभवैस्त्रिपुटसंज्ञकमन्त्रमुदीरितम्।
सकलवर्गफलाप्तियशस्करं जगति रंजनदं कविताकरम्।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १३/१)

पद्मपाद के अनुसार त्रिपुटा मन्त्र के उक्त तीन बीजों में से यदि रमा बीज 'श्रीं' पहले प्रयुक्त हो तो धर्मादि चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। शक्ति बीज 'ह्रीं' के प्रथम प्रयोग से यश तथा काम बीज 'क्लीं' के प्रथम प्रयोग से रंजन अर्थात् आनन्दादि की प्राप्ति होती है। यदि त्रिपुटा मन्त्र के आरम्भ में वाग्बीज 'ऐं' का पुट दे दिया जाय, तो इससे साधक को कवित्व की शक्ति प्राप्ति होती है।

"रमादित्वे सकलवर्गफलाप्तिः। शक्त्यादित्वे यशस्करम्। कामादित्वे रंजनदम्। वाग्भवयोगे कविताकरमिति द्रष्टव्यम्"।

(वही, १३/१ पर विवरण)

ऋष्यादि

पद्मपाद के अनुसार त्रिपुटा मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्दस् गायत्री, देवता त्रिपुटा देवी, बीज श्रीं या क्लीं तथा शक्ति ह्रीं है। अतः तदनुसार ऋष्यादि न्यास सम्पन्न किया जाना चाहिये।

"सम्मोहन ऋषिः। गायत्री छन्दः। त्रिपुटा देवी देवता। श्रीं बीजं क्लीं वा। ह्रीं शक्तिः"। (वही, विवरण)

अंगन्यास

त्रिपुटा के बीजों को क्रमशः दो बार प्रयोग करके अंगन्यास किया जाता है। इसके अतिरिक्त चतुर्वर्ग प्राप्ति, यश, रंजन अथवा कवित्व प्राप्ति के उद्देश्य से त्रिपुटा मन्त्र के जिस भी बीज को अंगी या प्रमुख बनाकर आरम्भ में रखा जाय उससे ही सम्बन्धित अंगन्यास की विधि सम्पन्न करनी चाहिये।

बीजैस्त्रिभिर्द्विरुक्तैः कुर्यादंगानि साधकः सिद्ध्यै।
पूर्वतरेरितयोर्वा द्वयोरप्येकं तदंगयोः प्रभजेत्।। (वही, १३/२)

इस बात को अधिक स्पष्ट करते हुए पद्मपाद कहते हैं कि यदि रंजनादि उद्देश्यों से काममन्त्र 'क्लीं' को अंगी या प्रमुख बनाकर इसे त्रिपुटा मन्त्र के आरम्भ में रख साधना की जाती है, तब अठारहवें पटल में निरूपित काममन्त्र में प्रयुक्त अंगन्यास विधि ही इस मन्त्र में प्रयुक्त की जायगी। इसी प्रकार श्रीं ह्रीं तथा ऐं बीजों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

"मन्त्रविशेषाणामंगविशेषं सूचयति-पूर्वतरेति। पूर्वतरवक्ष्यमाण-कामबीजांगानामेकं वा कुर्यादित्यर्थः। यद्बीजादिको मन्त्र स्तस्यांगानि कुर्यादिति भावः"। (वही, १३/२ पर विवरण)

इस निर्देश के अनुसार द्विरुक्त बीजों से न्यास निम्न प्रकार से होंगे—

श्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्,
श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं कवचाय हुं, क्लीं अस्त्राय फट्।

त्रिपुटा मन्त्र की साधना में अंगन्यास 'श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा... आदि प्रकार से भी किये जाते हैं।

त्रिपुटा का ध्यान एवं जपादि

न्यास-विधान के उपरान्त कल्पवृक्ष के नीचे शुद्ध स्वर्ण की भांति प्रकाशमान धरती पर निर्मित मणिजटित आंगन में रत्नजटित सिंहासन पर स्थित कमल के आसन पर विराजमान, रत्नजटित मुकुटधारिणी, मणियों से जडे हुए कुण्डल, बाजूबन्द, करधनी तथा नूपुर धारण की हुई, हाथों में युगल कमल, पाश, वर मुद्रा, अंकुश, इक्षु-निर्मित धनुष तथा पुष्पों का बाण धारण की हुई, नूतन स्वर्ण की आभा वाली, हाथों में चामर, दर्पण मुद्ग (र) तथा ताम्बूल-कण्डोल (पिटारी) धारिणी, घृणिनी, सूर्या, आदित्या एवं प्रभावती नामक अपनी चार दूतियों से घिरी हुई तथा प्रसन्न मुद्रा में अपने साधक पर दृष्टिपात करती हुई लोकस्वामिनी त्रिपुटा का ध्यान करना चाहिये।

भगवती त्रिपुटा के ध्यान के अनन्तर त्रिपुटा मन्त्र का १२ लाख जप करना चाहिये। जप पूर्ण हो जाने के बाद बिल्व एवं अमलतास की समिधाओं से प्रज्ज्वलित अग्नि में त्रिमधुर से (दुग्ध, घृत तथा मधु) से संसिक्त १२ हजार जवापुष्पों का हवन करना चाहिये।

नवकनकभासुरोर्वीविरचितमणिकुट्टिमे सकल्पतरौ।
रत्नवरबद्धसिंहासननिहितसरोरुहे समासीनाम्।।
आबद्धरत्नमुकुटां मणिकुण्डलोद्यत्-
केयूरकोर्मिरसनाह्वयनूपुराढ्याम्।
ध्यायेद् धृजाब्जयुगपाशवरांकुशेक्षु-
चापां सपुष्पविशिखां नवहेमवर्णाम्।।
चामरमुकुरसमुद्गकताम्बूलकरंकवाहिनीभिश्च।
दूतीभिः समभिवृतां पश्यन्तीं साधकं प्रसन्नदृशा।।
लोकेश्वरीमिति विचिन्त्य जपेच्च मन्त्र-
मादित्यलक्षमथ मन्त्रितमो जपान्ते।
श्रीराजवृक्षसमिधां सजवार्त्तवानां
तावत्सहस्रसमितं मधुरैर्जुहोतु ।। (वही, १३/३-६)

त्रिपुटा की आवरण-पूजा

भगवती त्रिपुटा की आवरण-पूजा बाह्य तथा आन्तरिक दो प्रकार से की जाती है। बाह्य अर्चना के लिये सबसे पहले षड्गुणित यन्त्र बनाया जाना चाहिये। फिर यन्त्र के मध्य में अष्टदल कमल का निर्माण करके उसके बीच 'श्रीं ह्रीं क्लीं' बीजरूपी त्रिपुटा मन्त्र लिखकर इसके चारों ओर अंगमन्त्र लिखकर अंगपूजा करनी चाहिये। तदन्तर छहों कोणों में क्रमशः लक्ष्मीविष्णूभ्यां नमः, पार्वती-शिवाभ्यां नमः, रतिकामाभ्यां नमः लिखना चाहिये। पुनः तदनन्तर यन्त्र के छहों कोणों में 'शंखनिधये नमः, पद्मनिधये नमः' लिख षट्कोणों के बाहर वसुधारायै नमः, शंखनिधये नमः, वसुमत्यै नमः, पद्मनिधये नमः' लिखना चाहिये। इसके बाद कोणों के बाहर ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों तथा उनसे बाहर स्त्रीरूपधारी लोकपालों की इनसे सम्बन्धित मन्त्रों से षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये।

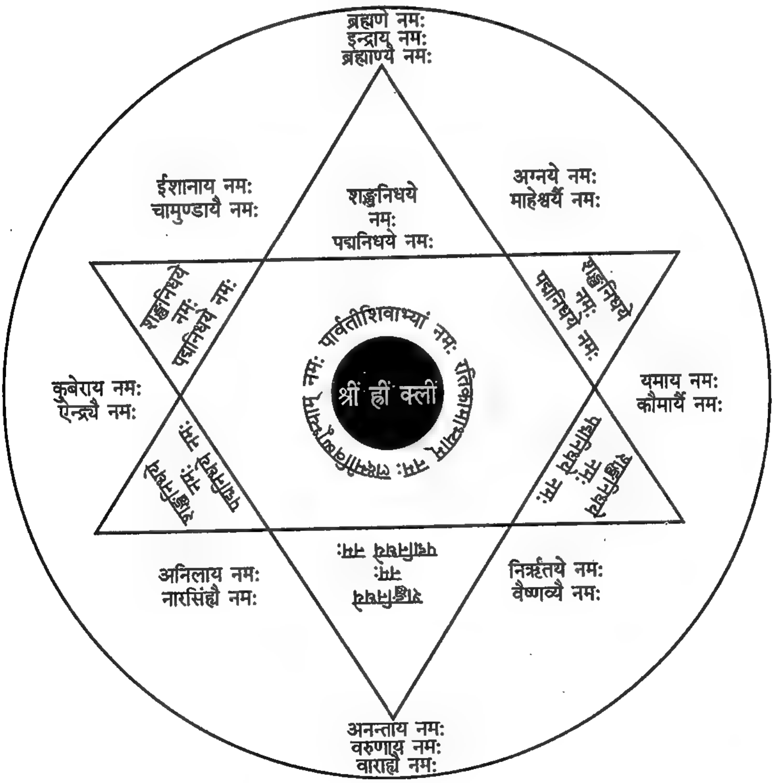
अंगैर्लक्ष्मीहरिगिरिसुताशर्वरत्यंगजातैः
षट्कोणस्थैर्निधियुगयुतैस्तद्बहिर्मातृभिश्च।
योषिद्रूपैबहिरपि यजेल्लोकपालैस्तदेतत्
प्रोक्तं देव्या अपि सुरगणैः पूजनीयं विधानम्। (वही, १३/७)

त्रिपुटा की आभ्यन्तर साधना

योग साधना के समय त्रिपुटा की आभ्यन्तर या मानसिक साधना की जाती है। इस आन्तर साधना-विधि का उल्लेख करते हुए आचार्य शंकर बताते हैं कि

त्रिपुटा मन्त्र के लक्ष्मी, गौरी तथा काम (श्रीं ह्रीं क्लीं) तीनों बीजों में समान रूप से 'कला' अर्थात् 'ई' एवं बिन्दु (अनुस्वार) विद्यमान है। साधक को चाहिये कि वह भावना द्वारा इन बीजों के अक्षरों का विलयन इनमें समान रूप से निहित कला अर्थात् 'ई' में करे। फिर, 'ई' रूपी कला को बिन्दु में, बिन्दु को नाद (ह) रूपी सिन्दूर वर्ण के आकाश में लीन कर दे। सिन्दूर की आभा वाला यह आकाश तत्त्व परम तेजस् है और समस्त संसार इसी तेजस् से व्याप्त है। इस प्रकार समस्त विश्व को सिन्दूराभ तेजस् से व्याप्त मानने वाला साधक देवताओं को भी अपने वश में कर लेता है, मनुजों की तो बात क्या?

सावरण त्रिपुटा यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/७)

[मन्त्र - 'श्रीं ह्रीं क्लीं' • जपसंख्या - १२ लाख • आहुति-संख्या - १२ हजार हवनद्रव्य - त्रिमधुरयुक्त जवापुष्प]

लक्ष्मीगौरीमनसिशयबीजानि कृत्वा कलायाम्
तां वा बिन्दौ तमपि गगने तच्च सिन्दूरवर्णम्।
स्मृत्वा बुद्ध्वा भुवनमखिलं तन्मयत्वेन मन्त्री
देवान् वश्यानपि वितनुते किं पुनर्मर्त्यजातीन्।। (वही, १३/८)

शंकर के अनुसार भगवती त्रिपुटा के उक्त मन्त्र का जप तथा उपर्युक्त विधि से उपासना करने वाला साधक संसार के सभी भोगों को भोगते हुए अन्त में परमतत्त्व के धाम मोक्ष को प्राप्त करता है।

इ इमं भजते मनुं मनस्वी विधिना वा पुनरर्चयेद्विधानम्।
स तु सम्यगवाप्य दृष्टभोगान् परतस्तत्परमैशमेति धाम।।
(वही, १३/९)

❋

धरामन्त्र साधना

भगवती धरा समस्त संसार को धारण करने वाली शक्ति है। धरादेवी सर्व व्यापक विष्णु की पत्नी के रूप में मान्य हैं। इनमें इच्छाशक्ति की प्रधानता है। धरादेवी की साधना से मानव समस्त भौतिक पदार्थों सहित चतुर्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है।

शंकर के अनुसार पहले ध्रुव (ओं), फिर हृदय (नमः) सहित 'भगवत्यै' पद, तब दान्त (ध), इसके बाद रण्यै (धरण्यै), फिर धरा, तब णि (धरणि), फिर शिव (ए) युक्त धर (धरे), फिर धारा वर्ण, तदनन्तर रे (धारे) और अन्त में द्विठ अर्थात् 'स्वाहा' (ओं नमः भगवत्यै धरण्यै धरणिधरे धारे स्वाहा) धरा देवी का मन्त्र है। धरा देवी के इस मन्त्र की साधना से साधक को पृथ्वी, सुख, सुत, धनधान्य तथा कीर्ति आदि सब कुछ प्राप्त होता है।

सहृदयभगवत्यै दान्तरण्यैधरार्णाः
सणिधरशिवधाणरिद्विठान्ता ध्रुवाद्याः।
गदितमिति धराया मन्त्रमुत्कृष्टधात्री-
सुखसुतधनधान्यप्राप्तिदं कीर्तिदं च।। (प्रपंचसारतन्त्र, १३/१०)

धरा मन्त्र के न्यासादि

धरामन्त्र के ऋषि वराह, छन्दस् निवृत्, देवता धरणी (पद्मपाद के अनुसार) बीज 'ग्लौं' तथा शक्ति 'स्वाहा' हैं।

ऋषिरपि वराह उक्तश्छन्दो निवृदस्य देवता धरणी। (वही, १३/११)

"ग्लौं बीजं। स्वाहा शक्तिः"। इति। (वही, विवरण)

धरामन्त्र में ऋष्यादिन्यास का रूप निम्नांकित होगा-

वराहाय ऋषये नमः शिरसि, निवृच्छन्दसे नमः मुखे,
धरण्यै देवतायै नमः हृदये, ग्लौं बीजाय नमः गुह्ये,
स्वाहा शक्तये नमः पादयोः ।

अंगन्यास

शंकर के अनुसार धरणी मन्त्र को छह भागों में विभाजित करने षडंगन्यास

की विधि सम्पन्न की जाती है। पद्‌मपाद के अनुसार उन्नीस अक्षरों वाले धरणी मन्त्र को तीन (ओं नमः), चार (भगवत्यै), तीन (धरण्यै), पांच (धरणिधरे) दो (धारे) तथा पुनः दो (स्वाहा) वर्णों में विभक्त कर तथा इनके आरम्भ में 'ग्लौं' बीज लगा कर षडंगन्यास करना चाहिये।

मनुनाऽमुनैव च पदैः षोढाभिन्नेन निगदितोऽङ्गविधिः।।

(वही, १३/११)

"त्रिचतुस्त्रिपंचद्विद्विवर्णैः षोढाभिन्नेनेत्यर्थः। न्यासास्तु ग्लौं बीजेन सह सामान्यपटलोक्ताः कर्तव्याः"। (वही, विवरण)

उक्तानुसार षडंगन्यास निम्न प्रकार से होगा—

ग्लौं ओं नमः हृदयाय नमः, ग्लौं भगवत्यै नमः शिरसे स्वाहा,
ग्लौं धरण्यै शिखायै वषट्, ग्लौं धरणिधरे कवचाय हुं,
ग्लौं धारे नेत्राभ्यां वौषट्, ग्लौं स्वाहा अस्त्राय फट्।

धरा देवी का ध्यान

न्यासविधि के उपरान्त 'रक्त कमल पर विराजमान, अरुणाभ चरणों वाली, श्यामांगी, एक हाथ में शाली (धान) की बाली के अगले भाग को अपने चंचु से स्पर्श कर रहे शुक (नामक पक्षी) तथा दूसरे हाथ में नीलकमल धारण करने वाली, लाल रंग के अंगरागों से सुशोभित, मणिमय मुकुट तथा विविध वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाली, प्रसन्नवदना, विष्णुप्रिया भगवती वसुन्धरा का ध्यान करना चाहिये।

मुख्याम्भोजे निविष्टारुणचरणतला श्यामलांगी मनोज्ञा
चंचच्छाल्यग्रचुम्बच्छुकलसितकरा प्राप्तनीलोत्पला च।
रक्ताकल्पाभिरामा मणिमयमुकुटा चित्रवस्त्रा प्रसन्ना
दिश्याद्विश्वंभरा वः सततमभिमतं वल्लभा कैटभारेः।। (वही, १३/१२)

पूजा-पीठ

भगवती धरा के मन्त्र का १ लाख जप करने के बाद दूध-भात तथा घृत के हविषान्न से १० हजार आहुतियां देनी चाहिये। हवन की विधि सम्पन्न कर लेने के अनन्तर अष्टदल कमलरूपी विष्णुपीठ पर कर्णिका वाले प्रथम आवरण में मन्त्र के पूर्वोक्त छह खण्डों से क्रमशः अंगपूजा करनी चाहिये। इसके बाद पूर्वादि मुख्य दिशाओं वाले दलों में क्रम से 'भूम्यात्मने नमः, अग्न्यात्मने नमः, अबात्मने

नमः, प्राणात्मने नमः' मन्त्रों से चार भूतों तथा उपदिशाओं में आग्नेयादि क्रम से निवृत्त्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः मन्त्रों से चार शक्तियों की एवं अष्ट दलों के बाहर इन्द्रादि लोकपालों की उनके आयुधों सहित अर्चना करके आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

पीठे विष्णोः पूजयेत्पूर्वमंगैर्भूवह्न्यम्बुप्राणसंज्ञैश्च भूतैः।
शान्त्यन्ताभिः शक्तिभिः साकमाशापालैः पृथ्वीं संयतात्मोपचारैः।।

(वही, १३/१४)

जप, हवन एवं प्रयोग

गोधनसहित भूप्राप्ति

जो साधक उक्त धरणी मन्त्र से मधुरत्रय से सिक्त प्रियंगु, नीलकमल अथवा श्वेत कमल के एक हजार पुष्पों का हवन करता है, उसे गोधन तथा धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वी प्राप्त होती है।

पुष्पैः प्रियंगोर्मधुरत्रयाक्तैर्नीलोत्पलैर्वापि तथाऽरुणैस्तैः।
सहस्रमानं प्रतिजुह्वतः स्याद्गौर्गोमतीशस्यकुलाकुला च।।

(वही, १३/१५)

शस्यश्यामला भूमि

जो साधक मधुरत्रय से युक्त भरीपूरी, पिंजरवर्णा (परिपक्व पीतवर्णा) शालिमंजरियों से प्रतिदिन सौ हवन करता है, उसे अपने मण्डल या शासक से विस्तृत भूमि प्राप्त होती है।

पिंजरां पृथुलशालिमंजरीं यो जुहोति मधुरत्रयोक्षिताम्।
नित्यशः शतमथाऽस्य मण्डलाद् हस्तगा भवति विस्तृता मही।।

(वही,१३/१६)

धरा-धन-पुत्रादि-सम्पत्ति की प्राप्ति

धरादेवी की साधना के एक अन्य प्रयोग के अनुसार छह मास तक प्रति शुक्रवार प्रातःकाल अपने साध्य देव, इष्ट अथवा जिससे वांछित वस्तु की प्राप्ति करनी है, के घर की भूमि से मिट्टी लाकर उसे भली-भांति जल में घोलना चाहिये। फिर उस घोल में चावल पकाकर उसमें दूध तथा घी मिलाना चाहिये। इस प्रकार बनाये गये हवन द्रव्य से अथवा दूध या केवल भात से ही एक हजार

हवन करने से साधक को समृद्ध, उपजाऊ भूमि के अलावा पुत्र, पशु तथा आनन्दप्रदायिनी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

भृगोस्तु वारे निजसाध्यभूमृद्विलोडिताम्भःपरिपक्वमन्धः।
पयोघृताक्तं जुहुयात्सहस्रं दुग्धेन वाऽन्नेन दिनावतारे।।
षण्मासादनुभृगुवारमेष होमः सम्पन्नान् सगुपनयेद् धराप्रदेशान्।
पुत्रान् वा पशुमहिषेष्टजुष्टपुष्टामिष्टामप्यनुदिनमिन्दिरां समग्राम्।।

(वही, १३/१७-१८)

आचार्य शंकर के अनुसार धरादेवी का उक्त मन्त्र एवं प्रयोग विशेषरूप से भूमिहीनों के लिये बताये गये हैं। लेकिन, उक्त विधि से धरणी की उपासना करने वाला प्रत्येक साधक जीवनभर जमीन, धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण रहता है तथा मृत्यु के बाद उसे परमगति प्राप्त होती है।

संक्षेपतो हृदयमन्त्रविधिर्धरायाः प्रोक्तो हिताय जगतां रहितक्षमाणाम्।
एनं भजन्निति धराकमलासमृद्धः स्यादत्र सिद्धिमपरत्र परां प्रयाति।।

(वही, १३/१९)

❋

19

त्वरिता मन्त्र-साधना

भगवती त्वरिता ऐसी शक्ति हैं, जो साधकों द्वारा किये गये जप, अर्चना तथा हवन आदि से प्रसन्न होकर त्वरित फल प्रदान करती हैं। त्वरिता साधकों को अति शीघ्र लौकिक सिद्धि देने के लिये उद्यत् रहती हैं तथा ज्वरग्रहादि से उत्पन्न भयों को नष्ट करने वाली हैं।

अथ पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धिकरी मन्त्रजापनिरतानाम्।
त्वरिताख्येयं विद्या निगद्यते जपहुतार्चनविधिभिः।।
भक्तियुतानां त्वरयासिद्धिकरी चेति मन्त्रिणां सततम्।
देव्यास्त्वरिताख्या स्यात्त्वरितं क्ष्वेळग्रहादिहरणतया।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १३/२०-२१)

आचार्य शंकर के अनुसार तार (ह्रीं) सहित वर्म (हुं), ऋद्धि (ख) और ए (खे), च (चकार), शिव (ए) युक्त च का अगला वर्ण छ (छे), चरम वर्ण (क्ष)*, अंगना (स्त्री), अर्घी (ऊ) एवं लव (अनुस्वार से युक्त घु अर्थात् ह (हूं) अस्त्र (फट्) अन्त वाले योनि (ए) से युक्त अन्तिम वर्ण क्ष (क्षे फट्) अर्थात् 'ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्रीं हूं क्षे फट्) यह दस अक्षरों वाला मन्त्र त्वरिता देवी का है।

वर्मदृर्ध्ये च तदन्त्यः शिवयुक् चरमांगनाघुसार्घिलवम्।
अन्त्यः सयोनिरस्त्रान्तिकः सतारो मनुर्दशार्णयुतः।। (वही, १३/२२)

शंकर ने 'सतार त्वरिता मन्त्र में अक्षरों की संख्या दस कही है। यहां 'सतार' का अर्थ 'शक्ति प्रणव ह्रीं सहित' है। इसलिये त्वरिता या अन्य किसी भी शक्ति के सम्बन्ध में जहां 'तार' शब्द का उल्लेख हो, वहां 'ओं' नहीं, देवी प्रणव 'ह्रीं' समझना चाहिये। इसलिये त्वरिता मन्त्र के आरम्भ में 'ओं' के स्थान पर 'ह्रीं' का प्रयोग किया जाना चाहिये। वैसे, शक्ति और शक्तिमान् में अभेद होने के कारण इन दोनों तारों में से किसी का भी प्रयोग गलत न होगा, लेकिन शक्ति की साधना के सन्दर्भ में शक्ति-प्रणव ह्रीं का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। प्रपंचसारतन्त्र के श्लोक 'आख्यां मध्ये सतारे..' में भी इसी का उल्लेख किया गया है। आचार्य पद्मपाद ने विवरण में इस श्लोक की व्याख्या करते हुए इसी तथ्य को उजागर किया है।

---

* शारदातिलक तथा मन्त्रमहोदधि के अनुसार क्षकार विसर्गयुक्त (अर्थात् क्षः) होगा।

"वर्म हुं। ऋद्धिः खं। ए ए एव। च इति च एव।
तदन्त्यश्छकार। शिव एकारः। चरमः क्षकारः। अंगना स्त्री।
सार्धिलवोद्युः हूं। मायाबीजं प्रयोजयेन्मन्त्रीति"।

(वही, १३/२२ पर विवरण)

जैसा कि विवरण के उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि पद्मपाद ने श्लोक में पठित 'ऋद्धये' पद में ऋद्धि 'ख' और 'ए' को पृथक्-पृथक् माना है। ऐसा मानने पर मन्त्र दशाक्षर न होकर ग्यारह अक्षरों 'ह्रीं हुं ख एं च छे क्ष स्त्री हूं क्षे फट्' वाला हो जाता है। लेकिन, शंकर के अनुसार त्वरिता-मन्त्र दस अक्षरों वाला ही है। इसलिये 'ऋद्धये' पद को ऋद्धि और ए (ख और ए) का संयुक्त रूप 'खे' ही मानना चाहिये। मन्त्रमहोदधि में यद्यपि त्वरिता मन्त्र को द्वादशाक्षरात्मक माना गया है, लेकिन वहां भी ' त्वरिता मन्त्र में ख और ए को अलग न मानकर 'खे' ही माना गया है।

"तारः परा वर्म खे च छे क्षः स्त्री वामकर्णयुक्।
गगनं शशिसंयुक्तं मेरु र्भगयुतोऽद्रिजा।
फडन्तो द्वादशार्णोऽयं त्वरिताया मनुर्मतः"।। (मन्त्रमहोदधि १२/२२-२३)

शंकर के अनुसार यदि इस दशार्ण मन्त्र में प्रयुक्त तार (ह्रीं) के अन्त तथा अस्त्र (फट्) से पहले माया बीज (ह्रीं) का योग कर दिया जाय तो, यह त्वरिता मन्त्र बारह अक्षरों (ह्रीं ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्री हूं क्षे ह्रीं फट्) वाला हो जाता है। बारह अक्षरों वाला त्वरिता मन्त्र अधिक प्रभावशाली होकर अतिशीघ्र साधक की अभिलाषा की पूर्ति करता है।

तारान्तेऽस्त्रादावपि मायाबीजं प्रयोजयेन्मन्त्री।
तेन हि कांक्षितसिद्धिर्भूयादचिरेण मन्त्रविदाम्।। (वही, १३/२३)

षडंगन्यास

त्वरिता मन्त्र में प्रयुक्त १० अक्षरों में से कूर्म (च) से आरम्भ कर पूर्व-पूर्व वर्ण छोड़ते हुए दो-दो वर्णों से युक्त मन्त्र के सात अक्षरों से षडंगन्यास की विधि सम्पन्न की जाती है।

कूर्मादिभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामपि पूर्वपूर्वहीनाभ्याम्।
कुर्यात्सप्तभिरर्णैरंगानि च षट् क्रमेण मन्त्रज्ञः।। (वही, १३/२४)

शंकर के इस निर्देश के अनुसार षडंगन्यास निम्न प्रकार से किया जायगा—

च छे हृदयाय नमः,
छे क्ष शिरसे स्वाहा, क्ष स्त्री शिखायै वषट्,
स्त्री हुं कवचाय हुं, हुं क्षे नेत्रत्रयाय वौषट्,
क्षे फट् अस्त्राय फट्।

मन्त्रवर्णन्यास

त्वरिता-मन्त्र में प्रयुक्त दस अक्षरों में से क्रमशः एक-एक अक्षर का न्यास शरीर के सिर, अलिक, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिंग, उरु, जानु, जंघा तथा चरणों में तथा समस्त दशाक्षर मन्त्र का सर्वांग में कर व्यापक न्यास सम्पन्न किया जाना चाहिये।

कालिकगलहृन्नाभिकगुह्योरुषु जानुजंघयोः पदयोः।
देहन्यासं कुर्यान्मन्त्रेण व्यापकं समस्तेन।। (वही, १३/२५)

त्वरिता का ध्यान, जप एवं हवन

न्यासादि विधि सम्पन्न करने के बाद श्यामलांगी, रक्तकमल पर निहित चरणा, शूद्रवर्ण के (कर्कोटक एवं पद्म) नागों की करधनी धारण की हुई, सुकोमल कोंपलों के वस्त्र पहने, वैश्य जाति के (तक्षक तथा महापद्म) सर्पों की मेखला धारण किये, क्षीण कटि तथा पृथुल उरोजों वाली, अभय तथा वरमुद्रा से युक्त हाथों वाली, मयूरपंखों से निर्मित कंकण-धारिणी, गुंजाफलों से रचित आभूषणों की लालिमा से अरुणवर्णा, क्षत्रिय जाति के (वासुकि तथा शंखपाल) महासर्पों से रचित केयूर धरिणी, कण्ठ में विविध मणियों से निर्मित आभूषण धारण करने वाली, ब्राह्मण जाति के (अनन्त तथा कुलिक) नामक नागों से रचित कुण्डलों के धारण करने से दर्पण के समान देदीप्यमान कपोलों वाली, विद्रुम मणि के समान कान्तिमान रक्ताभ अधर पल्लवों वाली, प्रसन्नवदना, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखमण्डल वाली, दीर्घाकार एवं अरुणवर्ण वाले तीन नेत्र-कमलों से सुशोभित, घुंघराली अलकों से मण्डित मयूरपंखी मुकुट वाली, वनपुष्पों से देदीप्यमान, नृत्यरत मयूर के पक्षमण्डल के मध्य विराजमान मनोहारी सिंहासन पर आसीन, विभिन्न प्रकार के हाव-भावों वाली तरुणी किरातिनी भगवती त्वरिता का ध्यान करना चाहिये।

श्यामलतनुमरुणपंकजचरणतलां वृषलनागमंजीराम्।
पर्णांशुकपरिधानां वैश्याहिद्वन्द्वमेखलाकलिताम्।।
तनुमध्यनतां पृथुलस्तनयुगलां करविराजदभयवराम्।
शिखिपिच्छनालवलयां गुंजाफलगुणितभूषितारुणिताम्।।

नृपफणिकृतकेयूरां तां गलविलसद्विविधमणियुताभरणाम्।
द्विजनागविहितकुण्डलमण्डितगण्डद्वयीमुकुरशोभाम्।।
शोणतराधरपल्लवविद्रुममणिभासुरां प्रसन्नां च।
पूर्णशशिबिम्बवदनामरुणायतलोचनत्रयीनलिनाम्।।
कुंचित्कुन्तलविलसन्मुकुटाघटिताहिवैरिपिच्छयुताम्।
कैरातीं वनकुसुमोज्ज्वलां मयूरातपत्रकेतनिकाम्।।
सुरुचिरसिंहासनगां विभ्रमसमुदायमन्दिरां तरुणीम्।
तामेतां त्वरिताख्यां ध्यात्वा कुर्याज्जपार्चनाहोमान्।। (वही,१३/२६-३१)

जप तथा हवन

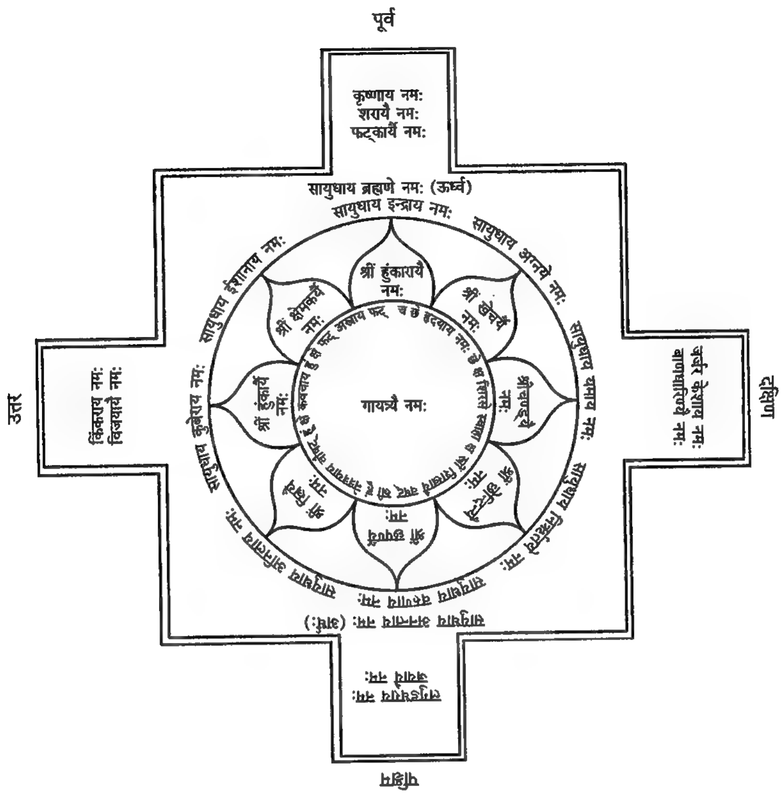
ध्यान के उपरान्त साधक को चाहिये कि वह अपने मन को वश में रख त्वरिता मन्त्र का १ लाख जप पूर्ण करके त्रिमधुर से संसिक्त १० हजार बिल्व समिधाओं का हवन करे।

दीक्षां प्राप्य गुरोरथ लक्षं जप्याद् दशांशके जुहुयात्।
बिल्वसमिद्भि स्त्रिमधुरसिक्ताभिः साधकः सुसंयतधीः।।
(वही, १३/३२)

आवरण-पूजा

हवन के पश्चात् त्वरिता देवी की आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। इसके लिये पहले आठ सिंहों द्वारा वहन किये जाने वाले सिंहासन के ऊपर आठ दलों का कमलासन निर्मित (अंकित) कर उस पर आसीन होने के लिये त्वरिता देवी को आवाहित करना चाहिये। फिर इस आठ दलों वाले कमल की कर्णिका भाग के प्रथम आवरण में पूर्वादि क्रम से आठों दिशाओं में अंगमन्त्रों के साथ गायत्री की पूजा करनी चाहिये। कमल दलों की कर्णिका के अग्रभाग वाले द्वितीय आवरण में श्रीं बीज सहित हुंकारा, खेचरा, चण्डा, छेदिनी, क्षपणी, स्त्री, हुंकारी, तथा क्षेमकरी नामक त्वरिता की आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिये। कमल दलों के अग्रभाग वाले तृतीयावरण में लोकपालों तथा इसके बाहर चतुर्थावरण में उनके आयुधों की अर्चना करनी चाहिये। इसके बाहर पंचम आवरण में फट्कारी तथा बाहर बाणधारिणी शरा, पूजापीठ के द्वार पर स्वर्णवेत्र धारिणी जया और विजया के साथ कृष्णवर्ण तथा उलझी हुई घुंघराली केशराशि वाले लकुटधारी किंकर की अर्चना करनी चाहिये। इन सभी की पूजा लाल चन्दन तथा लाल रंग के वन पुष्पों, धूप-दीप-नैवेद्य, नृत्य-वाद्य तथा गीतों द्वारा की जानी चाहिये।

सावरण त्वरिता यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/३३-३६)

[**मन्त्र - 'ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्री हुं क्षे फट्' • जपसंख्या - १ लाख • आहुति-संख्या - १० हजार • हवनद्रव्य - त्रिमधुरयुक्त बिल्व की समिधाएँ**]

अष्टहरिविधृतसिंहासने समावाह्य सरसिजे देवीम्।
अंगैः सह प्रणीतां गायत्रीं पूजयेद् दिशां क्रमतः।।
हुंकाराख्या खेचरिचण्डे सच्छेदनी तथा क्षपणी।
भूयः स्त्रियाह्वयाहूंकारीसक्षेमकारिकाः पूज्याः।।
सश्रीबीजा लोकेशायुधभूषितान्विता दलाग्रेषु।
फट्कारी चाप्यग्रे शरा सशरधारिणी च तद्बाह्ये।।
सस्वर्णवेत्रयष्ट्यौ द्वाःस्थे पूज्ये पुनर्जयाविजये।
कृष्णो वर्वरकेशो लगुडधरः किंकरश्च तत्पुरतः।।

अरुणैश्चन्दनकुसुमैर्वनजैरपि धूपदीपनैवेद्यैः।
प्रवरैश्च नृत्यगीतैः समर्चयेद् भक्तिभरावनम्रतनुः।।

(वही, १३/३३-३७)

त्वरिता-साधना में सिद्धियां ही विघ्न

विधिपूर्वक जप, आहुति तथा अर्चना से जब साधक को त्वरिता मन्त्र सिद्ध हो जाता है, तब नर, यक्ष, सिद्ध, असुर तथा सुर आदि जातियों की अनुपम सुन्दरियां साधक के निकट प्रकट होकर उसके प्रेम की याचना करती हैं। ऐसी स्थिति में यदि साधक उन सुन्दरियों के प्रलोभन से विचलित नहीं होता, तभी त्वरिता देवी की कृपा उसे प्राप्त होती है और साधक जो भी चाहता है, उसे वह प्रदान करती हैं।

जपहुतपूजाभेदैरिति सिद्धे मन्त्रजापिनो मन्त्रे।
नारीनरनरपतयः कुर्वन्ति सदा नमस्क्रियामस्मै।।
विद्याधर्यो यक्ष्यः ससुरासुरसिद्धचारणप्रमदाः।
अप्सरसश्च विशिष्टाः साधकसक्तेन चेतसाकुलिताः।।
स्मरशरविह्वलितांग्यो रोमांचितगात्रवल्लरीललिताः।
घनघर्मबिन्दुमौक्तिकविलसत्कुचगण्डमण्डलद्युतयः।।
विष्पष्टजघनवक्षोरुहदोर्मूलाः प्रस्खलत्पदन्यासाः।
मुकुलितनयनसरोजाः प्रस्पन्दितदशनवसनसंभिन्नाः।।
श्लथमानांशुकचिकुरा मदविवशस्खलितमन्दभाषिण्यः।
मृदुतरमस्तकविरचितनत्यंजलयः प्रसादकांक्षिण्यः।।
ईक्षस्व देहि वाचं परिरम्भणपरमसौभाग्यमस्माकम्।
एहि सुरोद्यानादिषु रंस्यामः स्वेच्छया निरातंकम्।
इत्यादिवादि (णि) नीभिः प्रलोभ्यमानो यदा न विक्रियते।
मन्त्री तदैव वांछितमखिलं तस्मै ददाति सा देवी।। (वही, ३८-४४)

कामनानुसार हवन-द्रव्य

पूर्वोक्त विधि से निर्मित हवन-कुण्ड में योनि (त्रिकोण) की रचना करके उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित कर विधिपूर्वक पूजन के बाद सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये हवन करना चाहिये। विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिये विभिन्न हविष्यों का उल्लेख करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि समृद्धि के लिये गन्ने के टुकड़ों, आयुष्य-वृद्धि के लिये दूब, लक्ष्मी प्राप्ति के लिये धान्य, धन-

धान्य के लिये जौ, पुष्टि के लिये गेहूं, ऋद्धि के लिये तिल, स्वर्ण की प्राप्ति के लिये जामुन, शत्रुनाश के लिये राई-अक्षत, अक्षय सिद्धि के लिये वकुल-पुष्प, कीर्ति एवं उन्नति के लिये कुमुद, पुष्टि के लिये रक्त कमल, इष्टसिद्धि के लिये मधूक पुष्प, पुत्रप्राप्ति के लिये अशोक, स्त्रीप्राप्ति के लिये पाटल, विद्विष्टि अर्थात् उच्चाटन के लिये नीम, तुष्टि के लिये चम्पा और नीलकमल, स्वर्णसिद्धि के लिये कमल तथा समस्त प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिये पलाश के पुष्पों का हवन करना चाहिये। जपसंख्या के विषय में आचार्य ने निर्देश दिया है कि यह तीन हजार या दस हजार हो सकती है और जितनी संख्या में होम किया जाय, उतना ही जप किया जाना चाहिये।

योनिं कुण्डस्यान्तः प्रकल्प्य तत्राऽनलं समाधाय।
सम्पूज्य पूर्वविधिना जुहुयात्सर्वार्थसिद्धये मन्त्री।।
इक्षुशकलैः समृद्ध्यैः दूर्वाभिस्त्वायुषे श्रिये धान्यैः।
धान्याय यवैः पुष्ट्यैः गोधूमैर्ऋद्धये तिलैर्जुहुयात्।।
जम्बूभिः स्वर्णाप्त्यै राजीभिः शत्रुशान्तये तथाऽक्षतकैः।
अक्षयसिद्ध्यै वकुलैः कीर्त्यैः कुमुदैर्महोदयाय तथा।।
अरुणोत्पलैश्च पुष्ट्यै मधूकजैरिष्टसिद्धयेऽशोकैः।
पुत्राप्त्यै पाटलजैः स्त्रीसिद्ध्यैः निम्बजैश्च विद्विष्ट्यै।।
तुष्ट्यै नीलोत्पलकैः सचम्पकैः कनकसिद्धये पद्मैः।
सहकिंशुकैश्च सर्वोपद्रवशान्त्यै स साधको जुहुयात्।।
हुतसंख्या साहस्री त्रियुता वाऽथायुतान्विकी भवति।
यावत्संख्यो होमस्तावज्जप्यश्च मन्त्रिणा मन्त्रः।। (वही, १३/४५-५०)

त्वरिता मन्त्र के प्रयोग

ज्वर-विषादि की शान्ति

त्वरिता के मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से सिंचन करने से क्ष्वेळादि ज्वर शान्त हो जाते हैं। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित छड़ी के प्रहार, अभिमन्त्रित अंजुरी के जल के आघात तथा रोगी के कान में मन्त्र के जप से विष तथा ग्रहादि बाधाएं नष्ट हो जाती हैं। त्वरिता यन्त्र की स्थापना, उसमें भगवती की अर्चना आदि से भी विष, भूत, पिशाच तथा ग्रहादि से उत्पन्न बाधाएं समाप्त हो जाती हैं।

मनुमन्त्रितैश्च वारिभिरासेकः क्ष्वेळशान्तिकृद् भवति।
तज्जप्तयष्टिघातो मन्त्रितचुलुकोदकाहतिश्च तथा।।

तत्कर्णरन्ध्रजापात्सद्यो नश्युर्विषग्रहादिकरुजः।
तद्यन्त्रस्थापनमपि विषभूतादिप्रशान्तिकृत्प्रोक्तम्।। (वही, १३/५१-५२)

त्वरिता-यन्त्र

त्वरिता के निग्रह एवं अनुग्रह नामक यन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली हैं। इसका यथोचित विधि से निर्माण करके घर आदि में स्थापना करने अथवा शरीर पर धारण करने से चमत्कारिक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। शंकर ने त्वरिता के यन्त्रों की आलेखन-विधि तथा आलेखन में प्रयुक्त द्रव्यों का उल्लेख प्रपंचसारतन्त्र में विस्तार से किया है।

द्वादश रेखात्मक निग्रहचक्र

त्वरिता के निग्रह चक्र के निर्माण की विधि का उल्लेख करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि पहले बारह खड़ी और बारह ही पड़ी रेखाएं खींचकर

द्वादश रेखात्मक त्वरिता का विजयप्रद निग्रह यन्त्र

ईशान — अग्नि

ह्रीं	हुं	खे	च	छे	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	फट्	ह्रीं
फट्	ह्रीं	हूं	खे	च	छे	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	हूं
क्षे	हुं	खे	च	छे	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	फट्	खे
हूं	ह्रीं	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	फट्	ह्रीं	फट्	ह्रीं	च
स्त्रीं	फट्	छे	हुं	खे	च	छे	हुं	ह्रीं	हुं	छे
क्ष	क्षे	च	ह्रीं	फट्	ह्रीं त्वरिते ह्रीं	क्ष	खे	हुं	खे	क्षे
छे	हूं	खे	फट्	क्षे	हूं	स्त्रीं	च	खे	च	स्त्रीं
च	स्त्रीं	हुं	क्षे	हूं	स्त्रीं	क्ष	छे	च	छे	हूं
खे	क्ष	ह्रीं	फट्	क्षे	हूं	स्त्री	क्ष	छे	क्ष	क्षे
हुं	छे	च	खे	हुं	ह्री	फट्	क्षे	हूं	स्त्रीं	फट्
ह्रीं	फट्	क्षे	हूं	स्त्रीं	क्ष	छे	च	खे	हुं	ह्रीं

वायव्य — नैर्ऋत्य

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/५३)

[मन्त्र - 'ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्री हूं क्षे फट्' • जपसंख्या - १ लाख
आहुति-संख्या - त्वरितावत् (३ हजार या १० हजार)]

घर में उत्पन्न धुएं से निर्मित स्याही से उपर्युक्त निग्रह यन्त्र बनाकर उसे यदि किसी वल्मीक (बांबी), चौराहे अथवा अक्षक (अखरोट) वृक्ष के कोटर में रख दिया जाय, तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है, या वह विकलांग और रोगी हो जाता है।

वह्नेर्विण्निम्बनिर्यासकविषमसिभिः सीसपट्टेऽशुके वा
शावे पाषाणके वा विलिखतु मतिमान् काकपक्षेण यन्त्रम्।
वल्मीके चत्वरे वाऽक्षकतरुविवरे वा निदध्यादराति-
मृत्युं प्राप्नोति भूयादवयवविकलो व्याधितः पातितो वा।। (वही,१३/५७)

मारण विधान के लिये निर्मित त्वरिता-यन्त्र के निर्माण में प्रयुक्त होने वाली इन सामग्रियों को और स्पष्ट करते हुए आचार्य शंकर के शिष्य पद्मपाद ने बताया है कि श्लोक में लिखित अग्नि का विट्(वह्नेर्विड्) चिता के अंगार को कहते हैं। 'शाव' का अर्थ शूली पर चढ़ाये गये व्यक्ति का वस्त्र है। सूरण, चित्रक, नमक की डली, धतूर, त्रिकटुक, (शोंठ, पिप्पली एवं मरिचि) तथा घर के धुएं को नरादि* तेल में मिला कर दीपक में भर दे। इसके बाद उसमें शूली पर चढ़ाये गये व्यक्ति के वस्त्र से निर्मित बाती लगा कर उसे जलाये। इस प्रकार जलाये गये दीपक से उत्पन्न कालिख से बनी स्याही 'विषमसि' कही जाती है। सीसा देवजाति (ब्राह्मण) के हाथ से ही लेना चाहिये। पाषाण धोबी के घर का होना चाहिये। यन्त्र के निर्माण में स्थान-कालादि का ध्यान रखा जाना चाहिये। उदाहरण के लिये देश या स्थान शावांगण (श्मशान) और काल या समय अर्धरात्रि या सन्ध्यादि होना चाहिये। पद्मपाद के अनुसार उक्त यन्त्र को वल्मीकि में रखने से शत्रु विकलांग हो जाता है, चौराहे पर रखने से रोगी तथा अक्ष वृक्ष के कोटर में रखने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

"वह्नेर्विडंगारः शावः। सूरणचित्रकलोणपिण्डोन्मत्तत्रिकटुकगृहधूमा विषाः। तैर्नरादितैलेन* शूलारूढशवपटवर्त्या मसिः कार्या। सीसोऽपि देवताजातिहस्तगतो ग्राह्यः। शावांशुकः शूलारूढस्य ग्राह्यः। पाषाणो रजकपाषाणः.. अर्धरात्रिसन्ध्यादयः कालः। देशः शावांगणादिः। वल्मीकेऽवयववैकल्यं भवति। चत्वरे व्याधिः। अक्षतरुविवरे मरण-मिति भेदाः"। (वही, १३/५६-५७ पर विवरण)

---

*मूल ग्रन्थ में 'नरादितैलेन' का पाठ अनवधानतावश मुद्रित हुआ है। प्रकरण को देखते हुए लगता है कि 'नरास्थितैलेन' पाठ होना चाहिये। नरास्थि तैल का वर्णन भैषज्यरत्नावली के नाडीव्रण चिकित्सा प्रकरण में देखें।

दशरेखात्मक अनुग्रह चक्र

साधक के शत्रुओं के विनाश के लिये निग्रह चक्र के निर्माण और प्रयोग-विधि के विवेचन के अनन्तर आचार्य शंकर ने सौभाग्य प्रदान करने वाले अनुग्रह चक्र की निर्माण-विधि का भी वर्णन किया है। अनुग्रहचक्र का निर्माण १० सीधी और दस आड़ी रेखाओं से किया जाता है। कुल ८१ कोष्ठों वाले इस यन्त्र के मध्यवर्ती कोष्ठ में इन्दुबीज ठं तथा वं (इन्दुः ठकारवकारौ इति विवरणे) के बीच में साध्य का नाम (ठं त्वरिते वं) लिखा जाता है। इसके बाद ईशान कोण के कोष्ठ से आरम्भ कर चौसठ कोष्ठों में श्रीमन्त्र के ३२ अक्षर (श्री सा मा या या मा सा श्री सा नो या ज्ञे ज्ञे या नो सा, मा या ली ला ला ली या मा या ज्ञे ला ली ली ला ज्ञे या) दो आवृत्तियों में लिखे जाते हैं। तदनन्तर अन्तर्वर्ती १६ कोष्ठकों में नैर्ऋत्य कोण से आरम्भ कर क्रमशः प्रत्येक कोष्ठ में 'जूं, सः, वं, षट्' बीज चार आवृत्तियों में लिखे जाते हैं। इसके बाद यन्त्र के बाहर प्रत्येक दिशा में वषडान्त (त्वरिता मन्त्र में लिखित 'फट्' वर्ण के स्थान पर 'वषट्' शब्द का अन्त में प्रयोग करके) त्वरिता का नाम 'त्वरिते वषट्' लिखा जाता है।

खण्डेष्वेकाशीतिषु मध्येन्दुगसाध्यं
जूं सः पूर्वं दिक्स्थचतुःपंक्तिषु शैखम्।
लिख्याल्लक्ष्मीं शिष्टचतुःषष्टिषु विद्वान्,
ईशाद्यं कन्यादि च बाह्ये त्वरिताख्याम्।।
दिग्दिक्संस्थामस्त्रपदाविर्वषडन्ताम्,
मेदोमालावेटितबिम्बं घटवीतम्।
पद्मस्थं तत्पंकजराजद्वदनान्तम्,
प्रोक्तं चक्रं सम्यगथाऽनुग्रहसंज्ञम्।।
श्री सा माया यामा सा श्री सा नो याज्ञे ज्ञेया नो सा।
माया लीला लाली यामा याज्ञे लाली लीला ज्ञेया ।।

(वही, १३/६०-६२)

आचार्य पद्मपाद के अनुसार प्रत्येक कोष्ठ में पूरा मन्त्र भी लिखा जा सकता है।

"मध्यसंन्निहितदिक्पंक्तिषु जूं तदन्तरासु सः, ततो वं ततो षडित्येकः प्रकारः। सर्वं सर्वत्रेत्यपरः"। (वही, विवरण)

त्वरिता का दशरेखात्मक अनुग्रह यन्त्र

त्वरिते वषट्

	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	
ठ.	श्री	सा	मा	या	या	मा	सा	श्री	सा	ठ.
ठ.	या	श्री	सा	मा	या	या	मा	सा	नो	ठ.
ठ.	ज्ञे	मा	या	ज्ञे	ला	ली	ली	श्री	या	ठ.
ठ.	ला	या	षट्	जूं	सः	वं	ला	सा	ज्ञे	ठ.
त्वरिते वषट् ठ.	ली	ली	वं	षट्	ॐ त्वरिते वं	षट्	ज्ञे	नो	ज्ञे	ठ. त्वरिते वषट्
ठ.	ली	ला	सः	वं	सः	जूं	या	या	या	ठ.
ठ.	ला	ला	जूं	षट्	वं	सः	जूं	ज्ञे	नो	ठ.
ठ.	ज्ञे	ली	या	मा	सा	नो	या	ज्ञे	सा	ठ.
ठ.	या	मा	या	ली	ला	ला	ली	या	मा	ठ.
	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	

त्वरिते वषट्

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/६०-६२ तथा वहीं विवरण)

[**मन्त्र - 'श्रीसामाया यामासाश्री सानोयाज्ञे ज्ञेयानोसा।**
मायालीला लालीयामा याज्ञेलाली लीलाज्ञेया' ॥
(लक्ष्मी मन्त्र के ३२ अक्षर दो आवृत्तियों में एवं शेष १६ कोष्ठकों में
'जूं सः वं षट्' बीजों की चार आवृत्तियाँ)]

यन्त्र-लेखन के द्रव्यादि

आचार्य शंकर के अनुसार इस अनुग्रह चक्र का आलेखन श्वेत रेशमी वस्त्र अथवा स्वर्ण के फलक पर सोने की कलम से लाक्षा अथवा कुंकुम (केसर) की स्याही से लिखे गये इस यन्त्र को ताबीज आदि में रख जो व्यक्ति धारण करता है, वह कृत्या, मृत्यु, ग्रह, विष तथा पापादि से मुक्त तथा पुत्र-पौत्र, धन-धान्य से युक्त होकर दीर्घकाल तक जीवित रहता है।

लाक्षाभिः कुंकुमैर्वा विलिखतु धवले चांऽशुके स्वर्णपट्टे
लेखन्या स्वर्णमय्या दृढमपि गुलिकीकृत्य सन्धारयेद् यः।
कृत्यातो मृत्युतो वा ग्रहविषदुरितेभ्योऽपि मुक्तः स धन्यो
जीवेत्स्वैः पुत्रपौत्रैरपरिमितमहासम्पदा दीर्घकालम्॥ (वही, १३/६३)

द्वितीय अनुग्रह यन्त्र की विधि

नौ रेखाओं वाले एक अन्य अनुग्रह यन्त्र बनाने की विधि का निरूपण भी शंकर ने किया है। इसके अनुसार किसी सुन्दर स्वर्ण पट्ट पर नौ सीधी तथा उन्हें काटने वाली नौ आड़ी रेखाएं खींच कर ६४ कोष्ठकों का निर्माण करना चाहिये। फिर ईशान कोण से आरम्भ करके इन ६४ कोष्ठकों में प्रदक्षिणा क्रम में लक्ष्मी मन्त्र 'श्री सा माया यामा' आदि लिखना चाहिये। फिर इस यन्त्र के बाहर ईशानादि चारों कोणों में अमृत बीज (ठं तथा वं) से पुटित तूर्णा अर्थात् त्वरिता (ठं त्वरिते वं) लिखा जाना चाहिये। इस विधि से निर्मित अनुग्रह-चक्र नामक यन्त्र की स्थापना जिस स्थान या देश में की जाती है, वहां सभी प्रकार की सम्पन्नता रहती है।

नौ रेखात्मक अनुग्रह यन्त्र

पूर्व

ठं त्वरिते वं (ऊपर बायें) — ठं त्वरिते वं (ऊपर दायें)

श्री	सा	मा	या	या	मा	सा	श्री
ली	ली	ला	ज्ञे	या	श्री	सा	सा
ला	सा	मा	या	ली	ला	मा	नो
ज्ञे	नो	ली	ली	ला	ला	या	या
या	या	ला	या	ज्ञे	ली	या	ज्ञे
मा	ज्ञे	ज्ञे	या	मा	या	मा	ज्ञे
या	ज्ञे	या	नो	सा	श्री	सा	या
ली	ला	ला	ली	या	मा	सा	नो

ठं त्वरिते वं (नीचे बायें) — ठं त्वरिते वं (नीचे दायें)

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/६४-६५ तथा वहीं विवरण)

[मन्त्र - 'श्रीसामाया यामासाश्री सानोयाज्ञे ज्ञेयानोसा।
मायालीला लालीयामा याज्ञेलाली लीलाज्ञेया' ॥
(सभी ६४ कोष्ठकों में मन्त्र का एक-एक अक्षर)]

चतुःषष्ट्यंशे वा क्रमविदथ लक्ष्मीमनुममुं
शिवाद्यं नैर्ऋत्यादिकमपि च तूर्णामृतवृतम्।
बहिः स्वच्छे पट्टे कनकविहिते पूर्वविधिना

लिखित्वा जप्त्वा निक्षिपतु शितधीर्यत्र तदिदम्।।
चक्रमनुग्रहसंज्ञं मन्त्री देशेऽत्र सम्पदोऽविरतम् ।
शुभतरफलदायिन्यो भवन्ति शस्यर्द्धिकालवृष्टाद्याः ।(वही,१३/६४-६५)

पद्मपाद के अनुसार श्लोक में लिखित 'अमृत' का अर्थ ठ एवं व है तथा तूर्णा त्वरिता का ही अन्य नाम है।

"तूर्णा त्वरिता। अमृतं ठवौ ताभ्यां बहिर्वृतमित्यर्थः"। (वही, विवरण)

श्रीकर त्वरिता यन्त्र

त्वरिता साधना के लिये एक अन्य यन्त्र की निर्माण-विधि का भी उल्लेख शंकर ने किया है। इसके अनुसार पहले स्वर्ण से निर्मित एक फलक पर एक कलश की आकृति का आलेखन कर उस पर अष्टदल कमल बनाना चाहिये। फिर उसकी कर्णिका में त्वरिता मन्त्र के दो अक्षर ह्रीं और हुं (शक्ति बीज ह्रीं के रेफांश में हुं), आठ दलों में पूर्वादि क्रम से मन्त्र के शेष आठ वर्ण (खे च छे क्ष स्त्री हूं क्षे फट्) लिखने चाहिये। इसके बाद कमल दलों के बाहर तीन वृत्त बनाकर उनमें तीन-तीन बार 'ह र ईं' लिखकर यन्त्र को वेष्टित कर देना चाहिये। कमलदलों से पुटित यह श्रीकर यन्त्र सभी आपदाओं से रक्षा एवं प्रसिद्धि तथा वशीकरण के लिये उपयोगी है।

हुंकारे साध्यसंज्ञां विलिखतु तदधः कर्णिकायां च शिष्टा-
नष्टौ वर्णान् दलेष्वारचयतु हरमायां त्रिशो वेष्टयीत।
कुम्भस्थं यन्त्रमेतत् सरसिजपुटितं सर्वरक्षाप्रसिद्ध्यै
क्लृप्तं रक्षोपसर्गप्रशमनफलदं श्रीकरं वश्यकारि।। (वही, १३/६६)

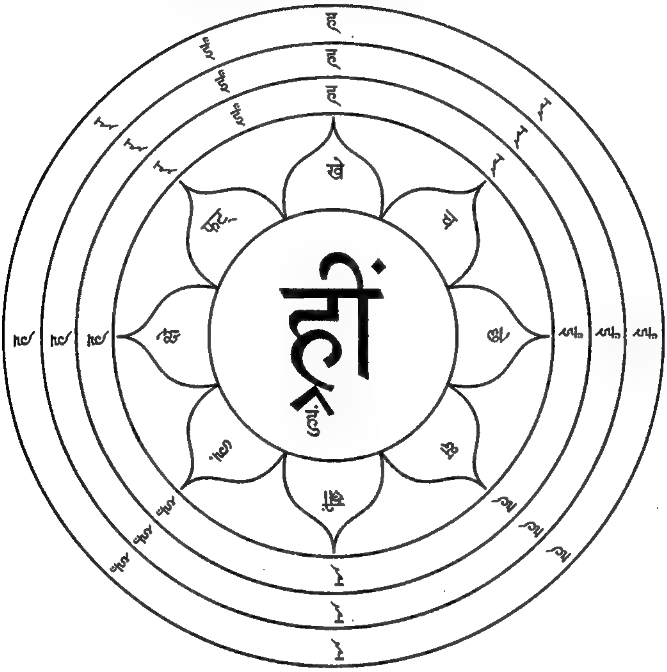
शंकर के 'हुंकारे साध्यसंज्ञां....' का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए पद्मपाद लिखते हैं कि शक्तिप्रणव 'ह्रीं' में हुं लिखना चाहिये। पद्मदलों के बाहर के वृत्तों में हकार, रेफ तथा माया (हरईं) लिखना चाहिये—

"तारे शक्तौ हुंकारो लेख्यः। पद्मबाह्ये वृत्तेषु हकाररेफमाया-
वेष्टनम्।" (वही, विवरण)

शंकर का कथन है कि जो व्यक्ति विधानानुसार तोतला देवी के मन्त्र का प्रतिदिन जपादि करता है, वह संसार में सभी सम्पदाओं का उपभोग करता हुआ मृत्यु के अनन्तर मुक्ति प्राप्त करता है। ज्ञातव्य है कि त्वरिता का ही अन्य नाम 'तोतला' है।

इति निगदितक्लृप्त्या पूजयेत् तोतलाया
मनुमनुदिनमेनमानयेन्मानवो यः।
स तु जगति समग्रां सम्पदं प्राप्य देहा-
पदि मुदिततरात्मा युक्तधीर्मुक्तिमेति।। (वही, १३/६७)

त्वरिता का श्रीकर-वशीकरणादि यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/६६)

[**मन्त्र - 'ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्री हूं क्षे फट्' • जपसंख्यादि - त्वरितावत्**]

नोट—पूजन में यन्त्र को कुम्भ पर रखा जाना चाहिए।

त्वरिता यन्त्र के विभिन्न प्रयोग

विवरण के अनुसार रक्षा तथा उपद्रवों की शान्ति के लिये कर्णिकागत तार बीज 'ह्रीं' को दुर्गा बीज 'दुं' से, धनप्राप्ति के लिये श्री बीज 'श्रीं' से तथा वशीकरण के लिये शक्ति बीज 'ह्रीं' से वेष्टित करना चाहिये।

"रक्षोपसर्गप्रशमनयोस्तारं दुर्गाबीजेन वेष्टयेत्। श्रीवेष्टितं श्रीकरम्। शक्तिवेष्टितं वश्यकारि"। (वही, विवरण)

❋

वज्रप्रस्तारिणी नित्या मन्त्र-साधना

नित्यामन्त्र की अधिष्ठात्री देवी वज्रप्रस्तारिणी इन्दिरा लक्ष्मी हैं। नित्या की उपासना से साधकों को भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। नित्या का उपासक मृत्युपर्यन्त दरिद्रता, रोग, दुःख, दुर्भाग्य, जरा तथा अकाल मृत्यु से मुक्त आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

शंकर के अनुसार दोनों ओर शक्ति (ह्रीं) से निरुद्ध या पुटित स्मर, दीर्घा, अधर, क, क, अग्नि, ओं, त्य, क्ष्वेळ, द, द्र, अन्त्यवर्ण एवं शिव वर्णों से निर्मित १२ अक्षरों वाला मन्त्र भगवती नित्या का है।

स्मरदीर्घेऽधरकाग्न्यों दीर्घे त्यक्ष्वेळदद्रलान्त्यशिवाः।
अभितः शक्तिनिरुद्धो द्वादशवर्णोऽयमीरितो मन्त्रः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १३/६८)

पद्मपाद ने उक्त श्लोक के कूटों को सुलझाते हुए बताया है कि यहां 'स्मर' शब्द का अर्थ कामबीज 'क्लीं' (क्लिं) है। 'दीर्घे' शब्द में दीर्घा तथा ए दो अक्षर हैं। इनमें दीर्घा शब्द का अर्थ 'न्' तथा 'ए' का तात्पर्य 'ए' ही है। इस प्रकार दोनों को मिलाने से 'ने' बनता है। अब 'क्लिं' के अनुस्वार को 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' के नियमानुसार सन्धि करके 'न्ने' और दोनों के सम्मिलित रूप से 'क्लिन्ने' शब्द निष्पन्न होता है। 'अधर' शब्द का अर्थ 'ऐ' है। तदनन्तर 'क' वर्ण है। इसमें दो अर्थ निहित हैं। पहला बिन्दु अर्थात् अनुस्वार जिसे 'ऐ' में मिला देने से मन्त्रांग 'ऐं' वर्ण निर्मित होता है, तथा दूसरा 'क्' ही है। तत्पश्चात् अग्नि अर्थात् 'र्' और 'ओं' वर्ण आते हैं। उक्त 'क्' में र् तथा ओं मिला देने पर 'क्रों' शब्द निष्पन्न होता है। इनसे मन्त्रांग' ऐं क्रों' बनते हैं। इसके बाद का 'दीर्घे' शब्द दीर्घा और इ की गुणसन्धि से बना है। दीर्घा 'न्' और 'इ' को मिला देने से 'नि' बनता है। इससे अगला वर्ण 'त्य' मिला देने से 'नित्य' शब्द का निर्माण होता है। इसके बाद क्ष्वेळ अर्थात् 'म', फिर 'द द्र' एवं ल के अन्तवाला वर्ण 'व्' एवं शिव अर्थात् 'ए' वर्ण हैं। इन सबको मिला देने से 'नित्ये मदद्रवे' मन्त्रांग बनते हैं। फिर इनसे पहले के मन्त्रांग 'क्लिन्ने ऐं क्रों' मिलाकर 'क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे' बनता है। इसके आदि

तथा अन्त में शक्ति बीज 'ह्रीं' से निबद्ध कर देने से 'ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं' यह द्वादशाक्षर नित्यामन्त्र निष्पन्न होता है।

> "स्मरं कामबीजम्। दीर्घा नकारः। दीर्घा च एकारश्च दीर्घैकारः। ततश्च क्लिन्ने इति सिद्धं भवति। अधर ऐकारः। को बिन्दुः ककारश्च। अग्नी रेफः। ओमिति स्वरूपम्। अतः ऐं क्रोमिति सिद्धं भवति। दीर्घा च इश्च दीर्घे। त्य इति स्वरूपम्। ततश्च नित्य इति सिद्धम्। क्ष्वेलो मकारः। दद्रेति स्वरूपग्रहणम्। लान्त्यो वकारः। शिव एकारः। ततश्च मदद्रवे इति सिद्धम्"। (वही, १३/६८ पर विवरण)

ऋष्यादि न्यास

आचार्य पद्मपाद के अनुसार नित्यामन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्दस्, त्रिष्टुप्, देवता वज्रप्रस्तारिणी, बीज ह्रीं तथा शक्ति ऐं हैं।

> "अंगिरात्रिष्टुब्वज्रप्रस्तारिण्यः ऋष्याद्याः, ह्रीं बीजम्, ऐं शक्तिः," इति विवरणे।

इस प्रकार ऋष्यादि न्यास का रूप निम्नांकित होगा—

ओं अंगिरसे ऋषये नमः (शिरसि),
ओं त्रिष्टुब् छन्दसे नमः (मुखे),
ओं वज्रप्रस्तारिणीदेवतायै नमः (हृदि)
ओं ह्रीं बीजाय नमः (गुह्ये),
ओं ऐं शक्तये नमः (पादयोः)

षडंगन्यास

नित्या मन्त्र की साधना में अंगन्यास नित्या के मन्त्र में प्रयुक्त वर्णों में से क्रमशः दो (या एक) वर्ण से हृदय न्यास (ह्रीं हृदयाय नमः), अथवा (क्लिन्ने हृदयाय नमः), फिर दो (ऐं क्रों शिरसे स्वाहा), फिर दो (नित्य शिखायै वषट्), पुनः दो (मद कवचाय हुं) तथा पुनः दो (द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्) फिर समस्त मन्त्र (ह्रीं क्लिन्ने नित्यमदद्रवे ह्रीं अस्त्राय फट्) से अस्त्रन्यास किया जाता है।

> **द्वाभ्यां वा चैकेन द्वाभ्यां द्वाभ्यां तथा पुनर्द्वाभ्याम्।**
> **मन्त्राक्षरैर्विदध्यादंगविधिं जातिसंयुतैर्मन्त्री।।** (वही, १३/६९)

नित्या का ध्यान

साधना के समय न्यासादि सम्पन्न करके सिर पर चन्द्रकला, काम तथा मद से आकुलित तीन नेत्रों वाली, रक्त-सागर में आन्दोल्यमान नौका के समान बारह दलों वाले चंचल रक्तकमल पर विराजमान, हाथों में दाडिम-निर्मित धनुष-बाण, पाश-अंकुश तथा कपालधारिणी, लाल रंग के वस्त्राभूषण तथा मालाओं से सुशोभित, रक्तवर्णा भगवती नित्या का ध्यान करना चाहिये।

इन्दुकलाकलितोज्ज्वलमौलिर्मारमदाकुलिताऽयुगनेत्रा।
शोणितसिन्धुतरंगितपोतद्योतितभानुदलाम्बुजसंस्था।।
दोर्धृतदाडिमसायकपाशा सांकुशचापकपालसमेता
शोणदुकूलविलेपनमाल्या शोणतरा भवतोऽवतु देवी।।

(वही, १३/७०-७१)

जप तथा आहुति

भगवती नित्या के ध्यान के अनन्तर उक्त मन्त्र को सिद्ध करने के लिये इसका १ लाख जप करके अमलतास की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में दस हजार घृताहुतियां देनी चाहिये।

स्मृत्वा नित्यां देवीमेवं प्रजपेन्मनुं शतसहस्रम्।
अयुतं जुहुयादन्ते नृपतरुसमिधा घृतेन सिद्ध्यै।। (वही, १३/७२)

आवरण-पूजा

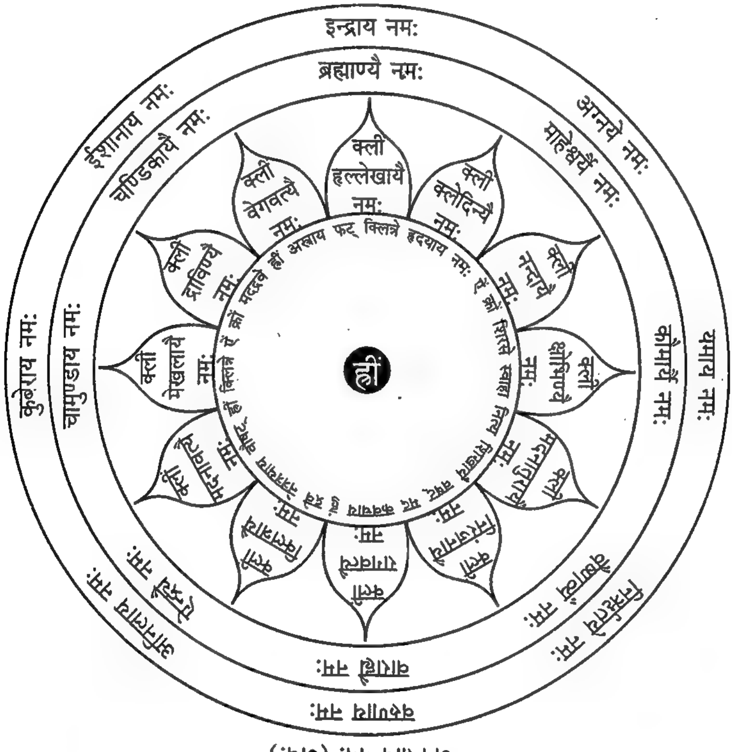
नित्या की आवरण-पूजा के लिये पहले बारह दलों का कमलचक्र निर्मित करके उसकी कर्णिका में भगवती नित्या का आवाहन करके उसके चारों ओर अंगमन्त्र, प्रत्येक दल में क्रमशः हृल्लेखा, क्लेदिनी, नन्दा, क्षोभिणी, मदनातुरा, निरंजना, रागवती, क्लिन्ना, मदनावती, मेखला, द्राविणी तथा वेगवती नामक बारह शक्तियों के नाम के पहले 'क्लीं' लिखकर, ब्राह्मी आदि आठ माताओं और दिग्पालों सहित भगवती की आवरण-पूजा करनी चाहिये। साधक को चाहिये कि वह भगवती नित्या की उपासना के समय स्वयं रक्त वर्ण के वस्त्राभूषणों को धारण करे तथा लाल रंग के पुष्पादि, धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादि से भगवती की षोडशोपचार आवरण-पूजा सम्पन्न करे।

शक्तिपीठे पूज्या देवी कुसुमानुलेपनैररुणैः।
स्वयमप्यलंकृतांगः सधूपदीपैर्निवेद्यताम्बूलैः।।

**हृल्लेखा क्लेदिनी नन्दा क्षोभणी मदनातुरा।
निरंजना रागवती क्लिन्ना च मदनावती।।
मेखला द्राविणी चैव तथाऽन्या वेगवत्यपि।
सस्मरा द्वादश प्रोक्ता शक्तयः पत्रसंस्थिताः।।
अंगै शक्तिभिराभिर्मातृभिराशाधिपैः क्रमात्पूज्याः।** (वही, १३/७३-७६)

सावरण नित्या यन्त्र

ब्रह्मणे नमः (ऊर्ध्वे)



अनन्ताय नमः (अधः)

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/७३-७६)

**[मन्त्र - 'ह्रीं क्लीन्त्रे ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं' • जपसंख्या - १ लाख
आहुति-संख्या - १० हजार • आहुतिद्रव्य - राजवृक्ष (अमलतास)
अमलता की समिधा एवं घृत]**

आचार्य शंकर के अनुसार साधक को चाहिये कि वह जनन-मरण से मुक्ति के लिये भक्तिपूर्वक प्रतिदिन भगवती नित्या की उपासना करे। जो व्यक्ति

नित्या की विधिपूर्वक उपासना करता है, वह दरिद्रता, रोग, दुर्भाग्य, जरा तथा अकाल मृत्यु से बचते हुए निर्बाध सुखपूर्ण जीवन जीता है। इन्दिरा का यह वज्रप्रस्तारिणी मन्त्र नर, नारी तथा शासक-प्रशासक सभी वर्गों को वशीकृत करने वाला लोकहितकारी मन्त्र है।

भक्तिभरानतवपुषा भवभयभंगाय मन्त्रिणाऽहरहः।।
दारिद्र्यरोगदुःखैर्दौर्भाग्यजरापमृत्युदोषैश्च।
अस्पृष्टो निरपायो जीवति मन्त्री भजन्निमं मनुजः।।
इतीरिता लोकहिताय वज्रप्रस्तारिणी मन्दिरमिन्दिरायाः।
या सर्वनारीनरराजवर्गसम्मोहिनी मोहनबाणभूता।।

(वही, १३/७६-७८)

❋

नित्यक्लिन्ना मन्त्र की साधना

आचार्य शंकर के अनुसार भगवती नित्यक्लिन्ना के मन्त्र के आरम्भ में माया अर्थात् ह्रीं, फिर नि और द्र वर्ण के बीच में 'त्यक्लिन्नमदद्र' और इनके बाद 'वे' (ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे) तथा अन्त में 'शिरः' अर्थात् स्वाहा है। इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' है। इस मन्त्र की साधना में अंगन्यास की विधि मन्त्र के दो-दो वर्णों से की जाती है।

निद्रयोरन्तरा त्यक्लिन्नेमदाः स्युश्च वे शिरः।
मायादिकस्तथा वर्णद्वन्द्वैश्चाऽगविधिः स्मृतः।। (प्रपंचसारतन्त्र, १३/७६)

नित्या की साधना में आचार्य शंकर ने नित्यामन्त्र की अधिष्ठात्री वज्रप्रस्तारिणी इन्दिरा को माना है, जबकि नित्यक्लिन्ना के ध्यान में शंकराचार्य ने भगवती के पार्वती स्वरूप का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि नित्यामन्त्र की साध्यदेवी वज्रप्रस्तारिणी इन्दिरा तथा नित्यक्लिन्ना मन्त्र की साध्यदेवी भगवती पार्वती हैं। दोनों मन्त्रों के स्वरूप तथा अर्चना की विधि में अन्तर है। नित्या के मन्त्र का स्वरूप जहां 'ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं' है, वहां नित्यक्लिन्ना के मन्त्र का स्वरूप 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ह्रीं' है। इसी प्रकार नित्या मन्त्र का पहला शब्द 'क्लिन्ने' है, जबकि नित्यक्लिन्ना मन्त्र का पहला शब्द 'नित्य' है।

न्यास

शंकर ने नित्यक्लिन्ना मन्त्र के ऋष्यादि का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु, पद्मपाद के अनुसार नित्या तथा नित्यक्लिन्ना के ऋषि, छन्दस्, देवता तथा अंगन्यास में भी मन्त्र की भांति अन्तर है। नित्यामन्त्र के ऋषि, छन्दस् तथा देवता क्रमशः अत्रि, त्रिष्टुब् तथा वज्रप्रस्तारिणी हैं, तो नित्यक्लिन्ना मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्दस् निवृत् देवता नित्यक्लिन्ना, बीज ह्रीं तथा शक्ति स्वाहा है।

"नित्यक्लिन्नायाः सम्मोहननिवृन्नित्यक्लिन्नादेव्यः ऋष्याद्याः। ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः"। (वही,१३/७६ पर विवरण)

इन उल्लेखों के अनुसार न्यासों के रूप निम्नांकित होंगे—

ऋष्यादिन्यास

सम्मोहनाय ऋषये नमः शिरसि,
निवृच्छन्दसे नमः मुखे,
नित्यक्लिन्नादेवतायै नमः हृदये,
ह्रीं बीजाय नमः गुह्ये,
स्वाहा शक्तये नमः पादौ

अंगन्यास

नित्य हृदयाय नमः, क्लिन्ने शिरसे स्वाहा,
मद शिखायै वषट्, द्रवे कवचाय हुं,
स्वाहा अस्त्राय फट्

नित्यक्लिन्ना देवी भी तीन नेत्रों वाली हैं। अतः नित्यक्लिन्ना के मन्त्र के षडंगन्यास में नेत्रन्यास का लोप नहीं होगा और यहां पंचांगन्यास नहीं षडंग-न्यास होगा। अतः षडंगन्यास का स्वरूप निम्नवत् होगा—

ह्रीं हृदयाय नमः,
नित्य शिरसे स्वाहा,
क्लिन्ने शिखायै वषट्,
मद कवचाय हुम्,
द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्,
स्वाहा अस्त्राय फट्

नित्यक्लिन्ना का ध्यान

नित्यक्लिन्ना देवी की साधना में रक्तवर्णा, रक्तवर्ण के वस्त्राभूषण, पुष्प तथा चन्दनादि का आलेपन किये, माथे पर चन्द्रमा, स्वेदयुक्त मुखारविन्द तथा मद से विह्वल आघूर्णित तीन नेत्रों वाली, हाथों में पाश, अंकुश, कपाल तथा अभयमुद्रा धारण किये, भक्तों को असीम फल देने वाली, रक्त कमल पर विराजमान भगवती पार्वती देवी नित्यक्लिन्ना का ध्यान करके उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हम सबकी रक्षा करें तथा अभीष्ट प्रदान करें।

रक्ता रक्तांशुककुसुमविलेपादिका सेन्दुमौलिः
स्विद्यद्वक्त्रा मदविवशसमाघूर्णितत्रीक्षणा च।
दोर्भिः पाशांकुशयुतकपालाभया पद्मसंस्था
देवी पायादमितफलदा नित्यशः पार्वती वः।। (वही, १३/८०)

जप, हवन एवं आवरण-पूजा

ध्यान के पश्चात् मन्त्र का १ लाख जप पूर्ण कर लेने के बाद त्रिमधुर संसिक्त महुए के पुष्पों अथवा अन्य हविष्य पदार्थों से १० हजार आहुतियां देनी चाहिये। हवन समाप्त कर लेने के बाद अष्टदल कमलपीठ की कर्णिका के मध्य नित्यक्लिन्ना, कर्णिका में अंगदेवताओं तथा आठ दलों में क्रमशः नित्या, निरंजना, क्लिन्ना, क्लेदिनी, मदनातुरा, मदद्रवा, द्राविणी तथा द्रविणा तथा अष्टदलों से बाहर लोकपालों का षोडशोपचार पूजन किया जाना चाहिये।

दीक्षितः प्रजपेल्लक्षं मनुमेनं हुनेत्ततः।
मधूकपुष्पै स्वाद्वक्तैरयुतं हविषाऽथवा।।
पीठं पूर्ववदभ्यर्च्य तत्रावाह्याऽभिपूजयेत्।
अंगैश्च शक्तिभिर्लोकपालैर्देवीं समाहितः।।
नित्या निरंजना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा।
मदद्रवा द्राविणी च द्रविणा शक्तयो मताः।। (वही, १३/८१-८३)

नित्यक्लिन्ना मन्त्र के प्रयोग

आकर्षण प्रयोग

रात्रि के समय अपनी शैया पर बैठ कर कोई व्यक्ति जिस नारी का स्मरण कर नित्यक्लिन्ना मन्त्र का १ हजार जप करता है, वह नारी कामदेव के बाणों से आहत होकर उस व्यक्ति के पास शीघ्र ही आ जाती है।

प्रजपेत्प्रमदां विचिन्त्य यां वा शयनस्थो मनुवित्सहस्रमानम्।
निशि मारशिलीमुखाहतांगी न चिरात्सा मदविह्वला समेति।।
(वही, १३/८४)

आचार्य शंकर ने नित्या आदि शक्तियों के मन्त्रों के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहा है कि नित्या-मन्त्रों जैसा लक्ष्मी, कीर्ति एवं आनन्द प्रदान करने वाला अन्य कोई मन्त्र नहीं है। अतः साधकों को चाहिये कि वे इन मन्त्रों का जप, अर्चना, हवनादि द्वारा विधिपूर्वक नित्या की उपासना करें।

नित्याभिः सदृशतरा न सन्ति लोके लक्ष्मीदा जगदनुरंजनाश्च मन्त्राः।
तस्मात्ता शुभमतयो भजन्तु नित्यं जपार्चनाहुतसमुपासनाविशेषैः ।।
(वही, १३/८५)

सर्वार्थसाधक नित्यक्लिन्ना यन्त्र

शंकर ने नित्यक्लिन्ना के 'सर्वार्थसाधक' नामक एक यन्त्र के निर्माण की विधि का निरूपण किया है। इस यन्त्र के निर्माण के लिये पहले एक दशदल कमल का निर्माण करना चाहिये। फिर इसकी कर्णिका के बीच में शक्ति बीज ह्रीं लिख इसके रकारांश में साध्य का नाम तथा कर्मादि लिखना चाहिये। तत्पश्चात् केसरों में शक्ति बीज के चारों ओर प्रदक्षिणा क्रम से पाश और शूल बीज 'आं क्रों' लिखना चाहिये। तदनन्तर दस दलों के मध्य पूर्वादि क्रम से नित्यक्लिन्ना मन्त्र के एक-एक अक्षर लिखना चाहिये। इसके अनन्तर यन्त्र को बाहर से दोनों ओर से 'स्वाहा' शब्द से निरुद्ध तथा पाश और अंकुश बीज युक्त षोडशाक्षर विद्या 'विद्ये विद्ये मालिनि चन्द्रिणि चन्द्रमुखि स्वाहा' से यन्त्र को परिवेष्टित करके इसे मृगमद अर्थात् कस्तूरी एवं गजमद से लिप्त कर देना चाहिये। इस प्रकार यन्त्र निर्मित कर नित्यक्लिन्ना मन्त्र के जपादि से अभिमन्त्रित कर सिर अथवा हाथ में धारण करने से साधक की समस्त अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं।

स्वर्णपट्टेऽथवा भूर्जे पाशबीजेन वेष्टयेत्।
शक्तिबीजं साध्यनाम तन्मध्ये परिकल्पयेत्।।
केसरेषु लिखेत्पाशशूलिबीजे प्रदक्षिणम्।
मन्त्रवर्णांशनित्यादीन् दलमध्येषु बाह्यतः।।
वृते स्वाहापदेनापि षोडशाक्षरविद्यया।
पाशांकुशाढ्यया पूर्वं प्रोक्तया वेष्टयेदपि।।
एतद्यन्त्रं मदालिप्तं मृगमातंगयोः परम्।
सर्वार्थसाधकं मूर्ध्नि करे वा विधृतं भवेत्।। (वही, १३/ ८६-८६)

शक्ति बीज ह्रीं और पाश बीज 'आं' के अनन्तर अंकुश बीज 'क्रों' के तथा काम के पांच बाणों के बीज द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः का संयोजन करके विद्येश्वरी नित्यक्लिन्ना के मन्त्र 'ह्रीं आं क्रों द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ह्रीं' का जप सर्वार्थसाधक होता है।

अंकुशस्मरबाणानां बीजाद्यं शक्तिपाशयोः।
सहस्रं प्रजपेदेनां विद्येशीं वीरमानसः।। (वही, १३/६०)

विवरण में उद्धृत टिप्पणी के अनुसार प्रपंचसारतन्त्र के इस तेरहवें पटल की श्लोक संख्या ८६ से ६० तक के पांच श्लोक कुछ पुस्तकों में प्राप्त नहीं हैं।

"स्वर्णेत्यादि वीरमानस इत्यन्तं श्लोकपंचकं क्वचिन्न दृश्यते"।
(वही, १३/८६-६० पर)

❋

दुर्गामन्त्र-साधना

परेश की शक्ति परा इच्छा, ज्ञान तथा क्रियारूपा है। दुर्गा में इच्छा और ज्ञान-शक्ति गौण रूप से है, प्रधानता क्रियाशक्ति की है। भगवती की यही क्रिया-शक्ति संसार के प्राणियों की दुर्गति से रक्षा करती है। इसीलिये दुर्गा दुर्गतिहारिणी कही गयी हैं। महर्षियों ने भगवती दुर्गा को अग्नि के समान दिव्यवर्णा, तेजस्विनी, दीप्तिमती, वैरोचनी, प्राणियों को उनके कर्मों का फल देनेवाली और असुरों का नाश करने वाली कहा है।

"तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान् नाशयित्र्यै ते नमः"।।

(देव्यथर्वशीर्ष-६)

पौराणिक आख्यानों के अनुसार जब-जब देवों, मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों पर विपत्तियां आई हैं, दुर्गा ने विभिन्न रूपाकारों में आविर्भूत होकर उनकी रक्षा की है। आचार्य शंकर ने इन्हीं भगवती दुर्गा के विभिन्न मन्त्रों के स्वरूप, उनके जप, अर्चना-उपासना तथा आवरण-पूजा की सांगोपांग विधि का निरूपण किया है।

दुर्गामन्त्र

शंकर ने दुर्गामन्त्र का उल्लेख करते हुए बताया कि तार (ओं), माया (ह्रीं), बिन्दु (अनुस्वार) सहित अमरेश (उं) से युक्त अद्रि (द) अर्थात् (दुं), इसके बाद विसर्ग युक्त यही द वर्ण (दुः) फिर, नति (नमः) जिसके अन्त में है, ऐसा 'गायै' पद (गायै नमः) दुर्गा का मन्त्र है। इन पदों को मिला देने पर भगवती दुर्गा के मन्त्र 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' का उद्घाटन होता है।

तारो मायाऽमरेशोऽद्रिपीठो बिन्दुसमन्वितः।
स एव च विसर्गान्तो गायै नत्यन्तिको मनुः।। (प्रपंचसारतन्त्र, १४/२)

ऋष्यादि एवं न्यास

दुर्गा मन्त्र के ऋषि नारद, छन्दस् गायत्री, देवता स्वयं भगवती दुर्गा हैं। विवरण के अनुसार दुर्गामन्त्र का बीज 'दुं' तथा शक्ति 'ह्रीं' है। दुर्गा मन्त्र में प्रयुक्त नमः पद को छोड़ कर केवल 'दुं दुर्गायै' मन्त्रांग में ओं लगाकर ह्रां ह्रीं आदि दीर्घ स्वरों के साथ अंगन्यास किया जाना चाहिये। शंकर ने दुर्गामन्त्र के

षडंगन्यास में 'तारो माया च दुर्गायै' 'दुं' बीज के प्रयोग का उल्लेख नहीं किया है। लेकिन 'शारदातिलक' एवं अनेक टीका ग्रन्थों में दुर्गामन्त्र के षडंगन्यास में दुं बीज के प्रयोग का निर्देश मिलता है।

"दुं बीजं ह्रीं शक्तिः" (इति विवरणे)

दुर्गाऽस्य देवता छन्दो गायत्रं नारदो मुनिः।
तारो माया च दुर्गायै ह्रामाद्यन्तांगकल्पना।। (वही, १४/३)

"नमस्कारवियुक्तेल मूलमन्त्रेण साधकः।
ह्रामाद्यैः सह कुर्वीत षडंगानि यथा विधिः"।। (शारदातिलक, ११/४)

उपर्युक्तानुसार न्यासों का रूप निम्न होगा—

ऋष्यादि न्यास

ओं नारदाय ऋषये नमः (शिरसि),
ओं गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
ओं दुर्गादेवतायै नमः (हृदि),
ओं दुं बीजाय नमः (गुह्ये)
ओं ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)

षडंग न्यास

ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रूं शिखायै वषट्,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रैं कवचाय हुम्,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओं ह्रीं दु दुर्गायै ह्रः अस्त्राय फट्।

दुर्गा का ध्यान

न्यास के बाद हाथों में शंख, चक्र, धनुष तथा बाण धारण किये, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रकला से सुशोभित मुकुट वाली, सिंह पर विराजमान, सिद्धों से नमस्कृत, दूर्वादल की भांति कान्तिमयी पापविनाशिका भगवती दुर्गा को नमस्कार करना चाहिये।

शंखारिचापशरभिन्नकरां त्रिनेत्रां तिग्मेतरांशुकलया विलसत्किरीटाम्।
सिंहस्थितां सकलसिद्धनुतां च दुर्गां दूर्वानिभां दुरितवर्गहरां नमामि।।
(वही, १४/४)

जप एवं हवन

भगवती दुर्गा की साधना में अभिषेक और दीक्षा के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह उक्त दुर्गामन्त्र का आठ लाख जप करे तथा घृत-दुग्ध मिश्रित भात (खीर) अथवा मधुरत्रय युक्त तिलों से आठ हजार आहुतियां दे।

कृताभिषेकदीक्षस्तु वसुलक्षं जपेन्मनुम्।
तदन्ते जुहुयात् सर्पिः संयुतेन पयोऽन्धसा।।
अष्टसाहस्रसंख्येन तिलैर्वा मधुराप्लुतैः। (वही, १४/५)

आवरण-पूजा

हवन की समाप्ति के बाद भगवती की पूजन-पीठ का निर्माण तथा उसमें उनकी आवरण-पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये। भगवती की पीठार्चना में आठ पंखुड़ियों वाला कमलचक्र बनाकर उन दलों में क्रमशः प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा की अर्चना क्लीव (ऋ ॠ ऌ ॡ) तथा ह्रस्वत्रय (अ इ उ) वर्णों को छोड़ शेष नौ स्वरों से की जानी चाहिये।

पीठाचयायां प्रयष्टव्याः क्रमात्तच्छक्तयो नव।
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी तथा।।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवमी तथा।
अर्च्या ह्रस्वत्रयक्लीबरहितैश्च स्वरैरिमाः ।। (वही, १४/६-७)

आचार्य के इस निर्देश के अनुसार दुर्गा की नौ शक्तियों की अर्चना निम्नांकित मन्त्रों से पूर्वादि क्रम से क्रमशः अष्टदलों में तथा नवमी शक्ति की कर्णिका स्थित दुं बीज के नीचे की जानी चाहिये—

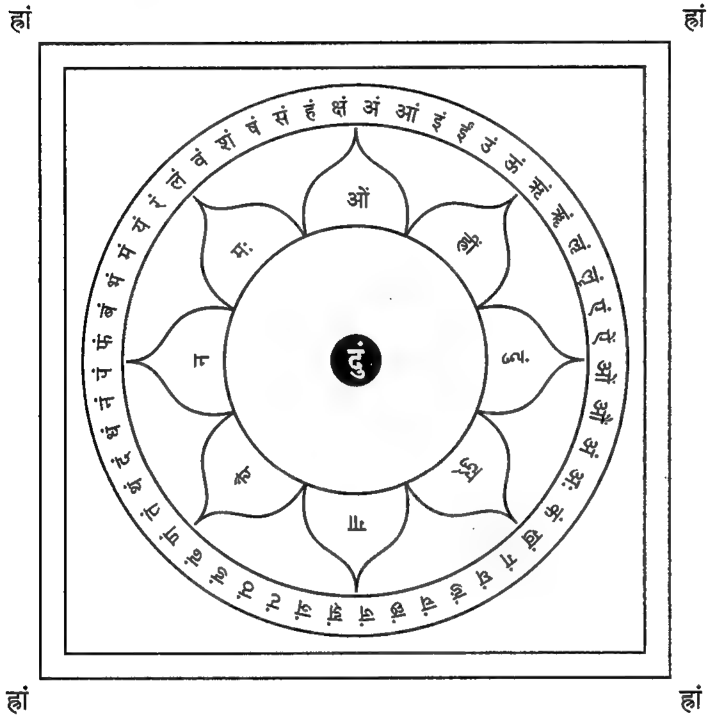
ओं आं प्रभायै नमः, ओं ईं मायायै नमः,
ओं ऊं जयायै नमः, ओं एं सूक्ष्मायै नमः,
ओं ऐं विशुद्धायै नमः, ओं ओं नन्दिन्यै नमः
ओं औं सुप्रभायै नमः, ओ अं विजयायै नमः,
ओं अः सर्वसिद्धिदायै नमः।

दुर्गा यन्त्र

भगवती दुर्गा की पीठार्चना के सम्बन्ध में आचार्य पद्मपाद का कथन है कि मूलमन्त्र से देवीमूर्ति की कल्पना करके 'ह्रींकार' से सभी प्रकार के न्यासों को सम्पन्न कर अष्टदल-कमल की कर्णिका में दुर्गा बीज 'दुं' की प्रतिष्ठा, आठ दलों

में से प्रत्येक में आठ वर्ण-वर्गों में से क्रमशः एक-एक वर्ग के अक्षरों का आलेखन, मातृकाओं से अष्टदल पीठ का आवेष्टन तथा भूपुर के कोणों में नृसिंह बीज 'ह्रां' का आलेखन करके दुर्गा यन्त्र का निर्माण करके इसमें भगवती दुर्गा की अर्चना करनी चाहिये।

सावरण दुर्गापूजन यन्त्र (पद्मपादानुसार)



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/१-१३ पर विवरण)

[मन्त्र - 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' • जपसंख्या - ८ लाख • आहुति-संख्या - ८ हजार हवनद्रव्य - घृतयुक्त खीर अथवा मधुरत्रय से युक्त तिल]

नोट—पद्मपाद के अनुसार यन्त्र को मातृका से वेष्टित कर देना चाहिए।

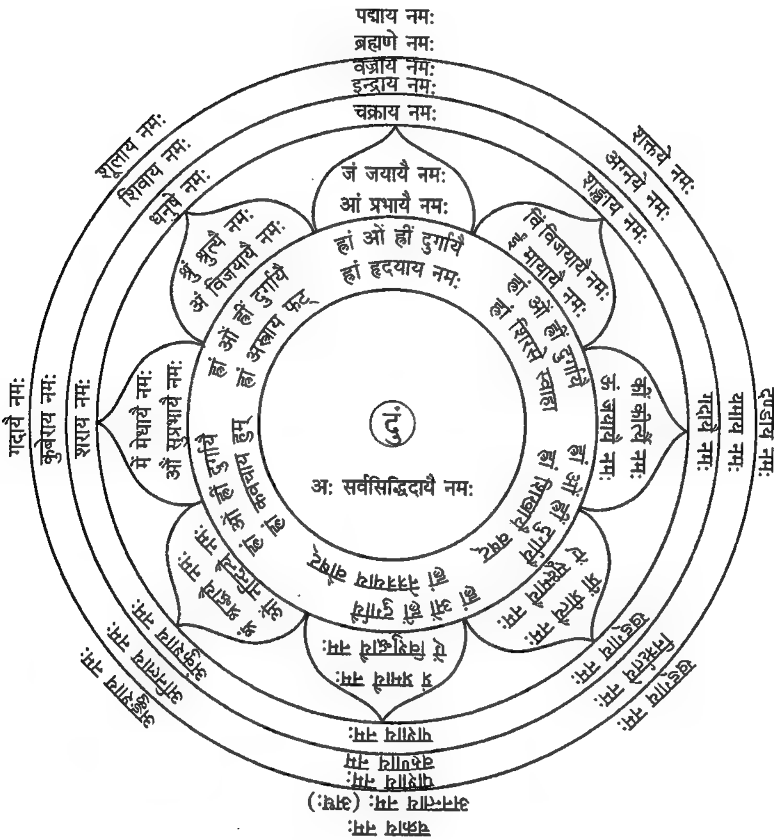
"मूलेन मूर्तिकल्पना, ह्रींकारसहिता न्यासाः, कर्णिकायां बीजम्, दलेषु वर्णाष्टकम्, मातृकया च बहिर्वेष्टनम्, भूबिम्बकोणेषु नृसिंह बीजमित्यस्मिन् यन्त्रे पूजयेत्"। (वही, १४/१-१३ पर विवरण)

सिंहमन्त्र

आचार्य शंकर ने भगवती के वाहन 'सिंह' के मन्त्र का उल्लेख अलग से

किया है। उनके अनुसार पहले तार (ओम्) उसके बाद वज्र पद तत्पश्चात् क्रम से नखदंष्ट्रायुधाय, महासिंहाय पद, तत्पश्चात् वर्म (हुं) , अस्त्र (फट्) और नति (नमः) अर्थात् 'ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' सिंह का मन्त्र है।

सावरण दुर्गापूजन यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/६-१३)

[**मन्त्र - 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' • जपसंख्या - ८ लाख • आहुति-संख्या - ८ हजार हवनद्रव्य - घृतयुक्त खीर अथवा मधुरत्रय से युक्त तिल**]

नोट—पद्मपाद के अनुसार यन्त्र को मातृका से वेष्टित कर देना चाहिए।

तारान्ते वज्रमाभाष्य नखदंष्ट्रायुधाय च।।
महासिंहाय चेत्युक्त्वा वर्मास्त्रनतयः क्रमात्।
सिंहमन्त्रोऽयमित्येवं सम्प्रोक्ताः पीठकल्पना।। (वही, १४/८-६)

दुर्गा-पूजन यन्त्र

शंकर के अनुसार भगवती दुर्गा की अर्चना-पीठ पंचावरण वाली है। इसके प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीयावरण में अष्ट शक्तियां, तृतीय आवरण में देवी के आठ आयुध, चतुर्थ आवरण में दस लोकपाल तथा पंचम आवरण में लोकपालों के दस आयुधों की पूजा के साथ भगवती दुर्गा की आवरण-पूजा सम्पन्न की जाती है।

अंगैः स्यादावृतिः पूर्वा द्वितीया शक्तिभिः स्मृता।
अष्टायुधैस्तृतीया स्याल्लोकपालैश्चतुर्थ्यपि।।
तदायुधैः पंचमी च दुर्गायजनमीदृशम्।। (वही, १४/१०-११)

दुर्गा की शक्तियां एवं आयुध

दुर्गा की जया, विजया, कीर्ति, प्रीति, प्रभा, श्रद्धा, मेधा तथा श्रुति नामक आठ शक्तियां हैं। इनकी पूजा इनके नामों के पहले बिन्दु सहित प्रथम नामाक्षर लगाकर चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग से द्वितीय आवरण में की जानी चाहिये। दुर्गा के शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, बाण तथा धनुष नामक आठ आयुध हैं। इनकी पूजा तृतीय आवरण में की जानी चाहिये।

जया च विजया कीर्तिः प्रीतिश्चाथ प्रभाह्वया।।
श्रद्धा मेधा श्रुतिरपि शक्तयः स्वाक्षरादिकाः।
चक्रशंखगदाखड्गपाशांकुशशरा धनुः।।
क्रमादष्टायुधाः प्रोक्ता दौर्गा दुर्गतिहारिणः। (वही, १४/११-१३)

लोकपाल और उनके आयुध

इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर, वरुण, वायु, कुबेर, शिव, अनन्त तथा ब्रह्मा ये दस दिग्पाल और वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूल, चक्र तथा पद्म इन दिग्पालों के आयुध हैं। इनकी पूजा क्रमशः चतुर्थ और पंचम आवरण में की जानी चाहिये।

इन्द्राग्नियमनिशाचरवरुणानिलधनेशशिवाहिपतिविधयः।
वज्रः सशक्तिः दण्डः खड्गः पाशांकुशौ गदाशूलौ।
रथचरणनलिनसंज्ञौ प्रोक्तान्यस्त्राणि लोकपालानाम्।।
(वही, ६/६१ एवं ६३)

अष्टदल कमल में आवरण-पूजा

उपर्युक्त निर्देशानुसार भगवती दुर्गा की पीठार्चना के लिये पांच आवरणों वाले एक अष्टदल कमलचक्र का निर्माण करके उसमें निम्नलिखित क्रम से आवरण मन्त्रों का अंकन करना चाहिये—

अष्टदल कमल की कर्णिका में दुर्गा बीज—

दुं

प्रथमावरणरूप केसरों में अंगपूजा मन्त्र—

ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रूं शिखायै वषट्,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रैं कवचाय हुम्,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओं ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रः अस्त्राय फट्।

द्वितीयावरण के अष्टदलों में पूर्वादि क्रम से—

जं जयायै नमः, विं विजयायै नमः,
कीं कीर्त्यै नमः, प्रीं प्रीत्यै नमः,
प्रं प्रभायै नमः, श्रं श्रद्धायै नमः,
में मेधायै नमः, श्रुं श्रुत्यै नमः।

तदनन्तर अष्टदलों के बाहर तृतीयावरण में—

चक्राय नमः, शंखाय नमः,
गदायै नमः, खड्गाय नमः,
पाशाय नमः, अंकुशाय नमः,
शरेभ्यः नमः, धनुषे नमः।

तत्पश्चात् चतुर्थावरण में—

इन्द्राय नमः, अग्नये नमः, यमाय नमः,
निर्ऋतये नमः, वरुणाय नमः, अनिलाय नमः,
कुबेराय नमः, शिवाय नमः, अनन्ताय नमः (ऊपर)
ब्रह्मणे नमः (नीचे)

तदनन्तर पंचमावरण में—

वज्राय नमः, शक्तये नमः, दण्डाय नमः,
खड्गाय नमः, पाशाय नमः, अंकुशाय नमः,
गदायै नमः, शूलाय नमः, चक्राय नमः,
पद्माय नमः।

इस प्रकार दुर्गापूजन यन्त्र का निर्माण करके उसमें भगवती की षोडशोपचार आवरण-पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये।

मन्त्रसिद्धि का फल एवं विधि

उपर्युक्त विधि से भगवती दुर्गा की साधना से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध होने से साधक लक्ष्मीवान् तथा दीर्घायु होता है तथा विपत्तियों पर विजय प्राप्त करता है। वह जो भी कामनाएं करता है, वे सभी अनायास ही पूर्ण हो जाती हैं। अर्चना-पीठ पर विधिपूर्वक कलश की स्थापना करके उस कलश के जल का साधक जिस पर भी सिंचन करता है, वह भूत, प्रेत तथा पिशाच आदि की बाधाओं से मुक्त हो जाता है। इस जल से अभिषिंचित राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। इससे अभिषिक्त नारी विनीत पुत्र प्राप्त करती है। दुर्गामन्त्र द्वारा तिल और सरसों से दो हजार हवन करने से गर्भ की रक्षा होती है। मन्त्र के जप, अभिषेक तथा हवन से सभी लोगों का कल्याण होता है। आचार्य शंकर के अनुसार संसार के कल्याण के लिये मुनियों ने दुर्गामन्त्र और इसकी पूजाविधि का निर्धारण पुराकल्प में ही कर लिया था।

**इत्थं दुर्गामनौ जापहुतार्चाभिः प्रसाधिते।।
मन्त्रीन्दिरावान् भवति दीर्घायुर्दुरितान् जयेत्।
यान् यानिच्छति कामान् स तांस्तानाप्नोत्ययत्नतः।।
विधाय विधिना तेन कलशं त्वभिषेचयेत्।
यमसौ भूतवेतालपिशाचाद्यैर्विमुच्यते।
राजाऽभिषिक्तो विधिना सपत्नानमुना जयेत्।।
अमुना विधिना कृताभिषेका ललना पुत्रमवाप्नुयाद्विनीतम्।
हवनात्तिलसर्षपैः सहस्रद्वितयैराशु भवेच्च गर्भरक्षा।।
अनयैव जपाभिषेकहोमक्रियया स्यादनुरंजनं जनानाम्।
भजतां सकलार्थसाधनार्थं मुनिवर्यैः परिकल्पितोऽयमादौ।।**

(वही,१४/१३-१७)

❋

वनदुर्गा मन्त्र-साधना

आचार्य शंकर ने अकस्मात् किसी भयंकर संकट में पड़े व्यक्ति को उस संकट से स्मरण-मात्र से मुक्त करने वाली भगवती वनदुर्गा के मन्त्र का भी निरूपण किया है। उनके अनुसार पहले 'उत्तिष्ठ' पद, फिर 'पुरुषि', फिर 'किं' सहित 'स्वपिषि', फिर 'भयम्,' तत्पश्चात् 'समुपस्थितम्', फिर 'यदि', तब 'शक्यमशक्यं वा', फिर 'तन्मे भगवति', फिर 'शमय' पद, और अन्त में 'ठयुगल' अर्थात् 'स्वाहा' पद से युक्त—

''उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम्।
यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा''।।

यह ३७ अक्षरों वाला मन्त्र भगवती वनदुर्गा का है।

उत्तिष्ठपदं प्रथमं पुरुषि ततः किंपदं स्वपिषियुतम्।
भयमपि मेऽन्ते समुपस्थितमित्युच्चार्य यदि पदं प्रवदेत्।।
शक्यमशक्यं वोक्त्वा तन्मे भगवति निगद्य शमयपदम्।
प्रोक्त्वा ठद्वितययुतं सप्तत्रिंशाक्षरो मनुः प्रोक्तः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १४/१८-१९)

ऋष्यादि एवं न्यास

वनदुर्गा मन्त्र के ऋषि आरण्यक, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता वनदुर्गा, बीज 'दुं' तथा शक्ति 'स्वाहा' (वनदुर्गायाः दुं बीजम्, स्वाहा शक्तिः विवरणे) है। सैंतीस अक्षरों वाले इस मन्त्र को छह, चार, आठ, आठ, छह तथा पांच वर्णों में क्रम से विभक्त करके षडंगन्यास किया जाता हैं।

आरण्यकोऽत्यनुष्टुब्वनदुर्गाख्याः क्रमेण भगवत्याः।
ऋष्यादिकाः स्वमनुना विहितान्यंगानि वाक्यभिन्नेन।।
षड्भिश्चतुर्भिरष्टभिरष्टार्णैः षड्भिरपि च पंचार्णैः।
जातियुतैश्च विदध्यादंगान्यपि षट् क्रमेण विशदमतिः।।

(वही, १४/२०-२१)

शंकर एवं पद्मपाद के उपर्युक्त निर्देश के अनुसार वनदुर्गा की उपासना में न्यासादि निम्नांकित रूप से किये जाने चाहिये—

ऋष्यादिन्यास

आरण्यकाय ऋषये नमः (शिरसि),
अनुष्टुप् छन्दसे नमः (मुखे),
वनदुर्गादेवतायै नमः (हृदये),
दुं बीजाय नमः (गुह्ये),
स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)

षडंगन्यास

उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः, किं स्वपिषि शिरसे स्वाहा,
भयं मे समुपस्थितम् शिखायै वषट्,
यदि शक्यमशक्यं वा नेत्रत्रयाय वौषट्,
तन्मे भगवति कवचाय हुम्, शमय स्वाहा अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यास

वनदुर्गा मन्त्र के ३७ अक्षरों का न्यास क्रमशः दोनों पैरों की सन्धियों, गुदा, गुह्येन्द्रिय, मूलाधार, उदर, दोनों पार्श्वों, हृदय, दोनों स्तनों, कण्ठ, दोनों हाथों की सन्धियों, मुख, दोनों नासिकाओं, दोनों कपोलों, दोनों नेत्रों, दोनों कानों तथा दोनों भौहों में किया जाना चाहिये।

पद्द्वयसन्धिगुदान्ध्वाधारोदरपार्श्वहृत्स्तनेषु गले।
दोःसन्धिवदननासाकपोलदृक्कर्णयुग्भ्रुके न्यस्येत्।। (वही, १४/२२)

इस निर्देश के अनुसार वनदुर्गा मन्त्र के ३७ वर्णों का उक्त अंगों में न्यास निम्न प्रकार से होगा—

उं नमः	(दक्षपादमूले)
त्तिं नमः	(दक्षपादजानुनि)
ष्ठं नमः	(दक्षपाद गुल्फे)
पुं नमः	(दक्षपादांगुलिमूले)
रुं नमः	(वामपादमूले)
षिं नमः	(वामपादजानुनि)
किं नमः	(वामपादगुल्फे)
स्वं नमः	(वामपादांगुलिमूले)
पिं नमः	(पायौ)

षिं नमः (गुह्ये)
भं नमः (मूलाधारे)
यं नमः (उदरे)
में नमः (दक्षपार्श्वे)
सं नमः (वामपार्श्वे)
मुं नमः (हृदये)
पं नमः (दक्षस्तने)
स्थिं नमः (वामस्तने)
तं नमः (गले)
यं नमः (दक्षबाहुमूले)
दिं नमः (दक्षबाहुकूर्परे)
शं नमः (दक्षबाहुमणिबन्धे)
क्यं नमः (दक्षबाह्वंगुलिमूले)
मं नमः (वामबाहुमूले)
शं नमः (वामबाहुकूर्परे)
क्यं नमः (वामबाहुमणिबन्धे)
वां नमः (वामबाह्वंगुलिमूले)
तं नमः (मुखे)
न्में नमः (दक्षनासिकायाम्)
भं नमः (वामनासिकायाम्)
गं नमः (दक्षकपोले)
वं नमः (वामकपोले)
तिं नमः (दक्षनेत्रे)
शं नमः (वामनेत्रे)
मं नमः (दक्षकर्णे)
यं नमः (वामकर्णे)
स्वां नमः (दक्षभ्रुवि)
हां नमः (वामभ्रुवि)

वनदुर्गा का ध्यान

ऋष्यादिन्यास, षडंगन्यास तथा मन्त्रन्यास की क्रिया सम्पादित कर लेने के बाद स्वर्ण की भांति कान्तिवाली, चन्द्रकला से सुशोभित ललाटवाली, हाथों में

शंख, चक्र, इष्ट और अभय मुद्रा धारण करने वाली, तीन नेत्रों वाली, स्वर्णकमल पर विराजमान, पीताम्बरा, प्रसन्न मुखमुद्रा वाली, दिव्यस्वरूपा भगवती वनदुर्गा का ध्यान करना चाहिये। ध्यान के पश्चात् प्रार्थना करनी चाहिये कि चक्र, शंख, कृपाण, खेट, धनुष-बाण, शूल तथा तर्जनी को धारण करने वाली हे भगवति दुर्गे! आप हमारे लिये कल्याणकारिणी हों।

हेमप्रख्यामिन्दुखण्डात्तमौलिं शंखारीष्टाभीतिहस्तां त्रिनेत्राम्।
हेमाब्जस्थां पीतवस्त्रां प्रसन्नां देवीं दुर्गां दिव्यरूपां नमामि।।
अरिशंखकृपाणखेटबाणान् सधनुःशूलकतर्जनीर्दधाना।
भवतां महिषोत्तमांगसंस्था नवदूर्वासदृशी श्रियेऽस्तु दुर्गा।।

(वही, १४/२३-२४)

उद्देश्य-भेद से ध्यान-भेद

प्रयोग-साधना में भुजाओं में चक्र, शंख, खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, शूल, कपाल, ऋष्टि, मुसल, कुन्त, नन्दक, वलय, गदा, भिन्दिपाल तथा शक्ति धारण करने वाली, महिष पर विराजमान, सजल मेघ की तरह श्यामवर्णा, अथवा सिंह पर सवार अग्नि के समान आभा वाली, अथवा कमल पर विराजमान मरकत मणि की कान्ति वाली, समस्त आभूषणों से सुसज्जित व्याघ्रचर्म धारण की हुई तीन नेत्रों वाली अथवा सर्पों से सुसज्जित काली घुंघराली केशराशि पर चन्द्रकला का मुकुट धारण किये हुए तथा सर्पों के कंगन, नूपुर, करधनी, भुजबन्ध तथा हार से सुशोभित, देवताओं तथा दैत्यों को क्रमशः अभय तथा भय देने वाली भगवती कात्यायनी के इन विभिन्न रूपों में से अपनी कामना के अनुरूप ध्यान किया जाना चाहिये।

चक्रदरखड्गखेटकशरकार्मुकशूलसंज्ञककपालैः।
ऋष्टिमुसलकुन्तकनन्दकवलयगदाभिन्दिपालशक्त्याख्यैः।।
उद्यद्विवकृतिभुजाढ्या माहिषके सजलजलदसंकाशा।
सिंहस्था वाग्निनिभा पद्मस्था वाथ मरकतश्यामा।।
व्याघ्रत्वक्परिधाना सर्वाभरणान्विता त्रिनेत्रा च।
अहिकलितनीलकुंचितकुन्तलविलसत्किरीटशशिकला।।
सर्पमयवलयनूपुरकांचीकेयूरहारसम्भिन्ना।
सुरदितिजाभयभयदा ध्येया कात्यायिनी प्रयोगविधौ।।

(वही,१४/२५-२८)

जप-संख्या एवं हवन

साधक को चाहिये कि वह अपने चित्त को अच्छी तरह नियन्त्रित करके प्रज्ज्वलित अग्नि की शिखाओं से सुशोभित भगवती वनदुर्गा का ध्यान करते हुए वनदुर्गा मन्त्र का ४ लाख जप करे तथा व्रीहि (धान), तिल तथा घी से निर्मित हवि से ४० हजार आहुतियां दे।

संयतचित्तो लक्षचतुष्कं जप्त्वा हुनेद्दशांशेन।
व्रीहितिलाज्यहविर्भिःसम्यग् संचिन्त्य भगवतीमनले।। (वही, १४/२९)

वनदुर्गा की आवरण-पूजा

न्यास, जप तथा हवन आदि का कार्य समाप्त कर लेने के बाद वनदुर्गा की पूजा अष्टदल कमल पीठ पर पूर्वोक्त अंगमन्त्रों, आठ शक्तियों, उनके आयुधों, आठ माताओं तथा दस दिग्पालों तथा उनके आयुधों के साथ की जानी चाहिये। भगवती वनदुर्गा की आठ शक्तियों के नाम आर्या, दुर्गा, भद्रा, भद्रकाली, अम्बिका, क्षेमा, वेदगर्भा तथा क्षेमंकरी तथा उनके आयुधों के नाम चक्र, शंख, कृपाण, खेटक, बाण, धनुष, शूल, पाण्डर तथा कपाल हैं। इन सबकी अर्चना पूर्वोक्त पीठ पर पूर्वोल्लिखित विधान के अनुसार ही की जानी चाहिये।

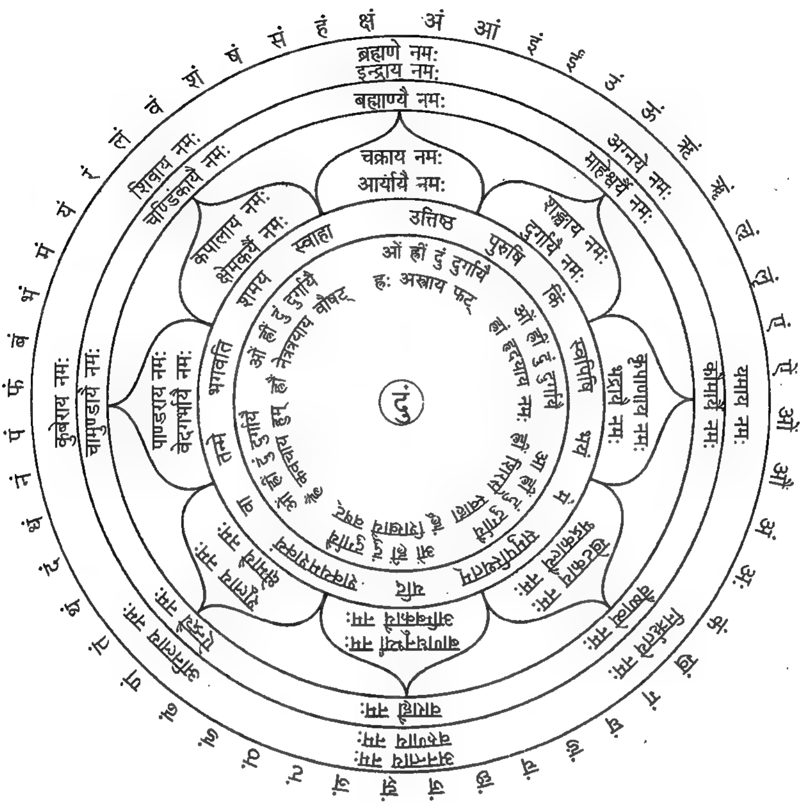
पीठे पूर्वप्रोक्ते पूज्यांगैः शक्तिभिस्तथाष्टाभिः।
अष्टायुधैश्च मातृभिराशेशैः क्रमश एव दुर्गेयम्।।
आर्या दुर्गा भद्रा सभद्रकाली तथाऽम्बिकाख्या च।
क्षेमा सवेदगर्भा क्षेमंकरी चेति शक्तयः प्रोक्ताः।।
अरिदरकृपाणखेटकबाणधनुःशूलपाण्डरकपालाः।
अष्टायुधाः क्रमेणोक्ताः पूर्वविधानवदथोदितं शेषम्।। (वही, १४/३०-३२)

वनदुर्गा मन्त्र के विभिन्न प्रयोग

सामान्यतया अपनी रक्षा के लिये इस वनदुर्गा मन्त्र का सौ अथवा हजार बार जप करना चाहिये। आचार्य शंकर के अनुसार जिन उद्देश्यों को लेकर इस मन्त्र का एक हजार अथवा दस हजार जप किया जायगा, वे उद्देश्य भले ही असाध्य हों, भगवती की कृपा से वे साधक को बहुत शीघ्र प्राप्त होते हैं।

विहितो जपः प्रतिदिनं निजरक्षायै शतं सहस्रं वा।।
उद्दिश्य यद्यदेनं मनुं जपेदथ सहस्रमयुतं वा।
तत्तन्मन्त्री लभ्येदचिरात्तदनुग्रहादसाध्यमपि।। (वही, १४/३३-३४)

सावरण वनदुर्गायन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/३०-३२)

[मन्त्र - 'उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम्। यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमयस्वाहा' ।। • जपसंख्या - ४ लाख • आहुति-संख्या - ४ हजार आहुतिद्रव्य - ब्रीहि, तिल तथा घृत]

वनदुर्गा मन्त्र की साधना साधक की कामना के अनुसार विभिन्न विधियों से की जा सकती है। सामान्यतया प्रातः स्नान करके सूर्य की ओर मुख करके नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर प्रतिदिन एक सौ आठ बार इस मन्त्र का जप करने से मनोरथ की सिद्धि तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। त्रिशूलधारिणी भगवती वनदुर्गा का ध्यान कर ज्वर, सर्प, ग्रहादि से पीड़ित के सिर का स्पर्श करते हुए इस मन्त्र का जप करने से ये उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

स्नात्वार्काभिमुखः सन्नाभिसमकेऽम्भसि स्थितो मन्त्री।
अष्टोर्ध्वशतं प्रजपेन्निजवांछितसिद्धये लक्ष्म्यै च।।
ध्यात्वा त्रिशूलहस्तां ज्वरसर्पग्रहविपत्सु जन्तूनाम्।
संस्पृश्य शिरसि जप्यात्तज्जन्योपद्रवं द्रुतं शमयेत्।। (वही,१४/३५-३६)

अपस्मार रोग से मुक्ति

मायूरकी (अपामार्ग) की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में जंगली तिलों अथवा राई का दस हजार हवन करने से अपस्मार आदि रोग तुरन्त समाप्त हो जाते हैं।

अयुतं तिलैर्वनोत्थैः राजीभिर्वा हुनेत्समिद्भिर्वा।
मायूरकीभिरचिरात्सापस्मारादिकांश्च नाशयति।। (वही, १४/३७)

ग्रहादि की शान्ति

विपत्तियों से मुक्ति, समृद्धियों की प्राप्ति तथा ग्रह आदि की शान्ति के लिये उक्त मन्त्र द्वारा शुंग सहित रोहण की समिधा में दस हजार हवन करना चाहिये।

जुहुयाद्रोहिणसमिधामयुतं मन्त्री पुनः सशुंगानाम्।
सर्वापदां विमुक्त्यै सर्वसमृद्ध्यै ग्रहादिशान्त्यै च।। (वही, १४/३८)

कामनाओं की पूर्ति

रविवार से आरम्भ करके आक की एक हजार समिधाओं का हवन करने से देवी की कृपा से १० दिनों से पहले ही मनोरथ की पूर्ति हो जाती है। साधक को चाहिये कि वह अपनी कामना की पूर्ति के लिये शुद्ध एवं प्रज्ज्वलित सार (खदिर) के टुकड़ों को तीन दिन या ७ रातों के अन्दर दस हजार हवन करे।

आर्कैः समित्सहस्रैः प्रतिजुहुयादर्कवारमारभ्य।
दशदिनतोऽर्वाग्वांछितसिद्धिर्देव्याः प्रसादतो भवति।।
शुद्धैः सारैरिध्मैस्त्रिदिनं वा सप्तरात्रकं वापि।
प्रतिशकलं प्रतिजुहुयान्मनुना निजवांछिताप्तये मन्त्री।।

(वही, १४/३९-४०)

शत्रु की सेना पर विजय

पवित्र आचरणवाला पराक्रमी सैनिक अपने ३० बाणों (अस्त्रों) को सामने रख कर तीक्ष्ण (सरसों) के तेल से १ हजार अथवा १० हजार हवन करे। उक्त

संख्या में हवन पूर्ण करके पुनः भूमि पर गिरे हुए उक्त तेल से उन अस्त्रों को लिप्त करके पुनः एक हजार या दस हजार हवन करे। इसके बाद उन अस्त्रों को शत्रु की सेना के बीच फेंके। इससे शत्रुओं की सेना घबरा कर भाग खड़ी होगी।

विशिखानां त्रिंशत्कं पुरो निधायाऽथ तीक्ष्णतैलेन।
जुहुयात्सहस्रकं वाऽयुतमपि संख्यासु पूरितासु पुनः।।
सम्पातिततैलेन च शरान् समभ्युक्ष्य पूर्ववज्जुहुयात्।
तानथ शूरो धन्वी शुद्धाचारः प्रवेश (ध) येद् बाणान्।।
प्रतिसेनाया मध्ये सा धावति सद्य एव सम्भ्रान्ता। (वही, १४/४१-४३)

लोक-तिरस्कार

वनदुर्गा मन्त्र के १०८ बार के जप से अभिमन्त्रित चिता की भस्म जिसके सिर पर छिड़क दी जाय, वह व्यक्ति समाज से तिरस्कृत होकर देश-देशान्तर में भटकता फिरेगा।

अष्टोत्तरशतजप्तं यच्छिरसि प्रक्षिपेच्चिताभस्म।
स तु विद्विष्टो लोकैर्देशाद् देशान्तरं परिभ्रमति।। (वही, १४/४४)

उच्चाटन

हवा से गिराये गये कारस्कर के आठ हजार पत्तों को शत्रु के पैर की मिट्टी के साथ उक्त मन्त्र द्वारा हवन करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

कारस्करस्य पत्रैरष्टसहस्रैर्निपातितैर्मरुता।
जुहुयात्सपादपांशुभिरुच्चाटकरं भवेद्रिपोः सद्यः।। (वही, १४/४५)

शत्रु-सेना का स्तम्भन

शत्रु की सेना या विपक्ष को स्तम्भित करने के लिये विषवृक्ष (कुचला) के १ हजार पत्तों तथा इतने ही पुष्पों का हवन करने से साधक के सामने से विपक्ष वापस लौट जाता है।

सेनां संस्तम्भयितुं विषतरुसुमनःसहस्रकं जुहुयात्।
तावद्भिस्तत्पत्रैर्मन्त्री च तां निवर्त्तयति।। (वही, १४/४६)

शत्रु पर मारण-प्रयोग

विषवृक्ष अर्थात् कुचले के वृक्ष की लकड़ी से शत्रु की पुतली बनाकर उसमें कई बार प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। फिर उस पुतली के १ हजार आठ टुकड़े

करके उन्हें कौए एवं उल्लू की वसा (चर्बी) के साथ मिलाना चाहिये। तदनन्तर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की आधी रात में एकान्त जंगल में जाकर वसायुक्त पुतली के अंगों का हवन करने से केवल तीन चतुर्दशी तिथियों के भीतर, प्रयोग पूरा होने से पहले ही शत्रु की मृत्यु निश्चित हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं।

विषतरुमयीं च शत्रोः प्रतिकृतिमसकृत्प्रतिष्ठितप्राणाम्।
छित्त्वा छित्त्वा काकोलूकवसाक्तैः सहस्रमष्टौ च।।
असितचतुर्दश्यां तद् गात्रैर्जुहुयादरण्यकेऽर्धनिशिम्।
त्रिचतुर्दशीप्रयोगादर्वाक् म्रियते रिपुर्न सन्देहः।। (वही, १४/४७-४८)

मारण-प्रयोग

उल्लू एवं कौए के रक्त से मिश्रित उनकी वसा का उनके पंखों के साथ पन्द्रह दिनों तक धतूर की समिधा में एक हजार हवन करने से भी शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

स्ववसारक्तोपेतैर्जुहुयात्पक्षैरुलूकवायसयोः।
म्रियतेऽरातिर्मत्तः स्यादुन्मत्तसमित्सहस्रहोमेन।। (वही, १४/४९)

उन्माद और उससे मुक्ति

विषवृक्ष की लकड़ी से निर्मित शत्रु की प्रतिकृति में प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे गर्म पानी में रखकर वनदुर्गा मन्त्र का जप करने से शत्रु पागल हो जाता है। पागल व्यक्ति का उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित दूध से अभिषेक करने से वह अच्छा हो जाता है।

संस्थापितानिलां तां प्रतिकृतिमुष्णोदके विनिःक्षिप्य।
प्रजपेदुन्मादः स्याच्छत्रोर्दुग्धाभिषेकतः शान्तिः।। (वही, १४/५०)

शत्रु का विनाश एवं उच्चाटन

उठी हुई तर्जनी वाले दोनों हाथों में त्रिशूलधारिणी, सूर्य के बिम्ब में अरुण वर्ण की भगवती का ध्यान करते हुए दस हजार जप करने से शत्रु-समूह नष्ट हो जाता है। सूर्य के बिम्ब में स्थित तलवार तथा खेटधारिणी देवी का पूर्व की भांति जप तथा ध्यान करने से वह शत्रुओं का विनाश करती है। बाण एवं धनुष धारण किये सिंह पर विराजमान क्रुद्ध देवी का पूर्वोक्त विधि से ध्यान तथा जप करने से वह शत्रुओं का तुरत उच्चाटन करती है।

रविबिम्बगतामरुणां करयुगपरिक्लृप्तशूलतर्जनिकाम्।
ध्यात्वाऽयुतं प्रजप्यान्मारयितुं सद्य एव रिपुनिवहम्।।
असिखेटधराऽर्कस्था क्रुद्धा मारयति सैव जपविधिना।
सिंहस्था बाणधनुःकरा समुच्चाटयेदरीनचिरात्।। (वही, १४/५१-५२)

गजाश्व प्रकरण

प्राचीन एवं मध्यकाल में युद्ध के मैदान में हाथियों का बड़ा महत्त्व होता था। जिस राजा के पास विशाल हस्तिसेना होती थी, युद्ध में उसकी विजय प्रायः निश्चित होती थी। हस्तिसेना की इसी महत्ता को ध्यान में रखते हुए शत्रु की हस्तिसेना के विनाश के लिये या उसके हाथियों को पागल बना देने के लिये अनेक प्रकार के तान्त्रिक प्रयोग किये जाते थे। शायद इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्य शंकर ने भी हाथियों को वश में करने, उन्हें पागल बना देने अथवा नष्ट कर देने के अनेक तान्त्रिक प्रयोगों की चर्चा की है।

आचार्य शंकर के अनुसार विषवृक्ष की समिधाओं से १० हजार हवन करने से हाथी रोगी हो जाते हैं। उसके पत्तों का हवन करने से हाथियों का विनाश निश्चित है तथा पुष्पों के हवन से उनका उच्चाटन होता है। आनित्यक की समिधा से हवन करने से हाथियों के रोग नष्ट हो जाते हैं। मधुरत्रय के साथ आनित्यक के पुष्पों का हवन करने से मतवाले हाथी वश में हो जाते हैं। त्रिमधुर युक्त आनित्यक के पत्तों के हवन से हाथी तुरन्त मदमस्त हो जाते हैं तथा वनदुर्गा मन्त्र से अभिमन्त्रित पंचगव्य के लेप से हाथियों की रक्षा होती है। घी, तिल, राई, आनित्यक, खीर, पंचगव्य तथा चावलों को मिलाकर या अलग-अलग एक हजार हवन करने से हाथी-घोड़ों की वृद्धि होती है।

विषतरुसमिदयुतहुतादथ करिणो रोगिणो भवन्त्यचिरत्।
तत्पर्णैश्च विनाशस्तेषामुच्चाटनं च तत्पुष्पैः।।
आनित्यकसमिद् होमाद्रोगा नश्यन्ति दन्तिनामचिरात्।
तत्पुष्पैर्मधुराक्तैर्होमाच्च वशीभवन्ति मातंगाः।।
त्रिमधुरयुतैरानित्यकपत्रैर्मत्ता भवन्ति ते सद्यः।
रक्षाकरस्तु करिणां तज्जापितपंचगव्यलेपः स्यात्।।
आज्यतिलराज्यानित्यकदुग्धौदनपंचगव्यतण्डुलकैः।
सघृतैश्च प्रत्येकं सहस्रहवनं गजाश्ववर्धनकृत्।। (वही, १४/५३-५६)

राष्ट्रादि की रक्षा

एक वटवृक्ष को काटकर उसके पांच टुकड़े करके उनसे किसी कुशल शिल्पी द्वारा शंख, सनन्दन, अरि, शांर्ग तथा कौमोदकी नामक पांच आयुधों का निर्माण कराके उन आयुधों को पंचगव्य में रख कर उनमें से एक को मध्य में तथा अन्य चार को पूर्वादि दिशाओं के क्रम से रखना चाहिये। फिर वनदुर्गा मन्त्र का पांच हजार जप करके उन आयुधों पर घृत-धारा गिराते हुए दस हजार हवन करना चाहिये। इसके बाद पुनः दस हजार जप करके उस पंचगव्य को 'शंखाय नमः स्वाहा, सनन्दनाय नमः स्वाहा' आदि उनके मन्त्रों से उन्हें बलि प्रदान करनी चाहिये। इस प्रयोग से नगर, राष्ट्रादि की सुरक्षा होती है। रक्षा का यह विधान जिस देश-राष्ट्र में किया जाता है, वहां धन-धान्य की वृद्धि होती है तथा चौरादि से वह देश-राष्ट्र पीड़ित नहीं होता।

द्विजभूरुहं महान्तं छित्त्वा निर्भिद्य पंचधा भूयः।
आशाक्रमेण पंचायुधा विधेयाश्च साधु शिल्पविदा।।
शंखः सनन्दकोऽरिः शाङ्र्गः कौमोदकी दिशां क्रमशः।
पंचेति पंचगव्ये निधाय जप्याच्च पंचसाहस्रम्।।
तावद्घृतेन जुहुयात्तेष्वथ सम्पात्य साधु सम्पातम्।
पुनरपि तावज्जप्त्वा मध्याद्यवटेषु पंचगव्ययुतम्।।
संस्थाप्य समीकृत्य च बलिं हरेत्तत्र तत्र तन्मन्त्रैः।
पुरराष्ट्रग्रामाणां कार्या रक्षैवमेव मन्त्रविदा।।
यस्मिन् देशे विहिता रक्षेयं तत्र वर्धते लक्ष्मीः।
धनधान्यसमृद्धिः स्याद्रिपुचोराद्याश्च नैव बाधन्ते।। (वही, १४/५७-६१)

वनदुर्गा मन्त्र से पद्मोत्पल (नीलकमल) के हवन से राजपत्नी तथा ब्राह्मण वश में हो जाते हैं। कल्हार (श्वेत कमल) तथा लवण के हवन से वणिक् तथा शूद्रजन वश में होते हैं। जाती के पुष्पों के हवन से समस्त ग्राम वश में हो जाता है।

पद्मोत्पलकुमुदहुतैर्नृपपत्नीर्ब्राह्मणान् वशीकुरुते।
कह्लारलवणहोमैर्विट्शूद्रौ जातिभिस्तथा ग्रामम्।। (वही, १४/६२)

वशीकरण के लिये प्रतिकृति प्रयोग

साध्य (जिसे वश में करना है) के नामाक्षरों से युक्त वनदुर्गा मन्त्र को किसी पत्र पर लिख लेना चाहिये। फिर कुम्हार के हाथ की मिट्टी से साध्य की

प्रतिमा बनानी चाहिये। इसके बाद इस प्रतिमा को अपने सामने रखकर उसके हृदयस्थल पर साध्य के नाम से युक्त मन्त्र वाले उस पत्र को रखकर एक सप्ताह तक तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, दोपहर और शाम) में उक्त वनदुर्गा मन्त्र का आठ सौ जप करना चाहिये। वनदुर्गा मन्त्र के इस प्रयोग से साध्य दीर्घकाल तक वश में रहता है।

साध्याख्याक्षरदर्भितं मनुमिमं पत्रे लिखित्वा च त-
च्वक्रीहस्तमृदा कृतप्रतिकृतेर्विन्यस्य मन्त्री हृदि।
सप्ताहं त्वथ पुत्तलीमभिमुखे संस्थाप्य सन्ध्यात्रये
जप्यादष्टशतं चिराय वशतां गच्छत्यसौ निश्चयः।। (वही, १४/६४)

विभिन्न द्रव्यों के हवन के विभिन्न फल

एक सौ आठ बार व्रीहि (धान) का हवन करने से व्यक्ति एक वर्ष में ही व्रीहिवान्, गाय के दूध का हवन करने से पशु-सम्पत्ति से युक्त, घी का हवन करने से स्वर्णवान्, दही से समस्त समृद्धियों वाला, अन्न से अन्नवान्, मधु से रत्नवान्, दूर्वा का हवन करने से आयुष्मान् तथा कमलों का हवन करने से शीघ्र ही लक्ष्मीवान् हो जाता है।

व्रीहीणां जुहुयान्नरोऽष्टशतकं संवत्सराद् व्रीहिमान्,
गोदुग्धैः पशुमान् धृतैः कनकवान् दध्ना च सर्वर्द्धिमान्।
अन्नैरन्नसमृद्धिमांश्च मधुभिः स्याद्रत्नवान् दूर्वया-
ऽप्यायुष्मान् प्रतिपंकजेन महतीं सद्यः श्रियं प्राप्नुयात्।।(वही, १४/६५)

❋

24

शूलिनी दुर्गा मन्त्र-साधना

भगवती दुर्गा अनेक रूप धारण करती हैं। इन रूपों में से एक रूप शूलधारिणी दुर्गा भी है। शूलधारिणी दुर्गा की साधना के निरूपण के प्रसंग में आचार्य शंकर ने उनके महामन्त्र का भी निर्वचन करते हुए बताया है कि 'मरुत् (य) से चतुर्थ वर्ण, (व) सहित वाद्य वर्ण, अर्थात् व से पहले वाले वर्ण (ल) से युक्त छान्त वर्ण, (ज) से मिलकर बने पद (ज्वल) की वीप्सा अर्थात् दो बार प्रयोग (ज्वल ज्वल), इसके बाद दहन (र) सहित हान्त, अर्थात् ह है अन्त में जिसके ऐसा पंचान्तक (ग) (ग्रह) शब्द से युक्त शूलिनि पद, तत्पश्चात् 'हूं फट्' और अन्त में द्विठान्त (स्वाहा) शब्द से बनने वाला 'ज्वल ज्वल दुष्टग्रहशूलिनि हूं फट् स्वाहा' भगवती शूलधारिणी दुर्गा का मन्त्र है।

छान्तं मरुतुरियवर्णयुतं सवाद्यं
संवीप्सा शूलिनिपदं च सदुष्टशब्दम्।
पंचान्तकं सदहनं परिभाष्य हान्तं
हूं फट् द्विठान्तमिति शूलिनिमन्त्रमेव।। (प्रपंचसारतन्त्र, १४/६६)

ऋष्यादिन्यास एवं अंगविधि

भगवती शूलिनी दुर्गा के उक्त मन्त्र के ऋषि दीर्घतपा, छन्द ककुब्, देवता भगवती दुर्गा स्वयं हैं। पद्मपाद के अनुसार बीज हुं तथा शक्ति स्वाहा है।

ऋषिर्दीर्घतपाच्छन्दः ककुब्दुर्गा च देवता। (वही, १४/६७)

"शूलिन्याः हुं बीजं स्वाहा शक्तिः"। (वही, विवरण)

ऋष्यादिन्यास का स्वरूप निम्नवत् होगा–

दीर्घतपसे ऋषये नमः (शिरसि),
ककुब् छन्दसे नमः (मुखे),
दुर्गादेवतायै नमः (हृदये),
हुं बीजाय नमः (गुह्ये),
स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)

पंचांग न्यास

शूलिनी दुर्गा मन्त्र की साधना में षडंगन्यास नहीं, पंचांग न्यास किया जाता है। इस न्यास में आरम्भ में शूलिनि शब्द का प्रयोग करते हुए दुर्गा शब्द से हृदय, वरदा से शीर्ष, विन्ध्यवासिनी से शिखा, असुरमर्दिनि त्रासय त्रासय से कवच तथा त्रासय त्रासय से अस्त्र न्यास किया जाता है।

इस पंचांग न्यास में यदि आरम्भ में 'शूलिनि' अन्त में 'हुं फट्' और मध्य में 'महायोगेश्वरि' शब्द जोड़ दिया जाय तो मात्र यह न्यास ही साधक की रक्षा के लिये पर्याप्त है। आचार्य शंकर के अनुसार शूलिनी मन्त्र के इस न्यास-मात्र से हर तरह की विपत्तियां और क्रूर ग्रह दूर हो जाते हैं।

दुर्गा हृद्वरदा शीर्षं शिखा स्याद्विन्ध्यवासिनी ।।
वर्माऽसुरमर्दनि च युद्धपूर्वप्रिये तथा ।
त्रासयद्वितयं चास्त्रं देवसिद्धिसुपूजिते ।।
नन्दिन्यन्ते रक्षयुगं महायोगीश्वरीति च ।
शूलिन्याद्यन्तु पंचांगं हुं फडन्तमितीरितम्।
अंगकर्मैव रक्षाकृत् प्रोक्तं ग्रहनिवारणम्।। (वही, १४/६७-६६)

शंकर एवं पद्मपाद* के अनुसार पंचांग न्यास तथा रक्षाकृत् पंचांग न्यास के स्वरूप निम्नवत् होंगे—

शूलिनि दुर्गे हुं फट् हृदयाय नमः,
शूलिनि वरदे हुं फट् शिरसे स्वाहा,
शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् शिखायै वषट्,
शूलिनि असुरमर्दिनि हुं फट् कवचाय हुं,
शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय अस्त्राय फट्।

रक्षाकारक पंचांगन्यास

शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि
हुं फट् हृदयाय नमः,
शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि
हुं फट् शिरसे स्वाहा,
शूलिनि विन्ध्यवासिनि देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि

---

* द्रष्टव्य १४/६७-७६ पर विवरण।

रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् शिखायै वषट्,
शूलिनि असुरमर्दिनि देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि
रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् कवचाय हुं
शूलिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय देवसिद्धसुपूजिते
नन्दिनि महायोगेश्वरि रक्ष रक्ष हुं फट् अस्त्राय फट्।

शूलिनी दुर्गा का ध्यान

भगवती शूलिनी दुर्गा की आराधना के समय न्यासादि समस्त क्रियाएं सम्पन्न करके मेघघटाओं की भांति श्यामवर्णा, हाथों में भीषण त्रिशूल, बाण, असि, शंख, चक्र, गदा, धनुष तथा पाशधारिणी, मस्तक के मुकुट पर चन्द्रकला सहित विविध आभूषणधारिणी, सिंह पर आसीन, असि तथा खेटधारिणी, चार कन्याओं से घिरी हुई, दैत्यविनाशिनी भगवती शूलिनी का ध्यान करके उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हम सबको जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्रदान करें।

विभ्राणा शूलबाणास्यरिसदरगदाचापपाशान् कराब्जैः
मेघश्यामा किरीटोल्लसितशशिकला भीषणा भूषणाढ्या।
सिंहस्कन्धाधिरूढा चतसृभिरसिखेटान्विताभिः परीता
कन्याभिर्भिन्नदैत्या भवतु भवभयध्वंसिनी शूलिनी वः।।

(वही, १४/७०)

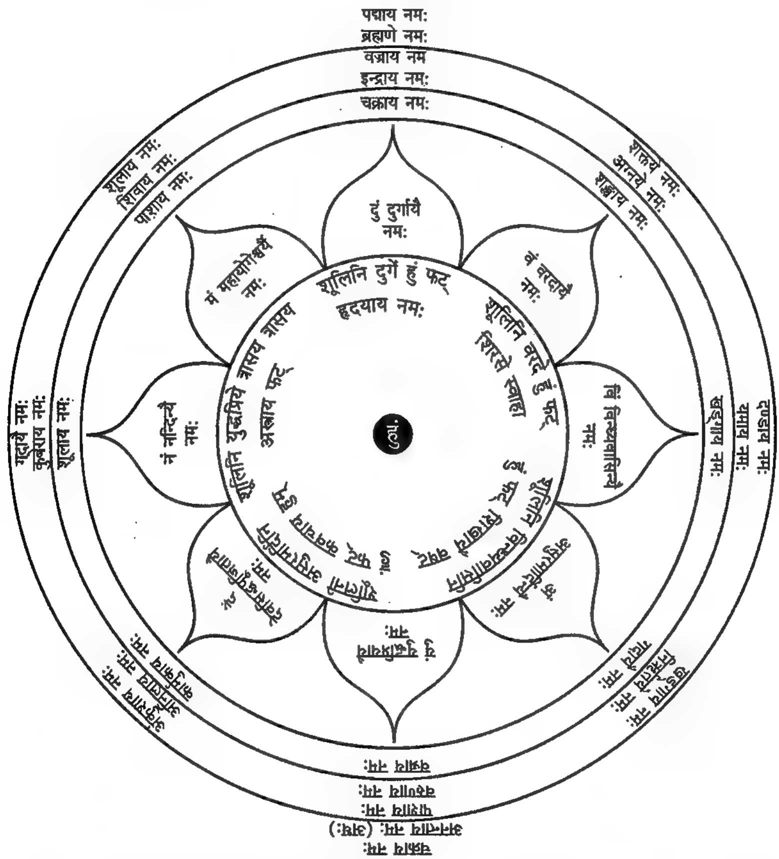
शूलिनी की आवरण-पूजा

ध्यान के बाद दुर्गामन्त्र वाली विधि के अनुसार शूलिनी के मन्त्र में निहित अक्षरों(१५) के बराबर (१५ लाख) जप पूर्ण करने के बाद घृत से जप की दशांश (डेढ़ लाख) हवन किया जाना चाहिये। हवन के बाद पूर्वोक्त अष्टदल कमलपीठ पर शूलिनी की दुर्गा, वरदा, विन्ध्यवासिनी, असुरमर्दिनी, युद्धप्रिया, देवसिद्धपूजिता, नन्दिनी तथा महायोगेश्वरी नामक आठ शक्तियों, चक्र, शंख, असि, गदा, बाण, धनुष, शूल तथा पाश नामक देवी के आठ आयुधों, दिग्पालों की (उनके आयुधों सहित) पूजा पूर्वादि दिशाओं के क्रम से की जानी चाहिए।

एवं विचिन्त्य पुनरक्षरलक्षमेनं
मन्त्री जपेत्प्रजुहुयाच्च दशांशतोऽन्ते।
प्राज्येन साज्यहविषा प्रयजेच्च देवी-
मंगाष्टशक्तिनिजहेतिदिशाधिनाथैः।।

दुर्गा च वरदा विन्ध्यवासिन्यसुरमर्दिनी।
युद्धप्रिया देवसिद्धपूजिता नन्दिनी तथा।।
महायोगेश्वरी चाष्ट शक्तयः समुदीरिताः।
रथांगशंखासिगदाबाणकार्मुसंज्ञकाः।।
सशूलपाशा यष्टव्या दिक्क्रमादष्ट हेतयः।। (वही, १४/७१-७३)

सावरण शूलिनीदुर्गा यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/६६-७३)

[मन्त्र - 'ज्वल ज्वल दुष्टग्रहशूलिनि हुं फट् स्वाहा' • जपसंख्या - १५ लाख (अथवा कार्य की गुरुता के अनुसार) • आहुति-संख्या - १५ हजार (जप का दशांश) आहुतिद्रव्य - घृत, तिल, त्रिमधुर, दूर्वा, गोमय की गुलिकाएं, त्रिमधुरयुक्त आक के पुष्पादि और पीपल के फल तथा समिधाएं आदि (प्रयोग—साधना के अनुसार)]

शूलिनी मन्त्र के विभिन्न प्रयोग

आचार्य शंकर का कथन है कि दीक्षा, जप, हवन तथा अर्चना से शूलिनी देवी के उक्त मन्त्र को सिद्ध कर लेने वाले साधक को ही यह अधिकार है कि वह रोग, उन्माद (पागलपन), भूत, अपस्मार (मिरगी), क्ष्वेळ (ज्वर) आदि की शांति के लिए मन्त्र का प्रयोग करे।

दीक्षाजपहुतार्चाभिः सिद्धः कर्म समाचरेत्।
आमयोन्मादभूतापस्मारक्ष्वेळशमादिकम्।। (वही, १४/७४)

उन्मादादि रोग एवं भूतादि के भय से मुक्ति

मन्त्रसिद्ध साधक अपने तीव्र उद्गारों, चाबुक आदि के प्रहारों, कम्पनादि तीव्र आवेगों तथा त्रिशूलादि धारण की क्रियाओं से कुछ देर के लिए शूलिनी से आविष्ट-सा होता हुआ नजर आता है। आविष्ट साधक बार-बार जब शूलिनी का मन्त्र-जप करता है, तब उससे भयभीत होकर भूत-प्रेतादि तुरन्त भाग जाते हैं।

उद्गूर्णैः प्रहरणकैरुदीर्णवेगैः, शूलाद्यैर्निजमथ शूलिनीं विचिन्त्य।
आविश्य क्षणमिव जप्यमानमन्त्रस्यावृत्या द्रुतमपयान्ति भूतसंघाः।।
(वही, १४/७५)

दुष्टग्रहों से मुक्ति

अपने और ग्रहपीडित व्यक्ति के मध्य में आयुधधारिणी भगवती अम्बिका शूलिनी को उपस्थित मानकर साधक द्वारा शत्रुमुद्रा में शूलिनी के मन्त्र का बार-बार जप करने से दुष्टग्रह विवश होकर शीघ्र ही भाग खड़े होते हैं।

अन्तराऽथ पुनरात्मरोगिणोरम्बिकामपि निजायुधाकुलाम्।
संविचिन्त्य जपतोऽरिमुद्रया विद्रवन्त्यवशविग्रहा ग्रहाः।। (वही,१४/७६)

सर्पभयादि से मुक्ति

सर्प, मूषिका, बिच्छू , कनखजूरा, मकड़ी तथा कुत्ते आदि द्वारा काटे जाने से उत्पन्न विष-पीड़ा को विन्ध्यवासिनी भगवती शूलिनी स्मरणमात्र से नष्ट कर देती हैं।

अहिमूषिकवृश्चिकादिजं वा बहुपात्कुक्कुरलूतिकोद्भवं वा।
विषमाशु विनाशयेन्नराणां प्रतिपत्त्यैव च विन्ध्यवासिनी सा।।
(वही, १४/७७)

भय-मुक्ति तथा मारण

स्वयं को शूल-पाशधारिणी भगवती शूलधारिणी दुर्गा मानता हुआ इस मन्त्र का जप करते हुए शत्रुसेना में प्रवेश करके साधक शत्रुसेना के आयुधों तथा उनकी चेतना को भी छीन लेता है। इसके अलावा मन्त्र-साधक शत्रु का नाम लेते हुए मन्त्र से अभिमन्त्रित तिलों से दस हजार हवन करे, तो शत्रु रोगी होकर मर जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आधाय बाणे निशिते च देवी क्षेमंकरीमन्त्रमिमं जपित्वा।
तद्वेधनादेव विपक्षसेना दिशो दिशो धावति नष्टसंज्ञा।।

(वही, १४/७८)

शत्रुसेना पर विजय

स्वयं को शूल-पाशधारिणी शूलिनी दुर्गा मान कर शूलिनी मन्त्र का जप करते हुए साधक शत्रु की सेना में प्रवेश करके शत्रुसेना के आयुधों को छीन कर उनकी चेतना को भी स्तब्ध कर देता है।

आत्मानमार्यां प्रतिपद्य शूलपाशान्वितां वैरिबलं प्रविश्य।
मन्त्रं जपन्नाशु परायुधानि गृह्णाति मुष्णाति च बोधमेषाम्।।

(वही, ४/७६)

शत्रु पर मारण-प्रयोग

यदि साधक अपने शत्रु के नाम के साथ तिल और श्वेत सर्षप का एक हजार हवन करे तो शत्रु रोगी होकर मर जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तिलसिद्धार्थैर्जुहुयाल्लक्षं मन्त्री सपत्ननामयुतम्।
स तु रोगाभिहतात्मा मृतिमेति न तत्र सन्देहः।। (वही, १४/८०)

शक्ति एवं कामना-पूर्ति

त्रिमधुरयुक्त तिलों से जो साधक प्रतिदिन शूलिनी मन्त्र से आठ हजार हवन करता है, एक वर्ष से पूर्व ही उसे अप्रतिहत शक्ति प्राप्त होती है। शूलिनी के उक्त मन्त्र के साथ घृत से आठ सौ हवन करने से एक वर्ष के भीतर ही समस्त इच्छाओं की पूर्ति होती है तथा त्रिमधुरयुक्त दूर्वा के साथ आठ सौ हवन करने से मनोरथ पूर्ण होता है।

त्रिमधुरसिक्तैश्च तिलैरष्टसहस्रं जुहोति योऽनुदिनम्।
अप्रतिहताऽस्य शक्तिर्भूयात्प्रागेव वत्सरतः।।
सर्पिषाऽष्टशतहोमतोऽमुना वांछितं सकलमब्दतो भवेत्।
दूर्वया त्रिकयुजेप्सितं लभेत् सम्यगष्टशतसंख्यया हुतात्।।
(वही, १४/८१-८२)

मित्रभेद

गाय के गोबर से निर्मित १०८ गोलियों का हवन करने से जिन मित्रों के बीच साधक भेद या शत्रुता उत्पन्न करना चाहता है, वे सात दिनों के भीतर ही हमेशा के लिये अलग हो जाएंगे।

गोमयविहितां गुलिकां जुहुयाच्छतमष्टपूर्वकं मन्त्री।
दिवसैः सप्तभिरिष्टौ द्विष्टौ मिथो वियोगिनौ भवतः।। (वही, १४/८४)

स्तम्भन

गाय का गोबर धरती पर गिरने से पहले ऊपर ही थाम कर शूलिनी मन्त्र के तीन हजार जप से अभिमन्त्रित करके उस गोबर को घर से बाहर निकल रहे व्यक्ति के द्वार पर, या अभियान के लिए निकल रही सेना के आगे धरती में दबा देने से उनका स्तम्भन होता है। वे घर से निकल नहीं पाते।

अस्पृष्टकुं गोमयमन्तरिक्षे संगृह्य जप्त्वा त्रिसहस्रमानम्।
यियासतां वै निखनेन्नराणां संस्तम्भनं द्वारि चमूमुखे च।।
(वही, १४/८५)

वशीकरण

निर्मल बुद्धिवाला साधक दत्तचित्त होकर त्रिमधुरयुक्त एक हजार आक के फलों को आक की ही समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में, अथवा पीपल के फलों को पीपल की ही समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में, अथवा तिलों को तिल की ही समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में, जिन व्यक्तियों को लक्ष्य करके विधिपूर्वक हवन करता है, वे विचलितबुद्धि होकर साधक के वश में हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं।

आर्कैर्मन्त्री त्रिमधुरयुतैरर्कसाहस्रमिध्मै-
राश्वस्थैर्वा त्वतिविशदचेतास्तिलैर्वा जुहोति।

यानुद्दिश्य त्ववहितमनास्तन्मये सम्यगग्नौ
ते वश्याः स्युर्विधुरितधियो नात्र कार्यो विचारः।। (वही, १४/८७)

आचार्य शंकर के अनुसार भगवती शूलिनी के मन्त्र से 'दावदुर्गाकल्प' (वनदुर्गाकल्प) में निरूपित जप, अर्चन, हवन तथा तर्पण आदि प्रयोग भी किये जा सकते हैं, क्योंकि वनदुर्गा में उल्लिखित मन्त्र और शूलिनी मन्त्र में कोई अन्तर नहीं है।

कुर्यात्प्रयोगानपि दावदुर्गाकल्पोदितान् वै मनुनाऽमुना च ।
मन्त्री जपार्चाहुततर्पणान्तान्नाल्पो हि मन्वोरनयोर्विशेषः।।
(वही, १४/८८)

❋



डॉ. रामचन्द्र पुरी ने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शांकरवेदान्ताचार्य तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एम.ए. एवं पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। वेदान्त तथा अन्य विषयों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में डॉ. पुरी को संस्कृत विश्वविद्यालय से तीन स्वर्णपदक प्राप्त हुए। डॉ. पुरी ने संस्कृत की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, आचार्य तथा एम.ए. की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी प्राप्त की तथा एम.ए. (हिन्दी) परीक्षा में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। डॉ. पुरी ने लगभग ३५ वर्षों तक लाजपतराय पी.जी. कालेज, गाजियाबाद तथा बी.एस.एम. पी.जी. कालेज, रुड़की में अध्यापन किया और इसी दौरान आपको भारत सरकार की 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्' की ओर से वर्ष १६८७ में सूरीनाम के पारामारीबो स्थित भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र में अध्यापनार्थ भेजा गया। यहाँ आपने जून १६६१ तक हिन्दी के साथ संस्कृत, भारतीय दर्शन, संस्कृति तथा प्राच्यविद्या आदि विषयों का अध्यापन किया।

डॉ. पुरी की 'शंकराचार्य : तान्त्रिक शाक्त-साधना एवं सिद्धान्त' 'श्री तन्त्रदुर्गासप्तशती' एवं 'कुण्डलिनी महायोग' नामक तीन कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। कुण्डिलिनी महायोग के प्रथम खण्ड में महान् योगी गुरुओं की अहैतुकी कृपा से उन्हें प्राप्त साधना-पथ की दिव्य यात्रा के कुछ अनतिगोप्य संस्मरणों तथा द्वितीय खण्ड में योगशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं अनुभूतिपरक विभिन्न विषयों का लेखा-जोखा है। डॉ. पुरी की प्रस्तुत कृति 'शंकराचार्य : तान्त्रिक साधना' में आचार्य शंकराचार्य द्वारा निरूपित तान्त्रिक साधनाओं का विवरण-विश्लेषण है।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली